आनंद सभा

सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर

पाठ्य पुस्तक (कक्षा ९)

राज्य आनंद संस्थान, आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन

आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर
पाठ्य पुस्तक (कक्षा ९)

पहला संस्करण मई २०२२

राज्य आनंद संस्थान
आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन
माध्यमिक शिक्षा मण्डल परिसर
शिवाजी नगर, भोपाल – ४६२०११

www.anandsansthanmp/in
anandsansthan@gmail.com
+91 755 255 3434

संदर्भ

- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (पाठ्यपुस्तकें)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (अभ्यास पुस्तिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षक मार्गदर्शिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षकों, अभिभावकों के लिए तैयारी हेतु शिविर) – ऑनलाइन एवम् प्रत्यक्ष

हमारे अन्य कार्यक्रम

- अल्पविराम
- आनंद क्लब
- आनंद सभा
- आनंद उत्सव (ख़ुशी का त्यौहार)
- आनंदम केंद्र
- आनंद कैलेंडर
- आनंद शिविर
- ऑनलाइन आनंद कोर्स (अलोहा)
- आनंद फ़ेलोशिप

ज्ञान के सार्वभौमीकरण की भावना से हम यह पाठ्य सामग्री सभी को सर्वशुभ हेतु बिना शर्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकाशन की विषयवस्तु यू एच वी टीम (uhv.org.in) के सहयोग के साथ विकसित की गई है। यह सामग्री औपचारिक (मुख्य धारा एवम वैकल्पिक) और अनौपचारिक, दोनो शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा सकती है।

अतएव यह कार्य CCO 1.0 के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।
लाइसेंस की प्रति देखने हेतु, कृपया देखें - https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0

राष्ट्रगान

जन–गण–मन–अधिनायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
पंजाब–सिन्धु–गुजरात–मराठा
द्राविड़–उत्कल–बंग
विंध्य–हिमाचल–यमुना–गंगा
उच्छल–जलधि–तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मागे,
गाहे तव जय–गाथा।
जन–गण–मंगल–दायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

(हर देश का अपना एक विशिष्ट झंडा और राष्ट्रगान होता है। ''तिरंगा झंडा'' भारतवर्ष का राष्ट्रध्वज है और ''जनगणमन'' राष्ट्रगान। राष्ट्रध्वज में ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की और नीचे की हरे रंग की होती है। बीच की सफेद पट्टी के बीचों बीच २४ शलाकाओं का नीले रंग में गोल-चक्र होता है। केसरिया रंग त्याग का, सफेद शांति का और हरा रंग प्रकृति की सुन्दरता का प्रतीक है। चक्र का स्वरूप अशोक की सारनाथ-स्थित सिंहमुद्रा में अंकित चक्र की भाँति है यह चक्र सत्य और सब धर्मों का प्रतीक है।

राष्ट्रगान की रचना गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। इसमें संपूर्ण देश के लिए मंगल-कामना है। राष्ट्रगान और राष्ट्रध्वज का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। जब राष्ट्रगान गाया जाये या उसकी धुन बजाई जाये अथवा राष्ट्रध्वज फहराया जाये, तब हमें सावधान की स्थिति में खड़े होकर इसे सम्मान देना चाहिए।)

विषयसूची

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश.....11
अध्याय 1: मूल्य शिक्षा को समझना.....16
परिचय.....16
तृप्ति-पूर्वक जीना.....16
तृप्ति पूर्वक जीने के लिये शिक्षा.....17
मूल्य शिक्षा.....19
कौशल शिक्षा.....20
मूल्य एवं कौशल की परस्पर-पूरकता.....20
कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता (प्राथमिकता).....21
मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और महत्वपूर्ण निष्कर्ष.....22
मूल्य शिक्षा के लिये दिशानिर्देश.....22
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न.....24
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास.....25
अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास.....25
अनुभाग 4: आपके प्रश्न.....26
अध्याय 2: स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया.....28
पुनरावृति.....28
स्व-अन्वेषण क्या है?.....28
स्वयं में संवाद.....29
स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु.....32
स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया.....32
सहज स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार.....34
वर्तमान स्थिति का अवलोकन.....37
आगे का मार्ग.....39
स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय.....40
प्रमुख बिंदु.....43
अपनी समझ को जाँचे.....45
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न.....45

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास....46
अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास....48
अनुभाग 4: आपके प्रश्न....48
अध्याय 3: मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति....49
पुनरावृत्ति....49
मूल चाहना का क्या अर्थ है?....49
मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता....49
मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें....50
मानव के लिये सुविधा आवश्यक तो है, परंतु संबंध भी आवश्यक है।....53
सही-समझ, संबंध और सुविधा - यह तीनों ही मानव की तृप्ति के लिये आवश्यक हैं....55
वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा....57
मानव चेतना का विकास....61
समग्र विकास....62
शिक्षा-संस्कार की भूमिका....63
प्रमुख बिंदु....65
अपनी समझ को जाँचे....66
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न....66
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास....66
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास....67
अनुभाग-4: आपके प्रश्न....67
अध्याय 4: सुख और समृद्धि को समझना - इनकी निरन्तरता और पूर्ति के लिए कार्यक्रम....69
पुनरावृत्ति....69
सुख के अर्थ को समझना....69
निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम....72
समृद्धि के अर्थ को समझना....73
सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि....75
सुख की निरंतरता, सुविधाओं से....75
सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से....75
सुख, आवेश के जैसा नहीं है....76
सुख के अन्य प्रचलित अभिप्राय....76

सुख के लिये किये गये विभिन्न प्रयासों का मूल्यांकन 76
सुख के लिये कार्यक्रम 76
कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष 78
मुख्य बिंदु 79
अपनी समझ को जाँचे 80
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 80
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 80
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 80
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 81
अध्याय 5: मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना 82
पुनरावृत्ति 82
'स्वयं(मैं)' और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव 83
'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें 83
आवश्यकता- क्या ये सामयिक हैं या निरंतर? 84
'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति 86
'स्वयं(मैं)' की आवश्यकतायें निश्चित हैं 87
'स्वयं(मैं)' और शरीर की क्रियायें 88
'स्वयं(मैं)' और शरीर की अनुक्रिया 89
'स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में 91
मुख्य बिंदु 92
अपनी समझ को जाँचे 93
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 93
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 93
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 96
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 96
अध्याय 6: स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना 97
पुनरावृत्ति 97
'स्वयं(मैं)' की क्रियायें 98
'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं 100
क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता 100

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में 101
कल्पनाशीलता की स्थिति 102
कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज स्वीकृति 105
कल्पनाशीलता के प्रेरित होने के स्रोत के रूप में मान्यतायें 106
कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के स्रोत के रूप में संवेदना 107
कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाली सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत सहज स्वीकृति 108
तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता? 109
मुख्य बिंदु 111
अभ्यास 1 112
स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना 112
अपनी समझ को जाँचे 117
अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 117
अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 117
अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास 120
अनुभाग-4: आपके प्रश्न 120
अध्याय 7: 'शरीर' के साथ 'मैं' की व्यवस्था - स्वास्थ्य और संयम को समझना 121
अध्याय 8: परिवार में व्यवस्थामानव- मानव संबंध में मूल्य 122
पुनरावृत्ति 122
मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार 122
परिवार में व्यवस्था का आधार - संबंध में भाव 123
संबंध को समझना 123
वर्तमान स्थिति का अवलोकन 126
आगे का मार्ग 129
संबंधों के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु 132
अपनी समझ को जाँचे 132
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 132
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 133
मानव-मानव संबंधों मे आधार मूल्य- विश्वास 134
पुनरावृत्ति 134
विश्वास- आधार मूल्य 134

चाहना और योग्यता में भेद 136
विश्वास से संबंधित मुख्य बिंदु 143
अपनी समझ को जाँचें 144
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 144
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 144
मानव-मानव संबंधों मे मूल्य-सम्मान 145
पुनरावृत्ति 145
सम्मान- सही आँकलन 145
अपमान - अधिमूल्यन, अवमूल्यन और अमूल्यन 146
सम्मान का न्यूनतम भाग – दूसरा मेरे जैसा है 151
भेद से उत्पन्न अपमान 151
सम्मान की संपूर्ण वस्तु - हमारी परस्पर-पूरकता 154
स्नेह 157
सम्मान और स्नेह से संबंधित मुख्य बिंदु 158
अपनी समझ को जाँचे 159
अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न 159
अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास 160
अध्याय 9: समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना 161
अध्याय 10-11: परिचय - प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था 163
अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना 164
अनुच्छेद 6.1 165
चरण 1 की सामान्य समस्याएँ: 165
शब्दकोष 166
संदर्भ 171

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश

स्नेही विद्यार्थीगण, हम इस अभिनव और महत्वपूर्ण प्रयास: "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को पढ़ने व समझने के लिए आपकी रुचि और प्रतिबद्धता की सराहना करते हैं।

हम बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी मानव सुखी रहना चाहते हैं; निरंतर सुखी रहना चाहते हैं| इसे हममे में से हर एक अपने में जांच कर देख सकते हैं| इस निरतर सुख को ही आनंद कहा है| नन्द शब्द का अर्थ है प्रसन्न रहना, सुखी रहना, आनंद का अर्थ है- सुख के अभाव का अभाव अर्थात निरंतर सुख

आनंद = अ + अ + नंद
= अभाव + अभाव + सुख
= सुख के अभाव का अभाव = निरंतर सुख

हम आनंद पूर्वक, निरंतर सुख पूर्वक रहना चाहते हैं| इसी के लिए हमारे जिन्दगी के सारे प्रयास हैं|

सुख के बारे आज की प्रचलित सोच यह है कि सुख मिलता है

- अनुकूल संवेदना के आस्वादन से
- दूसरे से भाव पाकर
- सुविधा से, उसके भोग से

इसलिए प्रचलित कार्यक्रम सुविधा-संग्रह (असीमित, किसी भी तरह) के रूप में दिखाई देता है! परन्तु, इन आधार पर कितना भी प्रयास किया जाय, कितनी भी उपलब्धि हो, इससे आनंद, सुख की निरंतरता, को सुनिश्चित नहीं किया जा पाता |

इस सोच के में मूल में मान्यता है कि मनाव केवल शरीर है तथा सुख शरीर से, बाहर से पायी जाने वाली कोई वस्तु |

जबकि वास्तविकता को सीधा सीधा देखने का प्रयास करें तो यह दिख पाता है कि

- मानव केवल शरीर ही नहीं है, परंतु मैं (चैतन्य) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में है
- सुख = व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में
- आनंद = निरंतर सुख = निरंतर व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – जीने के हर स्तर पर

अतः आनंद पूर्वक जीने का आधार

- व्यवस्थित मन – स्वयं में सही समझ, भाव-विचार – व्यवस्था का
- व्यवस्थित शरीर – शरीर में स्वास्थ्य, न केवल रोग का निवारण
- व्यवस्थित वातावरण
    - व्यवस्थित परिवार- संबंध व समृद्धि पूर्वक जीना
    - व्यवस्थित समाज – न्याय व व्यवस्था संपन्न, "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय"
    - व्यवस्थित प्रकृति – परस्परपूरकता आधारित, समृद्ध प्रकृति

'सार्वभौमिक मानव मूल्य' के आधारभूत पाठ्यक्रम के माध्यम से हम सभी, शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक आनंद पूर्वक जीने की सही समझ (उपरोक्त वर्णित) पर मनन-चिंतन व् अभ्यास करने का प्रयास करेंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य में हम सबकी प्रमुख भागीदारी है, जिम्मेदारी है।

यह पुस्तक, लंबे प्रयोग, परामर्श और चिंतन के परिणामों पर आधारित है। जिसका उद्देश्य शिक्षा को मूल्य शिक्षा की एक ऐसी पद्धति से जोड़ना है, जो कि सार्वभौम रूप से सभी को स्वीकार्य हो। इस दिशा में पहला और महत्वपूर्ण कदम "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को शुरू करना है, जिसके लिये यह विषय वस्तु तैयार की गई है।

इस पुस्तक में, मानव के साथ-साथ शेष-प्रकृति और अस्तित्व को समझने के लिये एक सुव्यवस्थित स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को प्रस्तावित किया गया है, जिसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य और निश्चित मानवीय आचरण की समझ सुनिश्चित हो पाती है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक ओर मानव को स्वयं के आधार पर अपने में सही समझ सुनिश्चित करने के योग्य बनाती है, और दूसरी ओर यह प्रक्रिया, मानव को 'स्वयं' के विकास के साथ-साथ जीने में आवश्यक व्यवहार, कार्य को सीखने में सहयोग करती है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया को, मूल्य शिक्षा की एक प्रभावी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

इस पुस्तक को इस प्रकार लिखा गया है कि, पाठक के भीतर एक संवाद की प्रक्रिया शुरु हो सके। जिसके लिये एक सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तावों को एक-एक करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, ताकि वह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से इन प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन कर सकें। पूरी चर्चा इस विषय पर केन्द्रित है, कि मानव का तृप्ति पूर्वक जीना कैसे हो पाये? यह अध्ययन, मानव के जीने के सभी स्तरों पर अंतर्निहित व्यवस्था को समझने और जीने के अर्थ में है, जो कि मानव के तृप्ति पूर्वक जीने का आधार है।

पाठकों के ध्यान देने के लिये महत्वपूर्ण टिप्पणी (A Note to the Readers)

इस पुस्तक की विषय-वस्तु को, प्रस्तावों के एक समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें याद करने या याद करके सुनाने या वाह्यरूप से इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के बजाय, धीरे-धीरे इन्हें अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचना है। इससे आपके भीतर एक संवाद शुरु होगा– 'जैसे आप है' और 'जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है' के बीच। जैसे-जैसे आप इस पुस्तक को पढ़ते जाते हैं, आप इस प्रस्तावित विधि से अध्ययन कर पाते हैं। और जैसे-जैसे आप इस अध्ययन की प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं, आपके अंदर कई प्रश्न बन सकते हैं, जिनमें से अधिकांश प्रश्न धीरे-धीरे इस स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान स्वतः ही हल हो जायेंगे; जो कि एक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी उत्तर से तभी आश्वस्त हो पाता है, जब वह स्वयं में उत्तर देख पाये बजाय इसके कि बाहर से उस पर उत्तर थोपे जायें।

हमारी भूमिका, इन प्रस्तावों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने और आप में स्व-अन्वेषण एवं स्व-सत्यापन की प्रक्रिया को शुरू करने में सहयोग करने की है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया से आप उन मूल्यों को स्वयं में देख सकेंगे, जो कि प्राकृतिक रूप से आप में अंतर्निहित हैं ही। यह आपको स्व-विकास, अर्थात् 'स्वयं' के विकास की ओर ले जायेगा, जिसके परिणाम स्वरूप, आपकी मूल चाहना की पूर्ति हो पायेगी। यहाँ आपकी ओर से एक ईमानदार एवं निष्ठापूर्ण प्रयास की अपेक्षा है। इसके लिये, इस पुस्तक को पढ़ते समय निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखा जा सकता है-

जागरूकता के साथ पढ़ें
(Read with Awareness)

इस पुस्तक को समझने की दृष्टि से, जागरूकता के साथ पढ़ना आवश्यक है। किसी बात को केवल याद कर लेना, वास्तव में, उसे समझना नहीं है। हमने कुछ वास्तविकता देखी है; उस वास्तविकता से जुड़े कुछ अर्थ हैं, और इन अर्थों के लिये हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। हमारी तरफ से, इन शब्दों को प्रस्ताव के रूप में, इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। जब आप कोई शब्द पढ़ते हैं, तो आप उसे किसी न किसी अर्थ से जोड़ते हैं। क्या आपके द्वारा जोड़ा गया अर्थ और हमारे द्वारा इंगित किया गया अर्थ, अनुरूप हैं? इसके अलावा, आप स्वयं में उस शब्द अथवा उसके अर्थ से इंगित वास्तविकता को देखने की कोशिश करते हैं। यदि आप उसी वास्तविकता को स्वयं में देखने में सक्षम हो पाते हैं, जिसे हमारे द्वारा इंगित किया गया है, तो वास्तव में यह संवाद सफल होता है। वास्तव में, हम वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं के अर्थ को जोड़ते हैं। हम आने वाले अध्यायों में, व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं (अर्थों) का वर्णन करेंगे, जिन्हें आप स्वयं में देख सकते हैं और वास्तविकता को स्वयं में समझ सकते हैं। हम सभी में समझने और जानने की प्राकृतिक क्षमता है ही।

अध्याय 5-7 'मानव में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-8 'परिवार में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-9 'समाज में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-10 'प्रकृति में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है और अंततः अध्याय-11 'अस्तित्व में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है। हमारा सुझाव यह है कि आप प्रस्तावों द्वारा इंगित किये जाने वाले अर्थ को समझने के लिये, इन प्रस्तावों को जागरूकता के साथ पढ़े और इन्हें, इंगित वास्तविकता (अस्तित्व सहज व्यवस्था) से जोड़ने का प्रयास करें। यदि आप अस्तित्व सहज वास्तविकता को समझने में सक्षम हो पाते हैं, तो इस पुस्तक के माध्यम से उस वास्तविकता को संप्रेषित करने का हमारा यह संयुक्त प्रयास सफल है।

पूर्व-निर्मित समाधान खोजने के प्रयास से बचें
(Avoid Jumps to Readymade Solutions)

हम कभी-कभी विभिन्न परिस्थितियों में तुरंत पूर्व-निर्मित (पहले से तैयार) समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, कुछ सूत्रों में पिरोने की कोशिश करते हैं जिससे समाधान मिल सके। इस पुस्तक में, मूल समझ के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि किसी भी स्थिति/परिस्थिति के लिये आपमें समग्र समाधान का एक आधार बन सकता है। यदि व्यक्ति इस मूल समझ से युक्त होता है, तो वह समस्याओं से मुक्त होकर जी सकता है। चूंकि, समस्यायें समय, स्थान, और व्यक्ति के साथ बदलती रहती हैं; इसलिये यह एक व्यक्तिगत जिम्मेदारी है कि हम अपने लिये इस मूल समझ के आधार पर समाधान सुनिश्चित करने का प्रयास स्वयं करें। मूल्यों की समझ से हमें ऐसे समाधानों को विकसित करने में मदद मिलेगी, जो निरंतरता में हमारे लिये परस्पर पूरक होंगे। इसे सुविधाजनक बनाने के लिये, उपयुक्त स्थानों पर कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं, ताकि आप इन प्रस्तावों को अपने जीने के साथ जोड़कर देख सकें।

मौजूदा मान्यताओं/पूर्वाग्रहों के साथ तुलना से बचें
(Avoid Comparing with Existing Beliefs/Notions)

वैसे, हम सभी के पास लंबे समय से चले आ रहे पूर्वाग्रह अथवा मान्यतायें हैं ही। वे सही या गलत दोनों ही हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें बिना जाँचे ही स्वीकारे रहते हैं। यदि हम सावधान नहीं हैं, जागरूक नहीं हैं, तो जो कुछ भी इस पुस्तक में बताया जा रहा है, उसकी तुलना हम अपने मौजूदा पूर्वाग्रहों या मान्यताओं से करने लगते हैं। ऐसा हो सकता है, कि किसी वास्तविकता के बारे में यहाँ कुछ और कहा जा रहा हो, और आपकी मान्यता उसके संदर्भ में कुछ और हो। फिर आप कैसे तय करेंगे कि सही क्या है? क्या आप इस बात पर जोर देंगे कि केवल आपकी वर्तमान मान्यता ही सही है? या यहाँ जो प्रस्तावित किया जा रहा हैं, आप उसे समझने और जाँचने का प्रयास करेंगे, और साथ ही साथ अपनी वर्तमान मान्यता की भी जाँच करेंगे? यहाँ पर हम आपको, इन दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण करने के साथ-साथ, अपनी मान्यताओं का स्व-अन्वेषण करने

का भी सुझाव दे रहे हैं। इससे आपको अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को स्व-सत्यापित करने में सहयोग मिलेगा।

प्रस्तावों की जाँच करें (सहमत या असहमत होने के बजाय)

Verify the Proposals (rather than agreeing or disagreeing)

हम अपनी वर्तमान मान्यताओं से तुलना के आधार पर प्रस्ताव से सहमत या असहमत हो सकते हैं, लेकिन, इस प्रक्रिया में हम वास्तविकता को देख नहीं पाते, अतः तुलना करने से बचना होगा। सहमत या असहमत होने के बजाय, हम आपको इन प्रस्तावों को सत्यापित करने / जाँचने का आग्रह कर रहे हैं।

हमने इस पुस्तक में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर, 'रुकें और सोचें' नामक प्रतीक का प्रयोग किया है। आपसे अपेक्षा है कि आप इन विशेष बिंदुओं पर कुछ समय रुककर, स्वयं में देखने की कोशिश करें।

प्रत्येक अध्याय में, 'अपनी समझ को जाँचे' नामक एक अनुभाग भी दिया गया है। जिसमें, तीन उप-अनुभाग हैं। अनुभाग-1, प्रश्नों का एक समूह है, जो आपको यह जाँचने में मदद करेगा कि आपने अध्याय में प्रस्तुत प्रस्तावों को कितना समझा है। अनुभाग-2 में, इन प्रस्तावों को आपके दैनिक जीने से जोड़ने में सहयोग के लिये कुछ अभ्यास दिये गये हैं। अनुभाग-3 में, प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग से संदर्भित कुछ अभ्यासों का उल्लेख किया गया है, जिसमें आप अपनी समझ की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अगले अध्याय में जाने से पहले यह महत्वपूर्ण होगा, कि आप इन दिये गये अभ्यासों को करने की कोशिश अवश्य करें। यदि आपके कुछ प्रश्न हों तो उन्हें लिख लें। यह संभव है कि, जैसे-जैसे आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे बढेंगे तो आप स्वयं ही उन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर प्राप्त कर पायेंगे। उस स्थिति में, जिन भी प्रश्नों का उत्तर आपको मिल जाता है, उन्हें चिह्नित कर लें। शेष बचे हुये प्रश्नों के उत्तर के लिये, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया स्वयं में जारी रखना आवश्यक है, साथ ही आप अपने प्रश्न से संबंधित शीर्षकों को पुनः पढ़ सकते हैं, अपने शिक्षक के साथ चर्चा कर सकते हैं, वेबसाइट देखे सकते हैं अथवा वेबिनार या कार्यशाला में प्रतिभाग कर सकते हैं। निश्चित रूप से जब हमारे मूलभूत प्रश्नों के उत्तर स्वयं से प्राप्त होते हैं, तब वह अधिक तृप्ति दायक होते हैं।

इस पुस्तक में आप यह देखेंगे कि कुछ वक्तव्यों, अवधारणाओं और चित्रों को कई बार दोहराया गया है। ऐसा आपका ध्यान बार-बार उनकी ओर आकर्षित करने के लिये किया गया है, या पहले हो चुकी बातों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के अर्थ में किया गया है या जिन मुद्दों पर आपकी मान्यतायें बहुत मजबूत हैं उनका मूल्यांकन करने में आपका सहयोग करने के अर्थ में किया गया है; क्योंकि आपकी ये मान्यतायें आपको वास्तविकता जैसी है, उसे वैसा समझने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

यहाँ हमने कुछ समस्याओं का उल्लेख किया है, जिससे आपका ध्यान उन समस्याओं के सार्थक विश्लेषण की ओर जा पाये। जैसे परिवार और समाज में शासन की समस्या का विश्लेषण करना, यह परिवार या समाज में विघटन को बढ़ावा देने के लिये नहीं किया गया है और न ही यह आपकी अथवा दूसरों की निराशाजनक आलोचना करने के लिये ही किया गया, बल्कि ऐसा समस्याओं के मूल कारणों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किया गया है; क्योंकि सामान्यतः वास्तविकता के कुछ हिस्से के बारे हम जागरूक ही नहीं रह पाते हैं, जिससे हम समस्या के मूल कारण को ठीक से नहीं देख पाते।

प्रस्तावों को समझने के लिये, हमने कुछ उदाहरणों और कहानियों का भी प्रयोग किया है। ये आपके जीने के साथ प्रस्तावों को जोड़ने में आपकी मदद करने के अर्थ में है। ये बने बनाये समाधान प्रस्तुत करने अथवा 'क्या करें या क्या न करें' के अर्थ में नहीं हैं। पढ़ते समय आप इस बात के लिये जागरूक रहें कि कहीं इन उदाहरणों में ही आप लिप्त न हों जायें और मूल बिन्दु ही छूट जाये।

इस पुस्तक में, सभी प्रस्तावों को एक क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन्हें इसी क्रम में पढ़ना अपेक्षित है, क्योंकि प्रस्तावों के एक समूह की समझ, आने वाले अगले प्रस्तावों को समझने में सहयोग करता है। एक प्रकार से, यह पूरी पुस्तक पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक एक ही 'वाक्य' है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक निश्चित क्रम में पूरे वाक्य को पढ़ने से ही इसके अर्थ को सही ढंग से समझा जा सकता है।

प्रस्तावों का प्रयोगात्मक सत्यापन करें

(Experientially Validate the Proposals)

यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक सतत प्रक्रिया है। कार्यशालाओं में, हम आमतौर पर ऐसा कहते हैं कि "यह कार्यशाला शुरू तो होती है, लेकिन कभी समाप्त नहीं होती", क्योंकि एक बार जब आप अपने में, स्वयं के अधिकार पर जाँच शुरू कर देते हैं, तो यह जाँच सतत जारी रहती है। यह प्रक्रिया, स्व-विकास की प्रक्रिया के रूप में सतत चलती रहती है। यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रस्तावों का विश्लेषण करने, इनको स्वयं के अधिकार पर जाँचने, और जीने में इनका स्व-सत्यापन करने इत्यादि के रूप में यह प्रक्रिया हमारे दैनिक जीने का एक अंग बन जाती है। मूल्य-शिक्षा के बारे में अच्छी बात यह है कि, आपको इसके लिये किसी विशेष प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है - हमारा संपूर्ण जीना ही एक प्रयोगशाला है!

यह अध्ययन, समझने के लिये है; और समझना, तृप्ति पूर्वक जीने के लिये है। अतः यह स्पष्ट रहना अनिवार्य है कि हमारा अंतिम लक्ष्य भी यही है 'परस्पर तृप्ति पूर्वक जीना', स्वयं की तृप्ति, दूसरों की तृप्ति और अंततः सभी की तृप्ति। मूलतः हमारा जीना इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में हमने कितना समझ लिया है!

अब, हम अध्ययन के लिये तैयार हैं।

अध्याय 1: मूल्य शिक्षा को समझना
(Understanding Value Education)

परिचय
(Introduction)

मानवीय मूल्यों के विषय पर सामान्यतः: इन सभी स्तरों- परिवार, समाज, सार्वजनिक व्याख्यानों और सोशल मीडिया आदि पर चर्चा होती रहती है। सामान्य तौर पर शिक्षण संस्थाओं, विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों के रूप में मूल्य शिक्षा के बारे में थोड़ा बहुत बताया जाता है। मानवीय मूल्यों को समग्रता से समझने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे औपचारिक शैक्षणिक पाठ्यक्रम (formal education curriculum) में भी मूल्य शिक्षा का समावेश हो। यह पुस्तक 'मूल्य शिक्षा' की विषय-वस्तु को 'मूल्य शिक्षा में बुनियादी पाठ्यक्रम (foundation course in value education)' के रूप में प्रस्तुत करती है; ताकि 'मूल्य शिक्षा' शैक्षणिक पाठ्यक्रम (academic curriculum) का अंग बन सके।

इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हम उन मूल मुद्दों पर चर्चा करेंगे जो हम सब के जीने के लिये महत्वपूर्ण हैं- जो मुद्दे सीधे तौर पर हमारे सुख से, हमारे तृप्ति-पूर्वक जीने से, हमारे लक्ष्य से, हमारे चाहनाओं (aspirations) से और हमारे संबंधों से जुड़े हुये हैं। एक तरह से मूल्य शिक्षा उन हर बातों से जुड़ी हैं जो हम सब के लिये सार्वभौमिक (universally) रूप से मूल्यवान हैं– जो हमारे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सुख-समृद्धि के लिये सहायक है।

आइये सबसे पहले इस तरह के विषय की आवश्यकता, फैलाव (expanse) और इसके आशय (implications) को समझने से शुरु करते हैं।

तृप्ति-पूर्वक जीना
(Living a Fulfilling Life)

हम सभी तृप्ति-पूर्ण जीना ही चाहते हैं। इसके लिये, हम उज्ज्वल भविष्य की योजना बनाते हैं, जिसमें बहुत सारा धन कमाना, शक्ति संपन्न होना (gaining power), पहचान पाना, विश्व भ्रमण करना, अच्छा परिवार होना, परिवार में और परिवार के बाहर सौहार्दपूर्ण (harmonious) संबंध को सुनिश्चित करना, स्वास्थ्य सुनिश्चित करना इत्यादि सम्मिलित होता है। साथ ही प्रदूषण मुक्त वातावरण हो, अपराध मुक्त समाज हो, प्रकृति में सबके लिये पर्याप्त संसाधन हो और सब जगह पर शांति हो, ऐसा भी हम चाहते हैं। वास्तव में हम ऐसा जीना चाहते हैं जिसमें हर क्षण सुख हो आनंद हो।

यह महत्वपूर्ण होगा कि हमारे तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये हमें जो भी आवश्यक लगता है उसकी एक सूची बनायें।

शिक्षा प्रक्रिया से गुजरते समय विद्यार्थियों से अपेक्षा की जाती है कि वे ऐसा जीने की तैयारी कर सकें। अब, यह देखना उपयोगी होगा कि क्या हम वास्तव में तृप्ति-पूर्वक जीने का अर्थ समझ पाये हैं या नहीं? क्या इसे निश्चितता से समझा जा सकता है या भविष्य की योजनायें टुकड़े-टुकड़े में ही बनाते रहना पड़ेगा, बिना ये जाने कि वास्तव में हम क्या होना चाहते हैं। क्या इसे शिक्षा के द्वारा समझा जा सकता है? क्या इस तरह के मुद्दों में कोई औपचारिक विषय (formal course**)** सहायक हो सकता है या हमेशा

इनको व्यक्तिगत स्तर पर टुकड़े-टुकड़े (bits and pieces**)** में ही समझना होगा? इस तरह के प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर पाने के लिये आइये सर्वप्रथम हम तृप्ति-पूर्वक जीने को समझना आरंभ करते हैं।

तृप्ति-पूर्वक: सुख पूर्वक एवं समृद्धि पूर्वक जीना

आइये देखते है कि क्या आपका तृप्ति पूर्वक जीना निम्नलिखित से पूरा होता है:

- हर समय आपके अंदर सुख का भाव रहता है।
- आपका शरीर स्वस्थ है।
- आप इस योग्य हैं कि अपनी सुविधा की आवश्यकता को पूरा कर सकते है, तथा- हर समय आप में समृद्धि का भाव बना रहता है।
- जो लोग भी आपके साथ जुड़े हुये हैं, उन सभी के साथ अच्छे संबंध हैं।
- आपके आस-पास समाज में शांति और व्यवस्था है।
- आप प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व (Co-existence) में हैं तथा प्रयास करते हैं कि प्रदूषण मुक्त वातावरण हो एवं शेष प्रकृति में संसाधनों का अभाव न हो।
- आप इस योग्य हैं कि स्वयं और अस्तित्व की वास्तविकताओं के प्रमुख पहलुओं को, जैसा है वैसा ही समझ सकें।

यह देखें कि क्या हमारी तृप्ति पूर्वक जीने से जुड़ीं सभी इच्छायें उपरोक्त सूची में है या कुछ और भी चाहिये? यह भी जाँचें कि जो भी दुःख या परेशानी है वह उपरोक्त में से किसी एक या अधिक के पूरा नहीं होने के ही कारण है। यदि उपरोक्त सूची में कुछ अन्यथा है तो उसे छोड़ सकते हैं।

ये आवश्यक रूप से वही सब है जो मूलतः हम चाहते हैं, चाहें इनको पाने में सफल हुये हो या नहीं। ऐसे ही, अपने प्रयास को भी देखें एवं जाँचें कि क्या हम इनको पाने के लिये ही प्रयास कर रहे हैं या हमारा प्रयास इसके अन्यथा है। इसको हम व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर जैसे परिवार, आस-पड़ोस एवं गांव/शहर, देश आदि के संदर्भ में भी देखें। आप देखेंगे कि ये मूल चाहना (basic aspirations) हम सभी में एक जैसी है। केवल आप में ही तृप्ति-पूर्वक जीने की चाहना है, ऐसा नहीं है, बल्कि प्रत्येक मानव ऐसा ही चाहता है। अब यदि तृप्ति पूर्वक जीना सभी मानव की एक सार्वभौम (universal) आवश्यकता है तो इसको पूरा करने का एक जैसा कार्यक्रम भी होने की संभावना है? इस पर विचार कीजिये।

तृप्ति पूर्वक जीने के लिये शिक्षा

(Education for a Fulfilling Life)

तृप्ति पूर्वक जीने की समझ और इसे सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम की समझ हेतु उपयुक्त शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिससे यह अपेक्षा है कि हमें ऐसा जीने के लिये हमें तैयार करे। इसी आशा में मानव अपने आयु का तिहाई से चौथाई हिस्सा शिक्षित होने में लगा देता है। शिक्षा ग्रहण करते समय यदि हमें अवसर मिले कि स्वयं तथा अस्तित्व को समग्रता में समझ सकें, तो हमारे द्वारा लिये गये निर्णय सुख और समृद्धि से जीने का मार्ग खोल देंगे। जीवन की इस अवस्था में जब हम अपनी शिक्षा पूर्ण कर रहे हैं तो यह स्पष्टता आवश्यक है कि हम क्या होना चाहते हैं (What we want to be), और इसको पूरा करने की योग्यता भी सुनिश्चित कर सकें, हम स्पष्टता से देख सकें कि स्वयं को बीस वर्ष या उसके बाद कहाँ देखना चाहते हैं?

इसको संबंधों के सन्दर्भ में भी समझा जा सकता है जैसे, सुखी जीवन जीने के लिये सौहार्दपूर्ण संबंध आवश्यक है। वर्तमान की तेज रफ्तार जिंदगी एवं बदलते सामाजिक परिवेश में सौहार्दपूर्ण संबंधों को बनाये रखना एक चुनौती है, ऐसे ही शारीरिक स्वास्थ्य को और धन सम्पति को बनाये रखना भी चुनौती पूर्ण हैं। जब हम उच्च शिक्षा ग्रहण करने जाते हैं, तो हमारे सम्मुख दो प्रमुख प्रश्न होते हैं– नौकरी और विवाह। क्या कोई ऐसा कार्यक्रम हो सकता है, जो हमें अपने करियर एवं जीवन साथी का चयन करने में सहायता प्रदान करें। यह ऐसे प्रश्न हैं जो हम सभी के साथ जुड़े ही हैं।

आगे, हम सब एक समाज में रहते हैं, किसी न किसी तरह समाज से जुड़ाव होता ही है। वास्तव में, हम अपने आस-पास की दुनिया से जुड़े ही होते हैं। हम इन सभी के साथ संबंधों का निर्वाह करना ही चाहते हैं।

यहाँ तक कि किसी एक संबंध में भी अगर उभय सुख (mutual happiness) या उभय-तृप्ति (mutual fulfilment) को सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है तो हमारे सामने दो ही विकल्प होते हैं पहला उसे नजर अंदाज कर दें या भूल जायें और दूसरा तनाव युक्त रहना (to feel stressed)। इन दोनों ही विकल्पों से उभय-तृप्ति को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। क्या हमारी शिक्षा से हमें ऐसी समस्याओं का समाधान मिलता है? अधिकतर समय यह देखा गया है कि छात्र ऐसी समस्याओं का समाधान खोजने के लिये अनेक पुस्तकें पढ़ते हैं, मित्रों से विचार-विमर्श करते हैं तथा उपदेश आदि भी सुनते हैं लेकिन किसी समय ऐसा प्रतीत होने लगता है कि अब इसे सुलझाया नहीं जा सकता है। परिणामतः: हममें से अधिकांश लोग टुकड़े-टुकड़े में ही हल (piecemeal solutions) को स्वीकारने के लिये विवश हो जाते हैं, जिनकी अपनी सीमायें होती हैं।

हमारे परिवार का समाज से एक मजबूत जुड़ाव हैं। जब दिन-प्रतिदिन हमारे आस-पास में हो रहे नकारात्मक घटनाओं की सूचना हमें समाचार पत्रों, टीवी समाचार या सोशल मीडिया के माध्यम से मिलती है, तो हममें असुरक्षा और भय का भाव बढ़ता है क्योंकि वास्तव में हम ये सब नहीं चाहते। आप स्वयं से ही पूछिये की आप कैसा समाज चाहते है जिसमें भय हो या अभय हो? आपको क्या सहज स्वीकार्य है? मूलतः आपकी क्या चाहना है?

1. आप किन्हीं ऐसी तीन नकारात्मक घटनाओं के बारे में लिखिए जिन्हें आप आये दिन टीवी या समाचार पत्रों में देखते हैं?
2. भविष्य में ऐसी घटनाएं ना हों इसके लिए आपके पास क्या समाधान हैं?

इसके बाद हमारे आस-पास की प्रकृति आती है। हमें बहुत भयावह लगता हैं, जब दिन प्रतिदिन बढ़ते हुये प्रदूषण, गर्म होते हुये वातावरण, घटते हुये भू-जलस्तर, समुद्र के बढ़ते जल स्तर, डूबते तटीय क्षेत्र एवं विषाक्त भोज्य पदार्थों जैसी समस्याओं से हमारा सामना होता है। इस तरह के संदेश आजकल हमारे मोबाइल फोन में आते ही रहते हैं। निश्चित रूप से न तो ये मानव के लिये अच्छा है और न ही शेष प्रकृति के लिये।

यह देखा जा सकता है कि इस पृथ्वी पर सिर्फ मानव ही इतनी लम्बी शिक्षा प्रक्रिया से गुजरता है, जो परिवार, समाज और औपचारिक शिक्षा के जरिये सुनिश्चित होती है। औपचारिक शिक्षा को मानव का मूल अधिकार माना गया है; अभिभावक उत्साहित होकर अपने बच्चों को विद्यालय भेजते हैं; हमारे समाज में पर्याप्त शिक्षण संस्थान और शिक्षा के लिये अन्य आवश्यक संसाधन मौजूद है। अध्यापकों के साथ-साथ पर्याप्त संख्या में छात्र भी आते हैं। इन प्रयासों से कौशल (skills) में सराहनीय विकास हुआ है। बावजूद इसके मानव ही है जो पृथ्वी पर अनेक समस्यायें उत्पन्न कर रहा है। यदि कोई स्वयं में तृप्ति नहीं महसूस कर पा रहा है, तो वह दूसरों की तृप्ति में भी

सहयोग नहीं कर सकता है। अब इस शिक्षा व्यवस्था में मुख्य रुप से जो ध्यान देने की आवश्यकता है वह है, मानव में तृप्ति।

मानव के लिये ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं:-
1. क्या करना है (What to do)?
2. कैसे करना है (How to do it)?

एक समग्र शिक्षा (holistic education) के लिये इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होगा। शिक्षा का वह क्षेत्र जो 'क्या करना है', से जुड़ा है उसे मूल्य शिक्षा कहते हैं। इस शिक्षा से हमारे लक्ष्य, उद्देश्य, मूल-चाहना एवं इसकी पूर्ति के कार्यक्रम की स्पष्टता होती है। दूसरा क्षेत्र 'कैसे करना है' से जुड़ा है, जिसे कौशल-शिक्षा (skill education) कहते हैं। इससे हम कार्यक्रम को लागू करने की विधि, पद्धति एवं तकनीकी सीखते हैं। ये दोनों ही शिक्षा के आवश्यक घटक हैं एवं दोनों पर ही हमें भली-भांति ध्यान देने की आवश्यकता है।

मूल्य शिक्षा

(Value Education)

तृप्ति पूर्वक जीने (Fulfilling life) के लिये अपनी चाहना की सूची को देखिये जिस पर पहले चर्चा हुई थी, ऐसा जीने को सुनिश्चित करने के लिये हमें स्वयं को और जो भी हमारे आस-पास है, उसको समझना आवश्यक है, इनके साथ हमारा क्या संबंध है, उसे स्पष्टता से पहचानना आवश्यक है। जब हम दूसरे मानव और शेष प्रकृति के साथ संबंध को स्पष्टता से पहचान कर निर्वाह करते हैं, तो यही **बड़ी व्यवस्था** (larger order) में हमारी भागीदारी के रूप में परिभाषित होता है। इन भागीदारियों को ही मानवीय मूल्यों का क्षेत्र कहा गया है।

किसी वस्तु का मूल्य उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है जिसका कि वह हिस्सा है।

> *उदाहरण के लिये एक कलम (Pen) का मूल्य यह है कि उससे लिखा जा सकता है। यहाँ पर लिखना पेन की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है, जिसमें पेन, मानव एवं कागज के साथ उपस्थित है। इसी तरह से आंख का मूल्य यह है कि इसका प्रयोग देखने के लिया किया जाता है। सब्जी के पौधे का मूल्य यह है कि वह पशुओं एवं मनुष्यों को पोषण प्रदान करता है।*

तो फिर मानव का मूल्य क्या है? इस प्रश्न का मतलब है– मानव की बड़ी व्यवस्था में क्या भागीदारी है? उदाहरण के लिये, शिक्षण के कार्य में विद्यार्थी की भागीदारी है कि जो पढ़ाया जा रहा है उसे समझना। **मनुष्य का मूल्य, बड़ी व्यवस्था (मानव, परिवार, समाज और अंततः प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर) में स्वाभाविक या अपेक्षित भागीदारी (natural or expected participation) है।** यहाँ पर यह ध्यान देना भी महत्वपूर्ण है कि **बड़ी व्यवस्था में भागीदारी निर्वाह करने की प्रक्रिया में हम सुखी महसूस करते हैं।** इस उदाहरण में, जो पढ़ाया जा रहा है यदि उसे हम समझ लेते हैं तो सुखी महसूस करते हैं। जब आप समझने की प्रक्रिया में भागीदारी करते हैं तो आपके अध्यापक भी सुखी महसूस करते है।

मानव के लिये, इस बड़ी व्यवस्था में दूसरे मानव, पेड़-पौधे, वायु, जल, पृथ्वी, पशु-पक्षी इत्यादि अर्थात् पूरी प्रकृति/अस्तित्व सम्मिलित है। किसी मानव का मूल्य, पूरे प्रकृति/अस्तित्व में उसकी भागीदारी है। अतः मानवीय मूल्यों को समझने के लिये, हमें मानव एवं इस पूरे प्रकृति/अस्तित्व में जो कुछ भी है उन सभी वास्तविकताओं का अध्ययन करने की आवश्यकता है, जिससे ये बड़ी व्यवस्था बनती है। अर्थात् मानव की भूमिका अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को समझना और उसका निर्वाह करना है।

मानवीय मूल्य की समझ के लिये मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है। जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही समझना आवश्यक है, जिससे कि हम उसके साथ भागीदारी का निर्वाह करने के योग्य हो सकें। **शिक्षा का वह भाग, जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी को समझने और वैसा जीने को सुनिश्चित करता है, उसे मूल्य शिक्षा कहते हैं।** यह बाकी शिक्षा के लिये आधार प्रदान करती है। अंततः तो पूरी शिक्षा को ही मूल्य आधारित होने की आवश्यकता है। यदि शिक्षा, मूल्य आधारित नहीं है तो वह मानव की मूल चाहना अर्थात् तृप्ति-पूर्वक जीने की पूर्ति नहीं कर पायेगी; अधिक से अधिक ऐसी शिक्षा के द्वारा कोई व्यक्ति अपनी सुविधा की पूर्ति तो कर पायेगा अर्थात् धन कमा सकेगा लेकिन मूल चाहना अछूती रह जायेगी। अपने आसपास को देखने पर (current state of the affairs) समझ में आता है कि हमारा जीना, धनार्जन तक ही सीमित हो गया है बजाय इसके कि हम तृप्ति-पूर्वक जी पायें। इस कमी को दूर करने के लिये शिक्षा व्यवस्था को ऐसा बनाने की आवश्यकता है जो तृप्ति-पूर्वक जीने में सहायक हो।

कौशल शिक्षा

(Skill Education)

कौशल (तकनीकी, प्रबंधन, औषधि आदि) हमारे जीवन में आवश्यक है। कौशल का हर क्षेत्र में समुचित विकास हुआ है जिसमें औषधि, उत्पादन, भवन एवं पुल निर्माण, सभी प्रकार के यातायात के साधन साइकिल से लेकर हवाई जहाज तक और दूरसंचार एवं टेलीविजन प्रमुख है। यह सूची बहुत बड़ी है। निश्चित रूप से कौशल की आवश्यकता है लेकिन यह भी समझना उतना ही महत्वपूर्ण है कि इसे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जा रहा है। क्या हम यह देख पाते हैं?

मूल्य एवं कौशल की परस्पर-पूरकता
(Complementarity of Value and Skills)

आइये कौशल एवं मूल्यों की परस्पर-पूरकता को समझने के लिये कुछ प्रश्नों पर ध्यान देते है: क्या आप अपने संचार एवं प्रबंधन कौशलों (communication and management skills) का प्रयोग दूसरों पर शासन (dominate) करने के लिये करते हैं या परस्परता में निर्वाह के लिये जैसे मित्र बनाने के लिये? क्या आप अपने चिकित्सा कौशल (medical skills) का प्रयोग बीमारी को ठीक करने के लिये करते हैं या वह व्यक्ति निरंतर स्वस्थ रह सके इसे सुनिश्चित करने के लिये? आप अपने वित्तीय कौशल (finance Skills) का प्रयोग भौतिक सम्पदा के एक समान वितरण (equitable distribution of wealth) को सुनिश्चित करने के लिये करते हैं या कुछ व्यक्तियों के लाभ को बढ़ाने (profit-maximization) के लिये? क्या आप अपनी संचार सुविधाओं (communication facilities) विशेषकर मोबाइल फोन जैसी उन्नत संचार सुविधा का प्रयोग दूसरे व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करने के लिये करते हैं या उपभोक्तावाद (consumerism) को बढ़ावा देने के लिये? अतः हम यह तो देख पा रहे हैं कि कौशल महत्वपूर्ण है लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह देखना होगा कि कौशल का प्रयोग किस उद्देश्य के लिये किया जा रहा है।

हम यह देख सकते हैं कि कौशल मात्र एक साधन (means) है, जिसके द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। किसी विशेष उद्देश्य को प्रभावी एवं दक्ष तरीके से प्राप्त करने के लिये कौशल की आवश्यकता तो है लेकिन कौन सा लक्ष्य, उद्देश्य हमारे लिये सही है, यह तय करना कौशल, विषय क्षेत्र (scope) के बाहर की बात है। यह निर्णय इस विषय क्षेत्र से बाहर आता है। अत:, यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि मानव के रूप में हम अपने उद्देश्य को पहचान सकें। इस निर्णय के बिना कौशल उद्देश्य विहीन, दिशाहीन हो जाता है, और इसका प्रयोग किसी भी उद्देश्य के लिये किया जा सकता है– रचनात्मक या विध्वंसात्मक (constructive or destructive)।

उदाहरण के लिये तकनीकी विषयों के छात्र तकनीक को सृजन (creating) करने, उसका विश्लेषण करने तथा उसका जीने में प्रयोग करने का अध्ययन करते हैं। यदि वे बिना यह जाने कि मानव का क्या उद्देश्य है, तकनीकी में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, तो उनका तकनीकी कौशल नकारात्मक हो सकता है जब वह इसका प्रयोग दूसरे व्यक्तियों का शोषण करने, उन पर शासन करने एवं उनको हानि पहुँचाने के लिये करते है। हमने परमाणु ऊर्जा या नाभिकीय ऊर्जा (atomic energy or nuclear energy) के प्रयोग के लिये तकनीक विकसित कर ली है। अब देखने वाली बात यह है कि इसका प्रयोग कितना कल्याणकारी उद्देश्यों (welfare purpose) के लिये हो रहा है और कितना भाग विध्वंसात्मक उद्देश्यों (destructive purposes) के लिये प्रयोग हो रहा है? ऐसा लगता है कि हमने इतने परमाणु हथियार बना लिये हैं, जो इस पृथ्वी को तीस बार तक विध्वंस कर सकते हैं (हालांकि यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोई पृथ्वी को एक से अधिक बार विध्वंस नहीं कर सकता है)।

आइये दूसरा उदाहरण लेते हैं- माना हम इस बात से सहमत हैं कि सुखी जीवन के लिये शरीर का स्वस्थ होना मूलभूत आवश्यकता है, तो हम शरीर को स्वस्थ रखने का कौशल सीखते हैं। कौशल, जैसे यह सीखना कि कौन सा भोजन और कौन सा शारीरिक अभ्यास हमारे शरीर को स्वस्थ रखेगा, जिससे शरीर भली-भांति कार्य करता रहे। शरीर से कुछ खास तरह के काम करने के संभावित तरीके क्या होंगे उनको भी सीखते हैं? यह सभी कौशल के अंतर्गत आते हैं। लेकिन इसके साथ यह समझना भी आवश्यक है कि हम इस शरीर का उपयोग किस उद्देश्य के लिये कर रहे हैं, यह मूल्य शिक्षा के क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

क्या आपको यह पता है कि शारीरिक अभ्यास क्यों करते हैं?

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है; मूल्य और कौशल दोनों की आवश्यकता साथ-साथ है, दोनों में परस्पर-पूरकता है। तृप्ति-पूर्वक जीने के लक्ष्य के प्रति किसी भी मानवीय प्रयास की सफलता के लिये दोनों के बीच परस्पर-पूरकता आवश्यक हैं।

कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता (प्राथमिकता)
(Priority of Values over Skills)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, **'क्या करना है'** को निर्धारित करने के लिये मूल्य की समझ आवश्यक है जबकि **'कैसे करना है'** को निर्धारित करने के लिये कौशल आवश्यक है। अब, यदि हम अपने आप से पूछें कि इनमें वरीयता क्रम क्या होगा, तो 'क्या करना है' यह पहले निर्धारित किया जायेगा उसके बाद ही हम 'कैसे करना है' के बारे में सोच सकते हैं। प्रश्न यह है की क्या हम ऐसा देख पा रहे हैं?

उदाहरण के लिये आप किसी रेलवे स्टेशन पर जाते हैं और टिकट क्लर्क से टिकट मांगते हैं। टिकट क्लर्क आपसे पूछेगा कि आप कहाँ जाना चाहते हैं? और आप जवाब में कहते हैं कि मुझे ऐसी ट्रेन का टिकट दें जो आरामदायक हो, वातानुकूलित हो, सबसे तेज चलने वाली हो तो क्या इससे काम चलेगा? आज कल इसी प्रकार से अनेक चीजे हम कर रहे है या हो रही हैं। हम बहुत तेज चलने के तरीके खोज रहे हैं, सुपर सोनिक रफ्तार से यात्रा करना चाहते हैं लेकिन क्या हम इसके बारे में आश्वस्त हैं कि पहुँचना कहाँ चाहते हैं और वहाँ पहुंच कर करेंगे क्या; और क्या वह हमारे तृप्ति-पूर्वक जीने को पूरा करता है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिस पर पहले विचार किया जाना आवश्यक है कुछ भी करने की सोचने से पहले।

इस प्रकार से, क्या आप ये देख पा रहे हैं कि कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता है हालांकि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और महत्वपूर्ण निष्कर्ष
*(*Appreciating the Need and Important Implication of Value Education)

मूल्य शिक्षा एवं कौशल की शिक्षा की परस्पर-पूरकता और इनके वरीयता क्रम को समझने के उपरांत, अब हमें मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय को समझना हैं।

मूल्य शिक्षा द्वारा हमारे लक्ष्य की सही पहचान हो पाती है समग्र दृष्टि का विकास व समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिए कार्यक्रम की स्पष्टता हो पाती है| विस्तार में जाने पर हम देख पाएंगे कि हमारी पूर्व मान्यताओं का मूल्यांकन करते हुए ,हम वर्तमान समस्या का समाधान हमें मिल पाएगा और हममें नैतिक योग्यता का विकास भी सम्भव होगा। इस पूरे भाग को विस्तार में कक्षा १० में देखेंगें।

क्या आपने इस दिशा में सोचा है कि भविष्य के लिए आपकी क्या योजना है?

मूल्य शिक्षा के लिये दिशानिर्देश
(Guidelines for Value Education)

अब तक हमने मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और इसके आशय को चिन्हित कर लिया है, अब हम इसके निश्चित, प्रभावी और व्यापक स्तर पर स्वीकार्य दिशानिर्देशों को देखते हैं, जिससे वर्तमान शैक्षणिक व्यवस्था में मूल्य शिक्षा का परिचय कराया जा सके। नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश दिये गये हैं:

सार्वभौम
(Universal)

मूल्य शिक्षा के अंतर्गत हम जो कुछ भी पढ़ते हैं वह सार्वभौम रूप से स्वीकार हो अर्थात् हर व्यक्ति को, सभी स्थानों पर और हर समय एक जैसा स्वीकार हो। इसका आशय यह हुआ कि मूल्य शिक्षा किसी संप्रदाय, जाति, राष्ट्र अथवा लिंग पर निर्भर न हो इसे सार्वभौम मानवीय मूल्यों के रूप में देखा जाये।

*उदाहरण के लिये, **संबंध में सम्मान का भाव सार्वभौमिक** है अतः यह मूल्य शिक्षा का एक हिस्सा हो सकता है।*

तर्कसंगत
(Rational)

मूल्य शिक्षा तर्कसंगत हो न कि मान्यताओं या रूढ़ियों पर आधारित हो, एवं उससे जुड़े प्रश्नोत्तर के लिये अवसर हो। यह उपदेशों का संकलन (set of sermons) या क्या करें और क्या ना करें (do's and don'ts) के रूप में न हो।

स्वाभाविक और जाँचने योग्य
(Natural and Verifiable)

मूल्य शिक्षा में हम जिन बातों का अध्ययन करना चाहते हैं वह हमारे लिये स्वाभाविक हो और उसको जाँचा जा सके। स्वाभाविक (natural) का अर्थ है कि यह हमें सहज स्वीकार्य हो और जब हम ऐसे मूल्यों के आधार पर जिएं तो यह परस्पर-पूरक भी हो। इन मूल्यों के आधार पर जीने से हम भी सुखी होते हों और जिनके साथ हमारा जीना होता है उनके सुख के अर्थ में भी अनुकूल हो, साथ ही साथ प्रकृति की अन्य इकाइयों को भी समृद्ध बनाता हो। हम इन मूल्यों को स्वयं में जाँचना चाहते हैं, अर्थात् हम किसी भी बात को सिर्फ इसलिये नहीं मानना चाहते कि ऐसा कहा जा रहा हैं, बल्कि हम उस बात को स्वयं में जाँचना चाहते है कि वह हमारे लिये सही है कि नहीं। ऐसा दो जाँचो के द्वारा किया जा सकता है, पहला उस बात की स्वयं में जाँच करके और दूसरा उसे अपने जीने में प्रयोग करने के उपरान्त आने वाले परिणामों का परीक्षण करके।

समग्र
(All Encompassing)

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु में हमारे जीने के सभी आयाम (विचार, व्यवहार, कार्य, और समझ) और जीने के सभी स्तर (मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व) शामिल हों। यह सिर्फ एक बौद्धिक अभ्यास (Intellectual exercise) या सूचनाओं का आदान-प्रदान मात्र न हो।

व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाला
(Leading to Harmony)

अंततः, मूल्य शिक्षा हमें स्वयं में व्यवस्था (harmony) तथा दूसरों के साथ भी व्यवस्था की स्थिति की ओर ले जाने में सहायक हो। जब हम इन मूल्यों के आधार पर जीते हैं, तो हम यह परीक्षण करना आरम्भ करते हैं कि, इससे स्वयं में व्यवस्था और साथ ही साथ दूसरे मानव और शेष प्रकृति जिनके साथ हमारा जीना होता है, उनके साथ भी व्यवस्था हो।

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु
(Content of Value Education)

हमने यह देख लिया है कि मानव का मूल्य सम्पूर्ण अस्तित्व रुपी बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है। अतः मानव मूल्यों को समझने के लिये अस्तित्व में जो भी है उन सभी का अध्ययन करने की आवश्यकता है। मानव की भागीदारी अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ उसका संबंध है। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्ययन की विषय-वस्तु में सब कुछ सम्मिलित हो अर्थात्-

- इसमें मानव के जीने के सभी आयाम सम्मिलित हों - विचार, व्यवहार, कार्य और अनुभव (realization)।
- इसमें मानव के जीने के सभी स्तर सम्मिलित हों - मानव, परिवार, समाज, प्रकृति और अस्तित्व।

इसके अनुसार, मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु है- मानव, मानव की मूल-चाहना (सुख) को समझना; मानव के लक्ष्य को समझना; प्रकृति की अन्य वास्तविकताओं को समझना, उनके स्वाभाविक अंर्तसंबंध (innate interconnectedness) को समझना, प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था को समझना और अंततः प्रकृति/अस्तित्व में मानव की भागीदारी को समझना। अतः, इसमें सभी स्तर मानव, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व की व्यवस्था

को समझना और अंततः इस समझ के अनुसार अपने विचार, व्यवहार और कार्य के प्रति सजग रहते हुये जीने को सीखना सम्मिलित है।

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया- स्व अन्वेषण
(Process of Value Education- Self exploration)

मानवीय मूल्य को समझने के लिये स्व अन्वेषण एक उचित प्रक्रिया है, क्योंकि ये क्षमता के रूप में हर मानव में विद्यमान है। मानव में पहले से ही मानवीय मूल्यों के लिये सहज स्वीकृति है। हमें तो सिर्फ उनको स्वयं में देखना है या उनके प्रति जागरूक होना है। उदाहरण के लिये अगर आप से पूछा जाये कि आपको क्या सहज स्वीकार्य है: अपने परिवार के सदस्यों के साथ संबंध का भाव या विरोध का भाव? उत्तर के लिये आप स्वयं में ही देखें। इसका स्वाभाविक उतर (natural response) आता है, संबंध का भाव। संबंध का भाव हमारे लिये मूल्य है। इस चर्चा में संबंध का भाव आपके अंदर पैदा नहीं किया गया बल्कि आपके अंदर पहले से ही इसके लिये सहज स्वीकार्यता थी। जाँच के लिये पूछें गये प्रश्नों के माध्यम से आपने, अपना ध्यान, अपने विचारों की तरफ मोड़ करके, इसको सिर्फ स्वयं में देखा। अतः मानवीय-मूल्य के अध्ययन के लिये एक ऐसी प्रक्रिया हो जिसके द्वारा आप में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का विकास हो। सभी वक्तव्यों को एक प्रस्ताव के रूप में लेते हुये आप स्वयं में वास्तविकताओं की जाँच करने के योग्य हो। मूल्य शिक्षा, क्या करें या क्या ना करें जैसे वाक्यों का समूह या उपदेशों के रूप में न हो, बल्कि यह स्व-अन्वेषण अर्थात् स्वयं में जाँच (self-investigation) की एक प्रक्रिया हो। इसे अगले अध्याय में और विस्तार से समझेंगे।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- हम सभी तृप्ति-पूर्ण, व्यवस्थित जीवन जीना चाहते हैं और उसी के लिये कार्य कर रहे हैं। इसे ही हम मूल्यवान मानते हैं।
- किसी वस्तु का मूल्य बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है, जिसका कि वह हिस्सा है। हम यह देख सकते हैं कि मानव- व्यक्तिगत, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर भागीदारी करता है। सभी स्तरों पर मानव की भागीदारी जिससे संगीत (harmony) या व्यवस्था होती है वही मानव मूल्य है।
- मूल्य शिक्षा, शिक्षा का वह हिस्सा है जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी की समझ और वैसा ही जीने को सुनिश्चित करता है।
- मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु के लिये आवश्यक है कि वह सार्वभौम, तार्किक, स्वाभाविक और जाँचने योग्य, सर्व-सम्मिलित एवं व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाली हो।
- मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया के लिये स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया आवश्यक है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच और उसको जीने में प्रयोग करके आने वाले परिणामों को जाँचना सम्मिलित है।

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self evaluation)

क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?

1. मूल्य को परिभाषित कीजिये। मानवीय-मूल्यों की कुछ उदाहरणों के साथ व्याख्या कीजिये।
2. कौशल को परिभाषित कीजिये। कुछ उदाहरणों के साथ इसे समझायें।
3. मूल्य एवं कौशल में प्रमुख अंतर भी बताइये।
4. जैसा इस अध्याय में बताया गया है कि मानव के लिये दो प्रमुख प्रश्नों के उत्तर ढूंढने आवश्यक हैं:
   a) क्या करना है?
   b) कैसे करना है?

   इन दोनों प्रश्नों के अर्थ कुछ उदाहरणों के साथ बताइये ।
5. शिक्षा के दो प्रमुख क्षेत्रों की व्याख्या कीजिये। ये एक दूसरे के परस्पर-पूरक कैसे हैं?
6. तृप्ति-पूर्वक जीने में मूल्य व कौशल किस प्रकार सहायक हैं?
7. मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु क्या है? शैक्षणिक संस्थानों में इनका क्या महत्व है?
8. मूल्य शिक्षा के मूलभूत दिशानिर्देशों को समझाइये। इन दिशानिर्देशों की क्या आवश्यकता है?
9. मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया की व्याख्या करें?

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-exploration)

(दी गई विषय-वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के क्रम में, कम से कम वैचारिक स्तर पर, इस अभ्यास को व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

1. आपके लिये तृप्ति-पूर्ण जीने का क्या आशय है? उन प्रमुख पाँच बिन्दुओं की सूची बनाइये जो तृप्ति-पूर्वक जीने के बारे में आपको आवश्यक लगते हैं। सूची बनाते समय कृपया अपने संपूर्ण जीवन के बारे में सोचें न कि अपनी वर्तमान जीवन की स्थिति के बारे में जैसे युवा, प्रौढ़, वृद्धावस्था आदि।

2. आप जिन्हें मानवीय-मूल्य मानते हैं ऐसी पाँच बातों का चयन करें। अब सभी मूल दिशानिर्देशों को लिखिये एवं ये देखिये कि क्या ये सभी आपके मूल दिशानिर्देशों को संतुष्ट करती हैं।(संकेत: कोई कह सकता है कि विश्वास मानवीय-मूल्य है। अब जाँचें कि क्या यह मूल दिशानिर्देशों को संतुष्ट करता है)

3. क्या आपके लिये मानवीय मूल्यों को जानना आवश्यक है? क्या आप यह देख पा रहे हैं कि आपके लिये कौशल-विकास एवं मूल्य शिक्षा दोनों आवश्यक हैं? आपको स्वयं के लिये कैसी शिक्षा आवश्यक लगती है इसके बारे में लिखिये। आप उससे परिणाम स्वरूप क्या चाहते हैं यह भी लिखिये? (**संकेत:** शिक्षा में वह सब समाहित है जो जानकारी के तौर पर आप अपने परिवार, विद्यालय या समाज से लेते हैं। आप इन सूचनाओं से कुछ सीखते हैं या कुछ समझते हैं)

4. अपनी इच्छाओं की सूची बनाइये- हम आगे इनका संदर्भ लेते रहेंगे।

अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास **'अपनी समझ को जाँचे'** के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग,मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

'जब मैं छोटे से छोटे रूप में भी अपनी भागीदारी करता हूँ तो मैं सुखी होता हूँ। यह एक बहुत ही साधारण सी बात है। मुझे जीने के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्वाभाविक भागीदारी (natural participation) को समझने की जरूरत है, अपनी भागीदारी का निर्वाह करने की योग्यता विकसित करने की आवश्यकता है और इसके बाद सिर्फ इसे करना है। यही स्वतंत्रता और सुख है|

अनुभाग 4: आपके प्रश्न

(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। अब तक के दिये गये प्रस्तावों के स्व-अन्वेषण से यदि आपके कुछ पुराने प्रश्न उत्तरित हुये हैं तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 2: स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया
(Self-exploration as the Process for Value Education)

पुनरावृति
(Recap)

अध्याय-1 में, हमने मूल्य शिक्षा की आवश्यकता, मूल दिशा-निर्देश, विषय-वस्तु एवं प्रक्रिया के बारे में चर्चा की। हमने देखा कि, किसी वस्तु का मूल्य, उसकी अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है। मानव के रूप में, जब हम अपनी भागीदारी या भूमिका का निर्वाह कर रहे होते हैं तो हम सुख के भाव में होते हैं, हम अपने मूल्य के अनुसार जीते हुये सुख के भाव में रहते हैं (अर्थात् स्वयं में संगीत पूर्वक जीते हैं एवं दूसरे मानव और प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ भी व्यवस्था में जीते हैं)। अपने मूल्यों को समझना तथा उसके अनुसार जीना ही मूल्य शिक्षा है। हमने स्व-अन्वेषण को मूल्य शिक्षा के प्रक्रिया के रूप में पहचाना।
इस अध्याय में हम स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को कुछ उदाहरणों की सहायता से समझेंगे।

स्व-अन्वेषण क्या है?
(What is Self-exploration*?*)

आइये, स्व-अन्वेषण का अर्थ समझने से शुरू करते हैं। स्व-अन्वेषण, स्वयं के अधिकार पर, स्वयं में निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण के द्वारा वास्तविकताओं को देखने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा अस्तित्व में जो वास्तविकतायें हैं, और उसके साथ हमारी जो भागीदारी है, उसको समझने की कोशिश करते हैं, जिसे हमने मूल्य (value) के रूप में पहचाना है। यह आपको ही तय करना है कि आपके लिये क्या मूल्यवान है और क्या मूल्यवान नहीं है। इस पुस्तक में जो भी दिया गया है वह केवल एक प्रस्ताव है, यह आपके स्वयं में जाँच (self-verification) के लिये है।
अब, किसी प्रस्ताव को हम कैसे जाँचेंगे? क्या हम इसकी तुलना अपनी मान्यताओं या पूर्वाग्रहों से करेंगे? या इसकी तुलना हम उससे करेंगे जो हमने पढ़ा या सुना है, क्या इस प्रक्रिया से स्वयं में आश्वस्ति होती है?
दिये गये प्रस्ताव को जाँचने की दिशा में पहला कदम यह है कि आप इसे अपने अधिकार पर, अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचे। यदि प्रस्ताव आपको 'सहज स्वीकार्य' (natural acceptance) है तो यह आपके लिये सही है, और यदि प्रस्ताव आपको सहज स्वीकार्य नहीं है, तो फिर यह आपके लिये सही नहीं है।

> *उदाहरण के लिये, यदि आप अपने से पूछें कि आपको क्या सहज स्वीकार्य है – "अपने परिवार के सदस्यों के साथ संबंध के भाव में जीना"? या "उनके साथ विरोध के भाव में जीना"? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट एवं तुरंत ही मिल जाता है, आपने इसका उत्तर कैसे पाया? आपने देखा, हमें बाहर से या किसी और से पूछने की या किसी यंत्र की सहायता से उत्तर ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है। हम इसी क्षमता को 'सहज स्वीकृति' कहते हैं। यह 'सहज स्वीकृति' स्वाभाविक रूप से हमारे में हमेशा बनी रहती है। हमें सिर्फ इस पर ध्यान देना होता है। प्रत्येक मानव में ये सहज स्वीकृति है ही और इसके आधार पर स्व-अन्वेषण की क्षमता भी है। हमें इसके लिये किसी विशेष प्रकार की योग्यता की आवश्यकता नहीं है। हमें केवल इस उपलब्ध क्षमता को योग्यता में बदलने का प्रयास शुरू करना है।*

स्वाभाविक रूप से, हम अपने परिवार के सदस्यों के साथ संबंध के भाव में ही जीना चाहते हैं, इस चाहने पर इस बात से फर्क नहीं पड़ता कि हम या वे आपस में किस प्रकार से रह रहे हैं। इसे हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने में जाँच सकता है। कई बार हम विरोध के भाव में रहते हैं, यहाँ तक कि अपने परिवार के सदस्यों के साथ भी, लेकिन यह हमें सहज रूप से स्वीकार्य नहीं होता है। विरोध के भाव में हम असहज महसूस करते हैं और अंदर से इस स्थिति को ठीक करना चाहते हैं। हमें सदैव संबंध का भाव ही सहज स्वीकार्य होता है।

आगे, 'स्व-अन्वेषण' संवाद (dialogue) की एक प्रक्रिया है। शुरू में यह संवाद आपके और हमारे बीच में होता है। यह पुस्तक, क्रम से प्रस्तावों की श्रृंखला को आपके सामने जाँच के लिये प्रस्तुत करती है। जैसे-जैसे आप इसका अध्ययन (explore) करते हैं, प्रस्तावों को जाँचते हैं, और इन प्रश्नों को अपने आप से पूछते हैं, यह प्रक्रिया आपमें संवाद के रूप में चलने लगती है।

स्वयं में संवाद

(The Dialogue Within)

आप स्वयं में चल रहे संवाद को देखें, यह संवाद 'जैसा मैं हूँ' (What I am?) और 'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' इसके बीच हो रहा है। (चित्र. 2-1. देखें)

चित्र. 2-1. स्वयं में संवाद

अपनी वर्तमान स्थिति को देखने का प्रयास करें:

- आपको अपनी सहज स्वीकृति के प्रति स्पष्टता हैं, और यही आपका मार्गदर्शन कर रही है या,
- आपको अपनी सहज स्वीकृति के प्रति पूरी तरह से स्पष्टता नहीं हैं, और आप किसी अन्य आधार पर निर्णय ले रहे हैं।

वास्तव में आप जो करना चाहते हैं, और वस्तुत: आप जो कर रहे हैं, कई बार इसमें बहुत अंतर होता है। यह देखने की कोशिश करिये कि कई बार आप यह कह कर रुक जाते हैं कि "मेरा यह मतलब नहीं था" या सोचते हैं कि "अरे मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ "वास्तव में ऐसा करने का मेरा आशय नहीं था" इस तरह की दुविधा (dichotomy) हमको असहज करती रहती है, क्योंकि कुछ मूल मुद्दे हममें हैं जिनका समाधान होना आवश्यक है। सामान्यतः हम इस प्रकार के अन्तर्विरोध को ठीक करने की स्थिति में नहीं होते हैं। यहाँ हम उन मूल मुद्दों को पहचानने का प्रयास करेंगे, ताकि उसको ठीक कर सकें।

'जैसा मैं हूँ' (What I am?) इसका तात्पर्य है, मेरी इच्छा, विचार, आशा, मेरी कल्पनाशीलता और वह सभी कुछ जो मेरे अंदर ही चल रहा होता हैं। (चित्र. 2-2. देखें) इसमें यह भी सम्मिलित है कि मैं कैसा भाव रखता हूँ या मैं कैसा महसूस करता हूँ; जैसे मैं क्या सोचता हूँ, मैं अपने निर्णय कैसे लेता हूँ और मैं दूसरों से क्या अपेक्षा रखता हूँ। यह मेरी वर्तमान योग्यता (competence) है जिसके आधार पर मैं जीता हूँ।

'जैसा मुझे सहज स्वीकार्य है' ('What is naturally acceptable to me') यही मेरी सहज स्वीकृति है, यही मेरी चाहना है। यह 'वास्तव में मैं जैसा होना चाहता हूँ' वही है ('What I really want to be')। यह मूल वास्तविकता हर मानव में स्वाभाविक रूप से है। हम इसका सन्दर्भ ले या न ले लेकिन ये हममें हमेशा रहता ही है। मैं अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार जी पाऊँ या न जी पाऊँ लेकिन मैं यह देख सकता हूँ कि "वास्तव में मैं क्या होना चाहता हूँ"। उदाहरण के लिये हम यह आसानी से देख पाते हैं कि हम संबंध पूर्वक जीना चाहते हैं, हम अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं, यही हमारी सहज स्वीकृति है।

ज्यादातर हम अपने बारे में अनभिज्ञ रहते हैं, अर्थात् हम अपनी इच्छाओं, मान्यताओं के बारे में स्पष्ट नहीं रहते है। अब यदि आपको यह देखना है कि 'आप क्या हो' (What are you?) अर्थात् आप स्वयं की इच्छा, विचार, आशा को देखना चाहते हैं या आप अपनी कल्पनाशीलता (imagination) को देखना चाहते हैं, इसके लिये आपको कहाँ देखना पड़ेगा, अपने अंदर या बाहर? निःसंदेह आपको अपने अंदर ही देखना पड़ेगा। इसी प्रकार से यह देखने के लिये कि 'आप को क्या सहज स्वीकार्य है'? आपको अपने अंदर ही देखना पड़ेगा। ये दोनों वास्तविकतायें हमारे अन्दर ही हैं।

इस अध्याय में पहले हमने पूछा था कि आप को क्या सहज स्वीकार्य है: अपने परिवार के सदस्यों के साथ संबंध के भाव में जीना या विरोध के भाव में जीना, आप देख सकते हैं कि आप को सहज रूप से क्या स्वीकार्य है। इसी तरह से जब आपने देखा कि 'आप क्या हो' तो आपने क्या पाया? हर समय आप में संबंध का भाव रहता है, या कभी संबंध का और कभी विरोध का, या हर समय विरोध का भाव रहता है? केवल आप ही ये देख सकते हैं, कि आप क्या हैं, आपके अंदर क्या चल रहा है।

जब आप इन दोनों वास्तविकताओं को देखने के योग्य होते हैं तो आप यह जान पाते हैं कि क्या वे एक जैसी ही हैं या अलग-अलग, इन दोनों में संगीत (harmony) है या अन्तर्विरोध । यह स्वयं के साथ संवाद है। आप अवश्य पूछ सकते हैं कि यह महत्वपूर्ण क्यों है।

इसे जानने के लिये एक उदाहरण की मदद लेते हैं, माना कि आप किसी से बदला लेने के बारे में सोच रहे हैं। दो घंटे तक बदला कैसे लेना है, सोचने के बाद आप इस विचार को त्याग देते हैं। क्या आप इन दो घंटों तक स्वयं में सहज थे या असहज?

बिल्कुल भी सहज नहीं थे, क्या ऐसा नहीं है? आपने विचार तो त्याग दिया और दूसरे व्यक्ति को कुछ व्यक्त भी नहीं किया, लेकिन आपके साथ क्या हुआ? आपने स्वयं को दो घंटे के लिये असहज बना लिया। हम देख सकते हैं कि जब हम किसी से बदला लेने के बारे में सोचते रहते हैं तो हमारे अंदर ही विरोध का भाव होता है। चूंकि विरोध का यह भाव हमें सहज स्वीकार्य नहीं है, इसलिये जब हम विरोध के बारे में सोच रहे होते हैं, तो हम इसी अन्तर्विरोध के कारण असहज होते हैं। इसी प्रकार से 'आप क्या हो' और 'आपको क्या सहज स्वीकार्य है' के बीच अन्तर्विरोध (contradiction) होता है, और यही आपके लिये असहजता का कारण होता है।

आपके अंदर चलने वाले इस संवाद (dialogue) को देखने के लिये पहले यह देखें कि 'आप को क्या सहज स्वीकार्य है' और उसके बाद यह देखे कि 'आप क्या हो'। इसके बाद यह देखना होता है कि आप जो हैं वह आपकी सहज स्वीकृति के अनुसार है या सहज स्वीकृति के विरोध में। यह देखना ही स्वयं में संवाद का आशय है। हम आपके अंदर इस संवाद की प्रक्रिया को देखने की शुरूआत कराने में सहयोग करने का प्रयास कर रहे हैं। हम आपको सही प्रस्ताव देने की कोशिश कर रहे हैं, जिससे आप यह जाँच सकें कि यह आपको सहज स्वीकार्य है या नहीं।

एक बार जब यह संवाद आप में शुरू हो जाता है, तो आप स्वयं से यह प्रश्न पूछना शुरू करते हैं कि आपकी इच्छा, विचार, आशा आपकी सहज स्वीकृति के अनुसार है या नहीं, इनमें संगीत है या अन्तर्विरोध । हमने यह पहले ही देख लिया है कि जब हम अन्तर्विरोध की स्थिति में होते हैं तो स्वयं में असहज महसूस करते हैं। इसके बाद हम यह भी देख चुकें हैं कि जब हम स्वयं में संगीत की स्थिति में होते हैं तो अपने आप में सहज महसूस करते हैं। जब हम अपने अंदर इस संवाद की प्रक्रिया को स्थापित कर लेते हैं तो हमारे अंदर स्वयं में संगीत कि स्थिति बनाना प्रारंभ हो जाती हैं। यह संवाद की प्रक्रिया स्वयं के विकास (self-evolution) में सहयोग करती है और हम स्वयं में और अधिक सहज होना शुरू हो जाते हैं।

आइये अब देखते हैं कि जब आप स्वयं में संगीत(Harmony) में होते हैं तो क्या होता है- जैसे कि आप के अंदर संबंध का भाव है और आप संबंध के बारे में सोच रहे हैं, चूंकि आपकी सहज स्वीकृति संबंध के लिये है इसलिये आप स्वयं में संगीत की स्थिति में होते हैं अर्थात् "जैसा आप हैं" और "जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है" में एकरूपता हैं। इस प्रकार जब आप स्वयं में संगीत" की स्थिति में होते है तो आप स्वयं में सहज महसूस करते हैं। अब आगे यह जाँचने का प्रयास कीजिये कि इस स्थिति में आप सुखी हैं या दुःखी?

जब भी हम कुछ ऐसा करते हैं जो हमें सहज स्वीकार्य नहीं होता तो हमारे अंदर एक अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके लिये हमें कोई अलग से क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है, सिर्फ ऐसा कुछ सोचते ही जो हमें सहज स्वीकार्य नहीं है, हमारे अंदर अन्तर्विरोध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अब उस उदाहरण के बारे में दोबारा सोचिये जिसमें हमने 'दो घंटे तक बदला लेने की बात सोचने' के बारे में कही थी। इसमें हम ये देख पाते हैं कि हम अपने अंदर असहज थे क्योंकि 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' में एकरूपता नहीं थी। स्वयं में अन्तर्विरोध की यह स्थिति ही दुःख है।

जबकि अधिकांश समय हम इस बारे में अनभिज्ञ होते हैं कि 'मुझे क्या सहज स्वीकार्य है' या 'मैं क्या हूँ'। ऐसा भी हो सकता है की इन दोनों में एक आंतरिक संवाद चल रहा हो या नहीं भी चल रहा हो, यदि इस पर ध्यान दें तो:

- आप देख सकते हैं कि 'आपको क्या सहज स्वीकार है'।
- आप यह भी देख सकते हैं कि 'आप क्या हो' या 'आप का भाव क्या है?' और 'आप क्या सोच रहे हैं?' (आपकी इच्छा, विचार और आशा के बारे में)
- स्वयं में चल रहे संवाद को देखना शुरू करें यह पूछते हुये कि "जैसा मैं हूँ' और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार है' में संगीत हैं या नहीं।

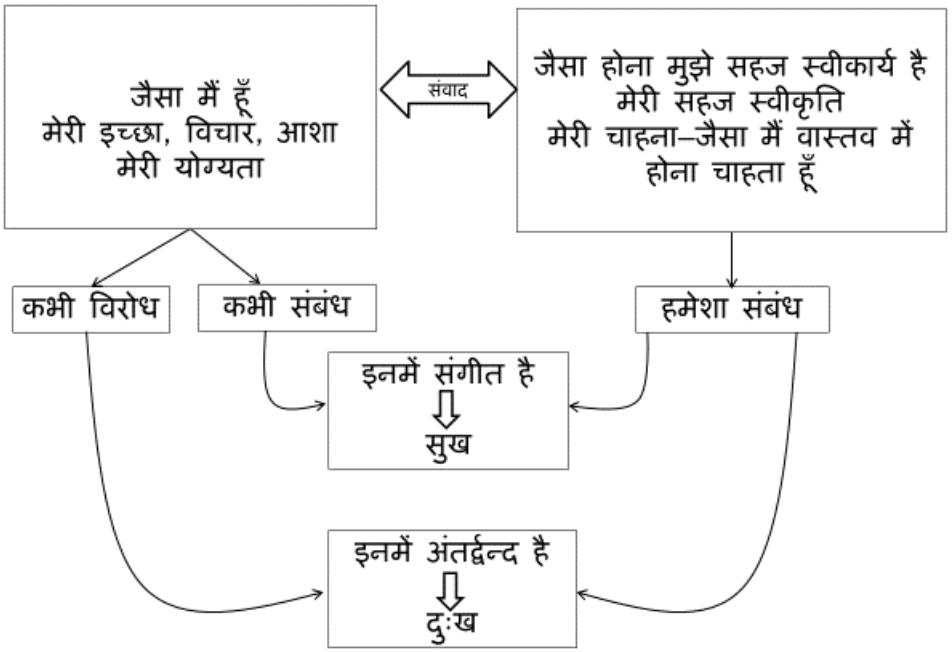

चित्र. 2-2. 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा मैं वास्तव में होना चाहता हूँ'

जब हम स्वयं में संगीत में होते हैं तो हम सुख की स्थिति में होते हैं, और जब हम स्वयं में अन्तर्विरोध में होते है तो हम दुःख की स्थिति में होते हैं। इसलिये:

स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है।
(Happiness is to be in a state of harmony)

स्वयं में अन्तर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुःख है।
(Unhappiness is to be forced to be in a state of contradiction)

हम अन्तर्विरोध की स्थिति में नहीं रहना चाहते हैं, इसलिये जब भी अन्तर्विरोध की स्थिति होती है तो हम इससे दूर भागने की कोशिश करते हैं, लेकिन जब हम इससे दूर नहीं भाग पाते और इस अन्तर्विरोध की स्थिति में रहने के लिये बाध्य होते है इसी बाध्यता की स्थिति को दुःख कहा।
हम में से प्रत्येक व्यक्ति स्व-अन्वेषण को कर सकता है, स्वयं में चलने वाला संवाद इस प्रक्रिया का मुख्य भाग है।
आइये अब स्व-अन्वेषण के विषय वस्तु को पहचानते हैं, एवं इसकी प्रक्रिया को और अधिक विस्तार से समझते हैं।

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु
(The content for self-exploration)

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु क्या होगा?
स्वयं में तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये जो कुछ भी समझाना आवश्यक है, वह स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु होगा, क्या यह सही नहीं है?
स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु मूलतः दो भाग में है:

a) चाहना - आपकी मूल चाहना क्या है? (What is your basic aspiration?)
b) कार्यक्रम - आपकी मूल चाहना को पूरा करने के लिये क्या करना है?

सर्वप्रथम हम मानव के रूप में ये जानना चाहेंगे कि हमारी मूल चाहना क्या है? और दूसरा इसको पूरा करने के लिये हमको क्या करना होगा? मूल चाहना वास्तव में हमारी इच्छा क्या है, हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं अर्थात् 'हमारा लक्ष्य क्या है' के रूप में है। कार्यक्रम, वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपनी चाहना को पूरा करना चाहते है अर्थात् हमारे लक्ष्य को प्राप्त करने की विधि है।
क्या उपरोक्त दोनों प्रश्न आपके लिये महत्वपूर्ण हैं? क्या आपके लिये यह महत्वपूर्ण है कि आप यह जान पायें कि आपकी मूल चाहना क्या है और इस मूल चाहना को प्राप्त करने के लिये क्या कार्यक्रम होना चाहिये?
यह दोनों प्रश्न किसी भी मानव के लिये महत्वपूर्ण हैं। आइये अब देखते हैं कि यदि हमारे पास इन दोनों प्रश्नों का उत्तर हो, तो और कोई प्रश्न शेष बचता है क्या? या यह कहें कि यदि हम अपनी मूल चाहना को जानते हैं और अपनी मूल चाहना को पूरा करने का कार्यक्रम भी स्पष्ट है, तो और कोई प्रश्न शेष रह जाता है क्या?
क्या यह दोनों प्रश्न आपके लिये महत्वपूर्ण है? क्या आपके लिये आपकी मूल चाहना (basic aspiration) को जानना महत्वपूर्ण है? आपके लिये आपकी मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम को जानना महत्वपूर्ण है?
यदि हम इन दो प्रश्नों के उत्तर पा जाते हैं, तो व्यवहारिक रूप से हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं! वास्तव में, हमारे में जो भी प्रश्न बने हैं, वह इन दोनों की स्पष्टता की कमी के कारण हैं। यदि हमारे पास इन दोनों प्रश्नों का उत्तर है, तो अब सिर्फ इसके अनुसार कार्य करना शेष है।

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया
(The process of self-exploration)

हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को पहले ही पहचानना शुरू कर दिया है। आइये अब हम इसे और विस्तार से देखते हैं।
जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कि जब हम यह कहते हैं कि यह एक प्रस्ताव है, तो इसे सच या झूठ, सही या गलत नहीं मानना है, इसे जाँचना है- अपने अधिकार पर, अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर।
यद्यपि, सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचना, इस प्रक्रिया का केवल एक भाग है। इससे अधिक और क्या है आगे देखेंगे। चित्र. 2-3. को देखिये, यह स्व-अन्वेषण की पूरी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

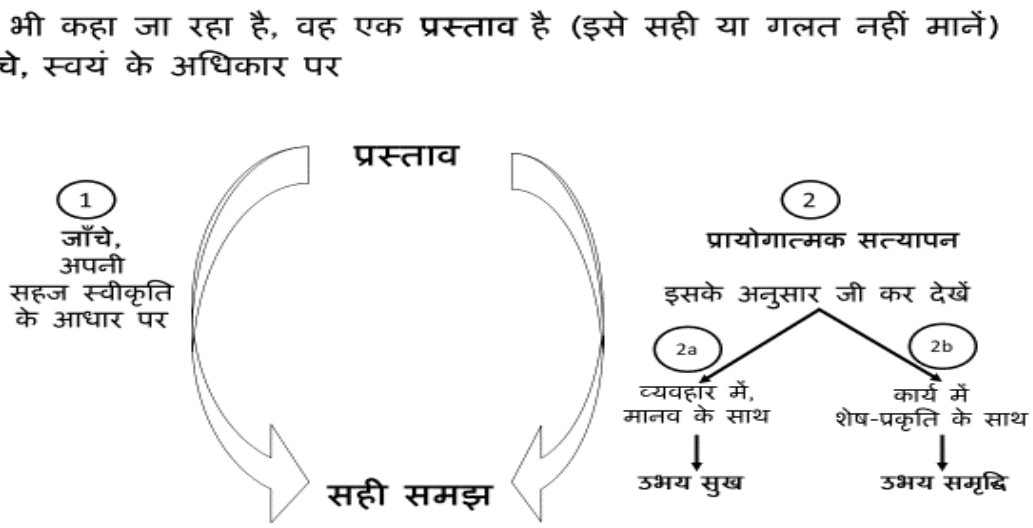

चित्र. 2-3. स्वान्वेषण की प्रक्रिया

स्व-अन्वेषण के पहले भाग में हम, प्रस्ताव को अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचते है। एक बार जब हम यह जाँच लेते है, कि प्रस्ताव हमको सहज स्वीकार्य हैं, तब हम आश्वस्त हो पाते हैं कि यह प्रस्ताव कुछ ऐसा ही है, जैसा हम जीना चाहते हैं।

स्व-अन्वेषण के दूसरे भाग में हम इसे जीने के स्तर पर सत्यापित (experiential validity) करके देखते हैं अर्थात् इस प्रस्ताव के आधार पर जी कर देखते हैं। जीने में भी दो भाग हैं- पहला मानव के साथ 'व्यवहार' और दूसरा शेष प्रकृति के साथ 'कार्य'। जब हम दूसरे मानव के साथ इस प्रस्ताव के अनुसार व्यवहार करते हैं, तो हम यह जाँचते है कि उभय सुख (mutual happiness) हो रहा है या नहीं। यदि उभय सुख हो रहा है तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार जब हम इस प्रस्ताव के आधार पर, शेष प्रकृति के साथ कार्य करते हैं, तो यह जाँचते हैं कि इससेउभय समृद्धि हो रही है या नहीं। यदि हमउभय समृद्धि की तरफ बढ़ रहे हैं तो यह प्रस्ताव सही है अन्यथा नहीं।

> *उदाहरण के तौर पर इस प्रस्ताव को जाँचते हैं- "संबंध में सम्मान का भाव (feeling of respect) सहज स्वीकार्य है"। स्व-अन्वेषण के पहले भाग में हम यह जाँचते हैं कि सम्मान का भाव हमको सहज स्वीकार्य है या नहीं। दूसरे भाग में इस प्रस्ताव के अनुसार जी कर देखते है अर्थात् जब सम्मान के भाव में जीते है तब आप और दूसरा मानव दोनों सुखी (उभय सुख) होते हैं या नहीं। यदि उभय सुख हो रहा है तो प्रस्ताव सही है अन्यथा प्रस्ताव सही नहीं है।*

मैं यह देख सकता हूँ कि जब मेरे में सम्मान का भाव होता है, तो मैं सुखी होता हूँ क्योंकि ये भाव मुझे सहज स्वीकार्य है। इसी तरह जब मैं आपके साथ व्यवहार में सम्मान का भाव व्यक्त करता हूँ, तब आप भी सुखी होते हैं चूंकि यह भाव आपको भी सहज स्वीकार्य है, अर्थात् उभय सुख होता है। इस तरह यह प्रस्ताव जाँच के दूसरे भाग में भी हम सही पाते हैं। अब जाँच के दोनों भाग को एक साथ रखकर देखते हैं तो हम यह पाते हैं कि दिया गया प्रस्ताव "संबंधों" में सम्मान का भाव सहज स्वीकार्य है" सही है।

हम इसे शेष प्रकृति के साथ जीने में भी जाँच सकते हैं। आइये जाँचे कि "शेष प्रकृति के साथ जीने में पोषण (संवर्धन) का भाव सहज स्वीकार्य है"। आप जाँच कर देख सकते हैं कि आपको पोषण का भाव सहज स्वीकार्य है या शोषण का। यह स्वयं में जाँच का पहला भाग है, अब हम स्व-अन्वेषण के दूसरे भाग के तरफ बढ़ते हैं और प्रस्ताव के अनुसार जी करके देखते है। शेष प्रकृति के साथ पोषण और संवर्धन (nurturing and enriching) के भाव से जीने में उभय समृद्धि होती है क्या? यदि हम यह देख पाते हैं कि शेष प्रकृति के संवर्धन से हमें बेहतर खाद्यान्न उत्पाद मिलते हैं, जिससे हमारी समृद्धि होती है और शेष प्रकृति भी समृद्ध होती है, तब

हम ये निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि उभय समृद्धि हो रही है। अतः यह प्रस्ताव, स्व-अन्वेषण के दोनों भागों में सही पाया गया। इसलिये यह प्रस्ताव "शेष प्रकृति के पोषण (संवर्धन) का भाव सहज स्वीकार्य है" सही है।
दूसरे भाग में हम किसी भी प्रस्ताव के लिये यह जाँच कर रहे हैं कि "क्या यह हमारे जीने में, परस्पर-पूरक (mutual fulfilment) है"?। परस्पर पूरकता का अर्थ है कि:

a. दूसरे मानव के साथ हमारे व्यवहार से उभय सुख होता है।
b. शेष प्रकृति के साथ हमारे कार्य से उभय समृद्धि होती है।

इस बिंदु पर कुछ प्रश्न हो सकते हैं- "क्या यह आवश्यक है कि किसी प्रस्ताव को जीने में भी जाँचा जाये जबकि प्रस्ताव सहज स्वीकार्य नहीं है"। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। यहाँ पर यह कहा जा रहा है कि स्व-अन्वेषण के दोनों ही भाग आवश्यक हैं। हो सकता है कि हम अपनी सहज स्वीकार्यता के बारे में बहुत आश्वस्त नहीं हों या हम अभी भी असमंजस में हों कि वास्तव में हमारे अंदर सही उत्तर है (अर्थात् क्या हम वास्तव में अपना संदर्भ ले सकते हैं) तो हम यह प्रस्तावित करते हैं कि इसे जीकर देखें। निःसंदेह, यदि आप पूरी तरह से आश्वस्त हैं कि प्रस्ताव सहज स्वीकार्य नहीं है तो दूसरी जाँच करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् जी करके देखने की आवश्यकता नहीं है।
जब हम प्रस्ताव को दोनों तरह से जाँच कर देखते हैं, स्वयं में सहज स्वीकृति के आधार पर और परस्परता में जीने के आधार पर, तो अंततः जो निष्कर्ष निकलता है, वह "सही समझ" होती है। सही समझ की और विस्तार से चर्चा हम आगे आने वाले अध्यायों में करेंगे।

सहज स्वीकृति को समझना - सही समझ का आधार
(Understanding Natural Acceptance- the Basis for Right Understanding)

(स्वीकृति तथा सहज स्वीकृति में अंतर)
जब आप इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने का प्रयत्न करते हैं कि 'आप को क्या सहज स्वीकार्य है - सुखी होना या दुःखी होना', इस प्रश्न का उत्तर आप क्षण भर में ही पा जाते हैं, ऐसा है, की नहीं? यह उत्तर आपके अंदर ही कहीं से आ रहा होता है। ऐसा भी लगता है कि उत्तर खोजने का यह तरीका बहुत सामान्य अथवा विषयात्मक (subjective) है, लेकिन हम यह देखेंगे कि हमारे लिये क्या सही है, इसको जानने का यह एक सशक्त तरीका है।
यह उत्तर कहाँ से आया है, इसका स्रोत क्या है? आइये इन संभावनाओं को तलाशने का प्रयत्न करते हैं:

1. यह आपकी पसंद-नापसंद, मान्यताओं, पूर्वाग्रहों आदि के आधार पर आता है।
2. यह आपकी सहज स्वीकृति से आता है।

आइये हम अपनी सहज स्वीकृति और स्वीकृति (पसंद या नापसंद आदि) के बीच अंतर को समझते हैं।
सहज स्वीकृति मौलिक होती है, यह हमारे लक्ष्य, हमारी मूल चाहना से संबंधित है। जब हम इनसे जुड़े हुये प्रश्न पूछते हैं तो हम अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर निश्चित उत्तर पाते हैं। उदाहरण के लिये

- सुखी होना सहज स्वीकार्य है या दुखी होना सहज स्वीकार्य है?
- आपको संबंध के भाव में जीना सहज स्वीकार्य है या विरोध के भाव में जीना सहज स्वीकार्य है?
- आपको क्या सहज स्वीकार्य है- अपने शरीर के पोषण का भाव या शरीर के शोषण का भाव?

इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिये हम अपनी सहज स्वीकृति का सन्दर्भ लेते हैं तो एक निश्चित उत्तर मिलता हैं।
दूसरी तरफ, अगर हम इन मूल चाहनाओं की पूर्ति कैसे करना है, के विवरण से जुड़े हुये सवाल पूछें या हम अपनी आशाओं के बारे में प्रश्न पूछें जो कि बाहर से पूरी होती हैं; तो आपके उत्तर निश्चित नहीं होंगे। उदाहरण के लिये

- आपको चावल खाना सहज स्वीकार्य है या गेहूँ खाना सहज स्वीकार्य है?

इस प्रश्न का उत्तर आपकी सहज स्वीकृति का संदर्भ लेकर नहीं ढूंढा जा सकता। इसे हमारी मूल चाहना के साथ जोड़ने की आवश्यकता है, जैसे 'शरीर का पोषण' जिसे हमने पहले ही अपनी सहज स्वीकृति के आधार

पर जाँच लिया है, और उसके बाद उससे जुड़े हुये विवरण को जाँचेंगे। इस उदाहरण में, यदि चावल आपके शरीर को पोषण देता है तो चावल खाना आपको स्वीकार्य है यदि यह शरीर को हानि पहुँचाता है तो चावल खाना स्वीकार्य नहीं है।

यह जाँचने के लिये कि कोई विशेष विकल्प आपकी सहज स्वीकृति के अनुसार है या नहीं, हमें सहज स्वीकृत भाव या लक्ष्य के साथ इसकी अनुरूपता को देखना होगा। तभी हम सही उत्तर पा सकते हैं। इस पृष्ठभूमि के साथ अब हम सहज स्वीकृति के मुद्दों का मूल्यांकन कर सकते हैं, तथा स्वीकृति आधारित पसंद-नापसंद, मान्यताओं, पूर्वाग्रहों, विश्व-दृष्टि (world-view), दृष्टि (perspective) आदि को भी देख सकते हैं।

उदाहरण के लिये हमें किसी विशेष प्रकार का भोजन पसंद है, जैसे कि कोई चॉकलेट। हम में इसके लिये

विशेष विकल्प→ भाव/ उद्देश्य → सहज स्वीकृति	इस विधि से हम विशेष विकल्प को अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर आंकलन कर सकते है।
विशेष विकल्प→ सहज स्वीकृति	इस विधि से विशेष विकल्प को सहज स्वीकृति के आधार पर सीधे-सीधे आंकलन नहीं किया जा सकता है, इसके लिये प्रश्न को दोबारा बनाने की जरूरत होगी, जो कि उसके भाव/ उद्देश्य से संबंधित हों।

स्वीकार्यता है, लेकिन यह सहज स्वीकार्य है भी या नहीं? इसके लिये हमें और अधिक मौलिक, और अधिक मूलभूत तथा जो भाव अथवा लक्ष्य से संबंधित हो, उसको जानना होगा। जिससे इस प्रश्न का उत्तर पाया जा सकता है। यदि हम स्वयं से पूछें कि हम, अपने शरीर का पोषण करना चाहते हैं या शोषण? तो हम यह उत्तर पाते हैं कि हम अपने शरीर का पोषण करना चाहते हैं, अब हम, अपने आप से यह पूछें कि यह विशेष प्रकार का स्वादिष्ट भोजन हमारे शरीर को पोषित करता है या शोषित? यदि हम यह पाते हैं कि यह स्वादिष्ट चॉकलेट हमारे शरीर का वास्तव में पोषण नहीं करती है, बल्कि शरीर को नुकसान पहुँचाती है, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह चॉकलेट हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है। चूंकि हम एक विशेष प्रकार की चॉकलेट का स्वाद पसंद करते हैं, इसलिये यह हमें स्वीकार्य तो है, लेकिन सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है। आप देखेंगे कि स्वीकृति तथा सहज स्वीकृति दो अलग-अलग वास्तविकतायें हैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे इसे और विस्तार से समझने की कोशिश करेंगे।

एक और उदाहरण लेते हैं, जैसे कि कभी-कभी हम अपने मित्रों से प्रभावित होकर गलत भाषा का प्रयोग आपस में एक दूसरे से बातें करते समय करने लगते हैं, और यह सोचते हैं कि हम बड़े हो रहे हैं, या यह हमारी स्वतंत्रता है या इससे हमारी मित्रता में घनिष्ठता आयेगी। हम इस प्रकार से बोलने का ढंग अंगीकार भी कर लेते हैं। कई बार हम अपने मित्रों का साथ पाने के लिये स्वयं को इसी प्रकार से ढाल भी लेते हैं। यद्यपि हमने गलत भाषा का प्रयोग करना स्वीकार कर तो लिया है, लेकिन क्या यह हमें सहज स्वीकार्य है? इसको दोबारा देखते हैं कि क्या इस प्रकार के विकल्प हमारी सहज स्वीकृति के भाव अथवा लक्ष्य के अनुरूप हैं? अपने आप से पुनः पूछिये कि संबंध का भाव आपको सहज स्वीकार्य है या विरोध का भाव। अब आप स्वयं से पूछें कि 'हमेशा इस प्रकार की गलत भाषा का प्रयोग संबंधों को व्यक्त करने के लिये होता है या कभी-कभी विरोध को भी व्यक्त करने के लिये होता है'। तो आप यह पाते हैं कि संबंधों की बेहतरी के लिये इस तरह की भाषा आवश्यक नहीं है। स्वाभाविक रूप से आप यह देख सकते हैं कि आप को यह मान्यता आसानी से स्वीकार्य है लेकिन यह आपकी सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है।

निःसंदेह, सभी तरह की स्वीकार्य बातें गलत नहीं होती हैं। लेकिन इन बातों को अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँच लेने से हमारा आत्म-विश्वास बढ़ता है।

हमने ऐसी कई चीजों के लिये स्वीकार्यता बना ली है जो हमें सहज स्वीकार्य नहीं हैं यदि अन्य विकल्प मिले होते तो हमने इन्हें स्वीकार नहीं किया होता, जैसे हमने प्रतिस्पर्धा (competition) को स्वीकार कर लिया है, लेकिन क्या हमारी सहज स्वीकृति, प्रतिस्पर्धा के लिये है या परस्पर-पूरकता के लिये? इसी प्रकार से हो सकता है कि हमने 'struggle for survival, survival of the fittest' को भी स्वीकार किया हुआ हो। अब जाँच कर देखें कि आपकी सहज स्वीकृति, परस्पर-पूरकता के लिये है या प्रतिस्पर्धा के लिये? हो सकता है आपने विरोध को स्वीकार कर लिया हो लेकिन आपकी सहज स्वीकृति तो संबंध के लिये ही है। जब हम विरोध के बारे में सोचते हैं या विरोध पूर्वक जीते हैं तो हम अपने अंदर ही सहज नहीं होते तथा दूसरे के लिये भी यह सहज नहीं होता, यद्यपि हम ऐसा जीते रहते हैं, क्योंकि हम यह मानकर बैठे हैं कि कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं, और हमने इसकी स्वीकार्यता बना ली है। यदि, हमारे पास यह विकल्प भी हो कि हम संबंध पूर्वक जी सकते हैं, और जिससे उभय सुख होता है, तो हम तुरंत ही संबंध को चुन लेते हैं। जब हम संबंध की सोचते हैं या संबंध पूर्वक जीते हैं, तो हम स्वयं में सहज महसूस करते हैं, और यह दूसरों के लिये भी सहज होता है, क्योंकि यह हमारी और उसकी सहज स्वीकृति के अनुरूप है।

अब, हम इस बारे में कैसे आश्वस्त हो सकते हैं कि जो उत्तर आ रहा है वह हमारी सहज स्वीकृति के आधार पर ही आ रहा है? इसके लिये सहज स्वीकृति की कुछ विशेषताओं को देखते हैं:

(a) **सहज स्वीकृति समय के साथ नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with Time)** जो आपको आज सहज स्वीकार्य है बिल्कुल वैसे ही पहले भी आपको सहज स्वीकार्य था और यही आपको कल भी सहज स्वीकार्य होगा। उदाहरण के लिये संबंधों में हमारी सहज स्वीकृति विश्वास के भाव की है, सम्मान के भाव की है, जो कि समय के साथ अपरिवर्तनीय है। जैसे कोई बालक विश्वास के भाव को सहज स्वीकार करता है, 20 वर्ष बाद जब वह युवा हो जाता है, तो भी इसी विश्वास के भाव को सहज स्वीकार करता है, और जब वह वृद्ध हो जाता है, तब भी उसे विश्वास का भाव ही सहज स्वीकार रहता है। अर्थात् किसी भी व्यक्ति के लिये किसी भी समय सहज स्वीकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(b) **सहज स्वीकृति स्थान के साथ नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with Place)** सहज स्वीकार्य भाव जैसे विश्वास, सम्मान, स्नेह इत्यादि, स्थान के साथ भी अपरिवर्तनीय हैं। ये भाव मुझे सहज स्वीकार्य ही रहते हैं चाहे मैं भारत में हूँ, अमेरिका में, अफ्रीका में, यूरोप में, या अन्य किसी स्थान पर। इसी प्रकार से शरीर को स्वस्थ रखने का भाव भी स्थान के साथ नहीं बदलता है, इसका प्रभाव नहीं पड़ता कि हम कहाँ पर हैं। अर्थात् यह सहज स्वीकृति सभी स्थानों पर एक जैसी ही रहती है।

(c) **सहज स्वीकृति व्यक्ति के आधार पर नहीं बदलती (Natural Acceptance Does not Change with the Individual)** सहज स्वीकृति हम सबके लिये एक जैसी होती है; यह प्रत्येक मनुष्य में स्वाभाविक रूप से है ही। यह हमारी मानवीयता का हिस्सा है। इसकी जाँच करने के लिये हम सहज स्वीकार्य भाव को दोबारा देखते हैं और यह जानने का प्रयास करते हैं कि कोई भाव यदि भारतीय को सहज स्वीकार्य है तो क्या ये अमरीकन को या अन्य किसी मनुष्य को भी वैसा ही सहज स्वीकार्य होगा? हमारी मान्यता, पसंद-नापसंद, विभिन्न मुद्दों पर हमारे विचार, अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन यदि कोई भाव एक व्यक्ति को सहज स्वीकार्य है तो वह सभी व्यक्तियों को भी सहज स्वीकार

होगा। अतः इस दृष्टि से, सहज स्वीकृति सार्वभौमिक है। इस प्रकार से जब हम अपनी सहज स्वीकृति को समझते हैं तो दूसरों की सहज स्वीकृति भी समझ पाते हैं।

(d) **सहज स्वीकृति पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों के आधार पर नहीं बदलती (Natural Acceptance is Uncorrupted by Likes and Dislikes or assumptions or Believe)** हमने ऊपर भी इसका उदाहरण लिया है, जब हम प्रश्न सही पूछते हैं तो अपनी सहज स्वीकृति को देख पाते हैं तब यह स्पष्ट होता है कि सहज स्वीकृति हमारी पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होती, चाहे ये सब हमारे विचारों में रात-दिन, बहुत गहराई तक प्रभाव डालते रहते हों। उदाहरण के लिये यदि हमने अपने मन में वर्षों से यह मान्यता बना रखी है कि 'किसी पर भी विश्वास नहीं करना है' और हम यह प्रश्न पूछें कि आपको क्या सहज स्वीकार्य है विश्वास या अविश्वास, तो उत्तर विश्वास के पक्ष में ही आता है।

(e) **सहज स्वीकृति स्वाभाविक है; कृत्रिम तौर पर इसे उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है (Natural Acceptance is Innate; We don't Need to Create it):** मनुष्य की पृष्ठभूमि चाहें जैसी भी हो, सहज स्वीकृति उसमें स्वाभाविक रूप से होती ही है। उदाहरण के लिये यदि हम किसी क्षण, किसी व्यक्ति का अपमान करने के बारे में सोचते हैं तो हम अपने अंदर कैसा महसूस करते हैं? सहज या असहज? इसी प्रकार से जब हम किसी का विरोध करने के बारे में सोचते हैं तो हमको स्वयं में कैसा लगता है? क्या हम सहज होते हैं? या बहुत असहज होते हैं? निःसंदेह हम असहज होते हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? क्योंकि सहज स्वीकृति स्वभावतः एक आंतरिक शक्ति के रूप में हमारे भीतर रहती ही है, और यह हमको संकेत देती रहती है कि जो हमारा भाव है, या जो हम सोच रहे हैं, या कर रहे हैं, वह हमारी सहज स्वीकृति के साथ संगीत/ व्यवस्था में है या नहीं। हम इसका संदर्भ किसी भी समय ले सकते हैं, यह हमेशा हममें उपलब्ध रहती ही है।

(f) **सहज स्वीकृति निश्चित है (Natural Acceptance is Definite)** सहज स्वीकृति संबंध, व्यवस्था, और सह-अस्तित्व के लिये है, जो कि सार्वभौमिक है। यह पूछकर कि हमें क्या सहज स्वीकार्य है - संबंध या विरोध, व्यवस्था या अव्यवस्था, सह-अस्तित्व या संघर्ष इसे हम सीधे जाँच सकते हैं। आने वाले अध्यायों में हम इन तीनों के बारे में प्रश्न पूछते रहेंगे और देखेंगे कि संबंध, व्यवस्था एवं सह-अस्तित्व ही अंततोगत्वा सुख या संगीत/ व्यवस्था से जीने के लिये मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

सहज स्वीकृति हममें से प्रत्येक में स्वाभाविक रूप से होती है; यह अपरिवर्तनीय एवं सार्वभौम है। अर्थात् यह समय, स्थान या व्यक्ति के साथ परिवर्तित नहीं होती है। शुरुआत में यह बहुत साधारण लग सकता है, परंतु आगे हम देखेंगे कि यह हमारे लिये बहुत ही प्रभावी तरीका है, स्वयं के अधिकार पर यह जानने का कि क्या सही है। हमें सिर्फ इसका संदर्भ लेकर अपने जीने में प्रमाणित करके देखना प्रारम्भ करना है। पहले से ही हमने बहुत सी मजबूत मान्यतायें बना रखी हैं, जो हमें अपनी सहज स्वीकृति को देखने में भ्रमित करती रहती हैं। जी कर देखते समय इस प्रस्ताव को जाँचने का दूसरा अवसर मिलता है। अतः स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के दोनों भाग आवश्यक हैं।

इस बात को भी सत्य न मानें। आइये स्वयं के लिये इसको जाँच करके देखें।

वर्तमान स्थिति का अवलोकन
(Appraisal of the Current Status)

परिवार के सदस्यों, मित्रों, स्कूल/विद्यालय के अध्यापकों और समाज, सोशल मीडिया, समाचार पत्रों आदि के द्वारा आज हमारे पास बहुत सारी सूचनायें उपलब्ध हैं। हमें बार-बार यह बताया जाता है कि हमें क्या करना चाहिये, क्या सोचना चाहिये, क्या हमारे लिये मूल्यवान है और क्या नहीं। हम अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों का

आंकलन नहीं करते हैं, क्योंकि हम उन्हें अपनी व्यक्तिगत राय मानते हैं, इसको हम अपने जीने के तरीके के रूप में मानते हैं और अपना व्यक्तिगत अधिकार समझते हैं। इस आधार पर जीने को ही स्वतंत्रता मानते हैं और हमको यह बहुत अच्छा भी लगता है। जब मतभेद होता है तो हम इसके लिये बहुत से तर्क देकर अपनी मान्यता को सही ठहराने का प्रयास करते हैं। क्योंकि हमारे पास जाँच करने का कोई साधन आसानी से उपलब्ध नहीं रहता, हम ऐसे ही जीते रहते हैं, जिससे कभी सुखी होते हैं तो कभी दुखी होते हैं। यदि हम वास्तव में अपने आप को देखें तो पाते हैं कि हम कोई ऐसा तरीका खोजना चाहते हैं जिससे आने वाली सभी सूचनाओं (inputs) में सही-गलत की पहचान (discriminate) कर सकें, साथ ही साथ हमने जो पहले से सही मान रखा है, उसकी भी जाँच कर सकें, किसी निश्चित आधार पर।

अब यदि हम किसी बच्चे को देखें, तो वह सही को समझना चाहता है, सही सीखना चाहता है, और सही करना चाहता है। आरम्भ में जैसा देखता है, वैसा करता है, उसी का अभ्यास करता है और वैसा ही सीखता है। उदाहरण के तौर पर, बच्चा भाषा इसी प्रकार से ही सीखता है। जब बच्चा बड़ा होता है, तो वह अपनी मान्यताओं के प्रति आश्वस्त होना चाहता है, और ये आश्वस्ति भी चाहता है कि वास्तव में ऐसा जी कर वह सुखी और समृद्ध हो पायेगा।

यह भी सच है कि हम उन लोगों से समझ सकते हैं, जिन्होंने जीवन को समझ लिया है और सुखी जीवन जी रहे हैं। माता-पिता, मित्र, अध्यापक, समाज के रोल मॉडल आवश्यक हैं, क्योंकि इनसे सीखने की प्रक्रिया में मदद मिलती है। उनके निष्कर्ष हमारे लिये प्रस्तावों के रूप में उपयोगी होते हैं। लेकिन, कुछ आत्मसात करने के लिये अर्थात् अपनी समझ का हिस्सा बनाने के लिये स्वयं में जाँच आवश्यक है। इसी के बाद जो वास्तविकता जैसी है उसे वैसा ही समझ पाते हैं या देख पाते हैं, और हम स्वयं में आश्वस्त एवं विश्वास से युक्त हो पाते हैं।

इसका और अधिक स्पष्टता से आगे आने वाले अध्याय 'शिक्षा–व्यवस्था' में अध्ययन करेंगे। आइये अब देखते हैं कि क्या होता है, जब हम इसको स्वयं में जाँच कर चलते हैं और क्या होता है, जब हम इसको स्वयं में बिना जाँचे सिर्फ मान कर चलते हैं।

स्वयं में जाँच अर्थात् स्व-अन्वेषण के माध्यम से हम वास्तविकताओं को और भी अधिक स्पष्टता से देख सकते हैं और यदि बार-बार इसका परीक्षण और अभ्यास (observation and practice) किया जाये तो यह हमारे समझ का भाग बन जाता है। एक बार यदि हमने कुछ समझ लिया तो हम आश्वस्त हो जाते हैं, स्वयं में आश्वस्ति और विश्वास होता है कि ऐसा जीने से परस्पर सुख और समृद्धि होगी ही। जीने में, जब हम इस समझ को सत्यापित (validate) कर पाते हैं तो यह समझ और पुष्ट होती है। इस प्रकार की स्थिति को "स्वयं में व्यवस्था" (self-organised) कहते हैं। हम ऐसा निर्णय ले पाते हैं जो परस्पर-पूरकता के अर्थ में हो अर्थात् उभय सुख और उभय समृद्धि के अर्थ में। हम बाहर से आ रही सूचनाओं को, बिना दूसरों के प्रभाव या दबाव के अपनी स्वीकृति के आधार पर ग्रहण कर पाते हैं। जब हम स्वयं में ही वास्तविकताओं को स्पष्टता से देखने के योग्य हो पाते हैं तब दूसरों को भी स्वयं में संगीत और परस्पर-पूरकता पूर्वक जीने की संभावनाओं को देखने में सहयोग कर पाते हैं।

दूसरी तरफ यदि हम वास्तविकताओं को स्वयं में स्पष्टता से देखने में असमर्थ होते हैं और स्वयं में मान्यताओं की जाँच नहीं कर पाते, तो स्वयं में आश्वस्ति और विश्वास का भाव नहीं रहता है। जब परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं, तो हम प्रतिक्रिया करते हैं, और मनमाने उपाय अपनाने लगते हैं। इस प्रक्रिया में हम बाहरी प्रभाव और दबाव के प्रति, अति संवेदनशील (susceptible) हो जाते हैं, क्योंकि जाँचे बिना हमारी स्वयं की मान्यतायें ही स्थिर नहीं रहती हैं। सामान्यतः इस स्थिति में हम दूसरों के सुझाव, जैसे क्या करें, क्या ना करें के आधार पर जीने लगते हैं और ज्यादातर हमारा जीवन दूसरे मानव या वर्तमान परिस्थितियों के द्वारा ही निर्देशित होने लगता है। यही गुलामी की स्थिति है, जो अपनी ही गलत मान्यताओं के कारण उत्पन्न हुई है!

इसी प्रकार के कई उदाहरण ले सकते हैं जैसे कि:

- हम मानते हैं कि 'बड़ों का सम्मान' करना आवश्यक है। परंतु जब इसको दैनिक क्रियाकलाप में जीने जाते हैं, तो क्या हम इसे हमेशा(100% समय) सुनिश्चित कर पाते हैं?

- हम यह सोचते हैं कि 'अच्छा भोजन' खाना चाहिये, जो कि पोषक तत्वों से भरपूर हो, लेकिन क्या यह हमारे जीने में हमेशा(100% समय) आ पाता है? या हम वह भोजन भी खा लेते हैं जो स्वादिष्ट तो होता है परंतु स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं, या हम जंक फूड इसलिये खा लेते हैं क्योंकि हमारे मित्र उसके बारे में बार-बार बात करते रहते हैं।
- कपड़ों का चयन; क्या हम अपने कपड़ों का चयन हमारी सहज स्वीकृति के अनुसार कर पाते हैं जो हमारे शरीर की सुरक्षा के लिये है या चयन विज्ञापनों (advertisement) से प्रभावित होता है या हमको ऐसा चयन इसलिये करना पड़ता है कि हम अपने मित्रों के समूह में अलग-थलग न पड़ जायें?

ज्यादातर, हम बार-बार वही करते हैं जिसे हम पहले से ही मानते आये हैं। ऐसा हमें सुविधाजनक भी लगता है। हम पहले से प्रचलित मान्यताओं के साथ चलते हैं, ताकि अलग-थलग न पड़ जायें। अधिकांशतः हमारा अभ्यास रहता है कि हम बिना स्वयं में जांचे किसी अधिकारी (authority) की बात मान लेते हैं, स्वयं पर शंका करते है। जबकि कहीं न कहीं हमारे अंदर जानने की चाहना रहती ही है; जैसी वास्तविकता है हम उसको वैसा ही जानना चाहते हैं, और उसके अनुसार जीना भी चाहते हैं।

हम स्वयं में अपनी सहज स्वीकृति देखना चाहते हैं ताकि हम यह जान सकें कि वास्तव में 'हम क्या होना चाहते हैं', और उसी के अनुसार जीते हुये जीवन में उभय सुख और उभय समृद्धि की ओर बढ़ सकें। यह पुस्तक, प्रस्तावों का एक समूह है, जो वास्तविकताओं को देखने में सहायक है। जब हम इन प्रस्तावों को जाँचते हैं, तो इनके अर्थ स्पष्ट हो पाते हैं फिर वह हमारे विचार बन जाते हैं, और फिर संभवतः हमारी समझ।

आइये देखें कि विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में जहाँ हम युवाओं के साथ कार्य कर रहे हैं, आजकल वहाँ पर किस प्रकार से जानकारियां दी जा रही हैं:

1. **स्व-अन्वेषण (self-exploration):** सूचनायें, प्रस्तावों के रूप में हो, जहाँ इनको स्वयं में जाँचने का, प्रश्न पूछने का, चर्चा करने का अवसर हो, और स्वयं अपना निष्कर्ष निकलने की स्वतंत्रता हो या
2. **मान्यताओं को स्वीकारना (Accepting assumptions):** सूचनायें, 'क्या करना है', 'क्या नहीं करना है' के रूप में हों, जैसा वक्तव्य दे दिया गया है, वैसा ही हमको करना हो।

बतायें कि आपको ऊपर दी हुई विधियों में से कौन सी विधि सहज स्वीकार्य है। इस पुस्तक में हम पहली विधि 'स्व-अन्वेषण' से चलेंगे। इस प्रकार से जो कुछ भी इस पुस्तक में दिया जा रहा है, उसे प्रस्ताव के रूप में लें। इसे सही या गलत न मानें, बल्कि इसे अपने अधिकार पर अवश्य जाँचें।

आगे का मार्ग

(The Way Ahead)

किसी भी बालक में समझ की प्रारंभिक प्रक्रिया अनुकरण (imitation) से आरम्भ होती है। वह भाषा सीखता है, बोलना तथा दूसरी चीजें भी सीखता है। इसके साथ ही जो भी कहा जाता है, उसका पालन करता है, तथा दी गयी आज्ञा के अनुसार कार्य करता है और इस रूप में 'वह आज्ञाकारी एवं अनुशासित होता है'। परंतु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है चीजों को अपने अधिकार पर जाँच कर निर्णय लेना चाहता है, यही समय होता है, जब उसे सही प्रस्ताव और उसको जाँचने की सही प्रक्रिया दोनों की आवश्यकता होती है। साथ ही उसे स्वयं में जाँच अर्थात् स्व-अन्वेषण करने के लिये प्रोत्साहन की भी आवश्यकता होती है। जिससे कि वह मानव के होने (जैसा कि अध्याय एक में चर्चा की गई थी) के बारे में समग्र दृष्टि विकसित कर सके। इसमें मानव के जीने के सभी स्तरों में व्यवस्था की समझ सम्मिलित है- मानव से लेकर परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व तक, और उसके बाद इन सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने की योग्यता, तृप्ति पूर्वक जीना अर्थात् एक ऐसा जीना जिसमें सुख और समृद्धि की निरंतरता हो। आगे भविष्य की शिक्षा और संस्कार में इसी मुख्य बिंदु पर जोर देना अपेक्षित है।

स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय
(Important Implications of Self-exploration)

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया सीखना काफी शिक्षाप्रद होगा, इसके निम्नलिखित प्रमुख निहितार्थ सामने आते है जिससे तृप्ति-पूर्वक जीने में अनुकूलता होती है।

1. यह प्रक्रिया स्वयं को जानने और उसके द्वारा, समग्र अस्तित्व को जानने की है।
2. यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने की है।
3. यह प्रक्रिया मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुसार जीने की है।
4. यह प्रक्रिया स्वयं में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने की है।
5. यह प्रक्रिया अपने स्वत्व को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है।
6. यह प्रक्रिया 'स्व-अन्वेषण' के द्वारा स्वयं में विकास (एक मानव के रूप में विकसित होना) की है।

आइये प्रत्येक बिंदु को विस्तार से समझते है।

1. **यह प्रक्रिया स्वयं को जानने और उसके द्वारा, समग्र अस्तित्व को जानने की है (It is a Process of Knowing Oneself and through that, Knowing the Entire Existence) ।**
   जब आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, तो स्वयं के बारे में जान पाते हैं; अपनी सहज स्वीकृति को देख पाते हैं; यह भी देख पाते हैं कि 'हम क्या हैं' अर्थात् हम अपनी इच्छा, विचार एवं आशा को देख पाते हैं; यह भी देख पाते हैं कि हमारे अन्दर संगीत/ व्यवस्था है या अन्तर्विरोध है। यह प्रक्रिया स्वयं को जानने की है।
   'मैं' ही जानने वाला है। जब हम, स्वयं को जान लेते हैं, तो स्वयं के द्वारा, दूसरों को भी जान पाते हैं, अर्थात् दूसरे मानव को, शेष प्रकृति को और अंततः समग्र अस्तित्व को।
   सर्वप्रथम स्वयं को जानना महत्वपूर्ण है। क्योंकि जब हम स्वयं के बारे में आश्वस्त होते हैं, तभी हम दूसरी वास्तविकताओं को ठीक-ठीक समझ सकते हैं, अर्थात् निश्चित हो सकते हैं कि हम दुनिया को अपनी मान्यताओं के आधार पर नहीं देख रहे हैं।
   दूसरी तरफ, जब हम स्वयं को बिना समझे अपने आस-पास की वास्तविकताओं को समझने का प्रयास करते हैं, तो जो भी मान्यतायें या अन्तर्विरोध हमारे अंदर चल रहे होते हैं, ये सब भी हमारे दुनिया को देखने के नजरिये में शामिल हो जाते हैं। इनके सहित जब हम अपने आस-पास की वास्तविकताओं के साथ जीते हैं तो मिश्रित परिणाम आते हैं- कभी सुख के रूप में और कभी दुःख के रूप में।
2. **यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने की है (It is a Process Recognising One Relationship With Every Unit in Existence and Fulfilling That Relationship) ।**
   स्व-अन्वेषण के द्वारा जब मैं 'स्वयं' को जान लेता हूँ, दूसरों को जान लेता हूँ और प्रकृति एवं समग्र अस्तित्व को भी जान लेता हूँ, तब मैं अस्तित्व की अन्य सभी इकाइयों के साथ संबंध को पहचान पाता हूँ और मैं यह भी देख पाता हूँ कि इस संबंध का निर्वाह कैसे होगा। अर्थात् स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने की है, और उसका निर्वाह करने की है।
3. **यह प्रक्रिया मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुसार जीने की है (It is a Process of knowing human conduct and Living Accordingly) ।**
   निश्चित मानवीय आचरण का तात्पर्य प्रकृति/ अस्तित्व की अन्य इकाइयों के साथ निश्चित संबंध का निर्वाह करना है। जब हम निश्चित मानवीय आचरण को जान पाते हैं, तो हम इसे अपने जीने में व्यक्त करते हैं। यह मानवीय आचरण, परस्पर-पूरक होता है।
   अतः पहला, हम 'स्वयं' को जानते हैं और 'स्वयं' के माध्यम से प्रकृति/अस्तित्व की अन्य इकाइयों को भी जान पाते हैं। दूसरा, हम प्रकृति/अस्तित्व की अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानते हैं। तीसरा, हम यह भी जान पाते हैं कि मानव होने के नाते हमें क्या आचरण करने की आवश्यकता है, और फिर

हम उसी के अनुसार जीते हैं। इस तरह हम निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता विकसित कर सकते हैं। शिक्षा की प्रमुख भूमिका निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता विकसित करने में सहयोग करना ही है।

4. **यह प्रक्रिया 'स्वयं' में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने की है (It is a Process of Being in the Harmony- Within and with the Entire Existence)।**
   जब हम यह जान लेते हैं कि निश्चित मानवीय आचरण क्या है, तो हम उसी के अनुसार जीते है, स्वयं में तथा दूसरों के साथ। अंततोगत्वा, हम समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था पूर्वक जीने के योग्य हो पाते हैं, यह आवश्यक भी है, और सभी को सहज स्वीकार्य भी।
5. **यह प्रक्रिया अपने स्वत्व को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है (It as a Process of Identifying your Innateness and Moving Towards Self-organisation and Self-expression)।**
   अब हम स्व-अन्वेषण के द्वारा इसे देख सकते हैं- पहले हम यह देखते हैं कि हमारी सहज स्वीकृति क्या है, हम वास्तव में क्या होना चाहते हैं, हमारा सत् क्या है, हमारा स्वत्व क्या है? जब हम यह जान लेते हैं कि हमें क्या सहज स्वीकार्य है, और उसके अनुसार जीते हैं, तो हम स्वयं में व्यवस्थित हो पाते हैं। जब हम स्वयं में व्यवस्थित हो पाते हैं, तो हमारा व्यवहार और कार्य दूसरे व्यक्तियों को भी सहज स्वीकार होता है, तो हम दूसरों के साथ भी व्यवस्था पूर्वक जी पाते हैं। और जब हम इसका विस्तार प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ करते हैं तो हम समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने के योग्य हो पाते हैं।

6. **यह प्रक्रिया 'स्व-अन्वेषण' के द्वारा 'स्वयं' में विकास (एक मानव के रूप में विकसित होना) की है (It is a process of self-evolution (evolving as a human being) through self-exploration)।**
   जब हम स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, तो हम यह जान पाते हैं कि हमें क्या सहज स्वीकार्य है और हम यह भी जान पाते हैं कि हम क्या हैं? स्वयं में होने वाला यह संवाद, 'स्वयं' के विकास में सहायक है। वास्तव में हम इस प्रक्रिया से "जैसा हम हैं" को "जैसा होना हमें सहज स्वीकार्य है" के अनुरूप करना चाहते हैं। अर्थात् हम अपनी इच्छा, विचार और आशा को अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार करना चाहते हैं। ऐसा करके, उत्तरोत्तर हम अपने अंदर और अधिक व्यवस्थित हो पाते हैं, जिससे स्वयं में सुख की स्थिति में वृद्धि होती है। इस प्रकार से यह प्रक्रिया हमें विकास की तरफ अग्रसर करती है।

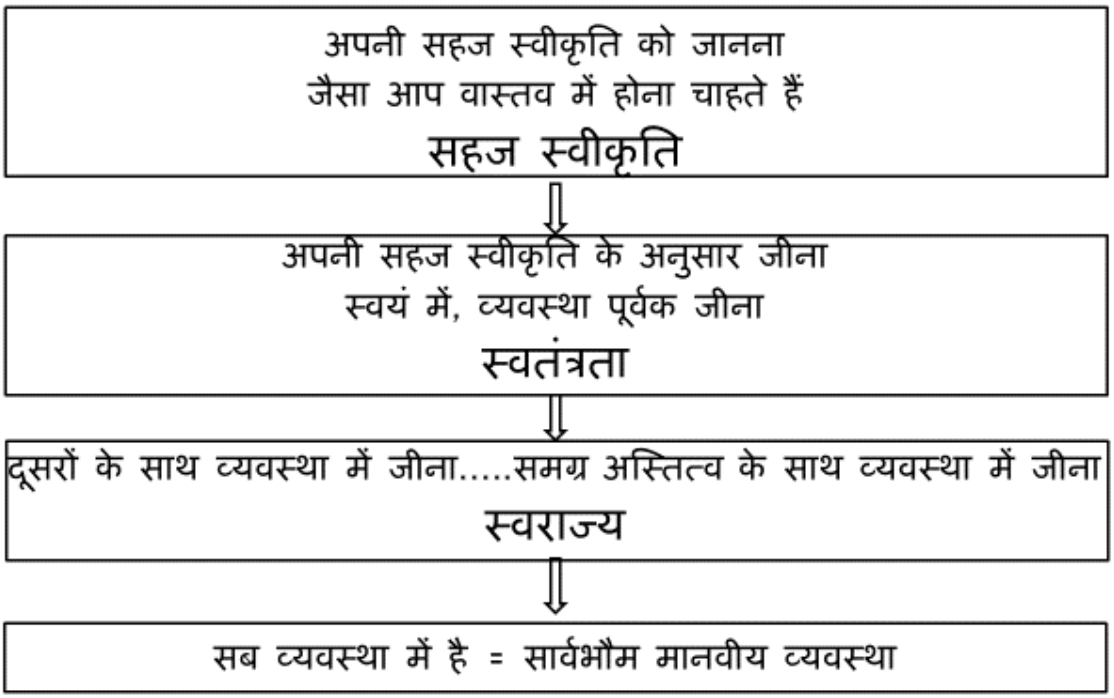

चित्र. 2-4. स्व–विकास और स्वराज्य

इस पुस्तक का उद्देश्य, पाठक में 'स्व-अन्वेषण' की प्रक्रिया को प्रारंभ करना या इसे बढ़ाना है। आप स्वयं जाँच सकते हैं कि यह आपके लिये आवश्यक है या नहीं।

इसे हम आपके समक्ष इसलिये रख रहे हैं कि आपके सामने यह समग्र रूप से स्पष्ट हो जाये कि हमारा लक्ष्य कहाँ पहुँचने का है। यह अध्ययन हमारे में समग्रता की दृष्टि को विकसित करने में सहायता करेगा जैसा कि अध्याय-1 में बताया गया है। जैसे-जैसे हम आगे के अध्याय पढ़ेंगे, इन बिंदुओं को और अधिक विस्तार से स्पष्ट किया जायेगा।

निष्कर्ष के रूप में, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से, परिणाम के रूप में सही-समझ मिलती है जैसा कि चित्र. 2-5. में बताया गया है। सही-समझ की पहचान के लिये निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देते हैं:

a. **इससे आश्वस्ति होती है (It is Assuring)**: इससे हम आश्वस्ति महसूस करते हैं और हमें इसके बारे में कोई शंका नहीं रहती क्योंकि यह हमारी सहज स्वीकृति पर आधारित है, जो हमारे लिये स्वाभाविक है, जिसे हमसे अलग नहीं किया जा सकता। हमें इसके बारे में सिर्फ सजग होना है। एक बार जब हम इसके बारे में सजग हो जाते हैं या इसे जान लेते हैं तो यह हममें प्रत्यक्ष बना रहता है। आने वाली कोई भी अन्य सूचनायें या मान्यतायें, सहज स्वीकृति पर आधारित इस समझ को न ही प्रभावित कर पाती हैं और न ही बदल पाती हैं।
b. **इससे तृप्ति होती है (It is Satisfying)**: हम सभी को सिर्फ जानने की, समझने की आवश्यकता है। जब भी हम कुछ समझते हैं, तो यह हमारे लिये तृप्ति दायक तो होता ही है, साथ ही साथ पूरक भी होता है।
c. **इसमें सार्वभौमिकता है (It is Universal):** निम्नलिखित सन्दर्भों से, हम यह देख सकते हैं कि सही-समझ निश्चित और अपरिवर्तनीय है:

    i. **समय**: यह हर समय एक जैसी रहती है- भूत, भविष्य एवं वर्तमान।
    ii. **स्थान**: यह सभी स्थानों अथवा जगहों पर एक जैसी रहती है।
    iii. **वैयक्तिक**: यह सभी व्यक्तियों के लिये एक समान रहती है।

आइये एक उदाहरण लेते हैं, प्रस्ताव "मानव-मानव संबंध में सम्मान का भाव सहज स्वीकार्य है या नहीं" की जाँच करते हैं। हम यह जाँच सकते हैं, कि सम्मान का भाव हमें सहज स्वीकार्य होता है, और जब हम इस भाव से दूसरे मानव के साथ जीते हैं, तो यह उसको भी सहज स्वीकार्य होता है। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि सम्मान के भाव से जीने में उभय सुख होता है। जब हम इसे स्व-अन्वेषण की प्रकिया से समझते हैं, तो हम पाते हैं कि इससे बहुत आश्वस्ति होती है। आश्वस्ति इस अर्थ में कि अब कोई शंका नहीं रहती कि हमें सम्मान का भाव सहज स्वीकार्य है या अपमान का। यह हमारे लिये निश्चित रहता है कि सम्मान का भाव ही हमें सहज स्वीकार्य है, भले ही हमारी मान्यताओं के कारण समय-समय पर हमारे अंदर अपमान का भाव चलता रहता हो। यह हमारे लिये तृप्ति-दायक है, क्योंकि इससे हमारे जानने की मूल आवश्यकता की पूर्ति होती है। इसके अलावा हम यह भी देख सकते हैं, कि यह सार्वभौमिक है, अर्थात् यह हर समय आज हो या कल, सभी स्थानों, और प्रत्येक मनुष्य के लिये सत्य है। आप इसको जाँचना जारी रखें।

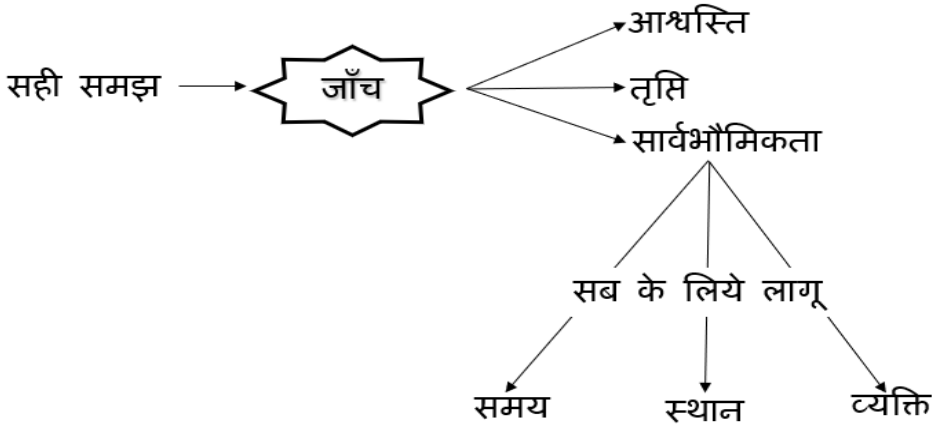

चित्र. 2-5. सही समझ की विशेषतायें

यदि स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से गुजरने के बाद आने वाला परिणाम, उपरोक्त तीनों मापदंडों को पूरा नहीं करता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह सही समझ नहीं है। यह कोई मान्यता हो सकती है, या हमने अपनी सहज स्वीकृति को देखने में कोई गलती की है, अतः हमें स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया जारी रखने की जरूरत है।

अंततोगत्वा, स्व-अन्वेषण के द्वारा समग्र अस्तित्व के बारे में सही-समझ हो पाती है, अर्थात् "सह-अस्तित्व में अनुभव (realisation)", "व्यवस्था की समझ" और "संबंधों" में भागीदारी का चिंतन (contemplation)"। एक बार जब हममें सही-समझ हो पाती है, और हमारी कल्पनाशीलता पूर्णतः इससे निर्देशित होने लगती है, तो हम निरंतर सुख की स्थिति में पहुँच पाते हैं। यही सही-समझ प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ हमारे व्यवहार, कार्य और भागीदारी में व्यवस्थापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त होती है। अंततः यह, अखंड समाज (undivided society) और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) के लिये आधार बनता है। इससे भी आगे जब यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचता है और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर आगे बढ़ता रहता है, तो इसके द्वारा प्रत्येक मानव के लिये निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की मानवीय परम्परा (human tradition) का उद्भव होता है, मूल्य शिक्षा का यही अपेक्षित परिणाम है।

यह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम समझने का प्रयास कर रहे हैं, बहुत महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक के द्वारा वास्तव में, हम आपके अंदर स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को शुरू करने में सहयोग करना चाहते हैं, जो आपके और हमारे बीच में एक संवाद के रूप में आरंभ हो रहा है।

प्रमुख बिंदु

(Salient Points)

- स्व-अन्वेषण, मानवीय मूल्यों को समझने की प्रक्रिया है, इसमें हम अपने अन्दर सहज स्वीकृति के आधार पर जाँच करते हैं; साथ ही इसको जी करके प्रमाणित करते हैं, अर्थात् बाहर का भी अध्ययन करते हैं।
- सहज स्वीकृति प्रत्येक मानव के अंदर की स्वाभाविक क्षमता है, जिससे हम अपने मूल-लक्ष्य को देख पाते हैं, अर्थात् क्या सहज है यह देख पाते हैं, क्या सही है यह देख पाते हैं एवं उससे निष्कर्ष निकाल पाते हैं कि क्या सही नहीं (गलत) है। यह पसंद-नापसंद या मान्यता के जैसा नहीं है, बल्कि यह एक निश्चित वास्तविकता है, जो समय, स्थान और व्यक्ति के साथ परिवर्तित नहीं होती है। यह स्वाभाविक, अपरिवर्तनीय और सार्वभौम है। हममें से प्रत्येक में संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के लिये सहज स्वीकृति है ही।
- स्व-अन्वेषण, स्वयं में संवाद की एक प्रक्रिया है- "जैसा मैं हूँ" (मेरी इच्छा, विचार और आशा) और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है" (मेरी सहज स्वीकृति) के बीच। जब हम भाव और उद्देश्य से जुड़े प्रश्नों के बारे में अपनी सहज स्वीकृति का संदर्भ लेते हैं, तो हमें स्वयं में ही सही उत्तर मिलता है।
- जब, "जैसा मैं हूँ" (मेरी इच्छा, विचार और आशा) और मेरी सहज स्वीकृति में संगीत (Harmony) होता है, तो मैं सुख की स्थिति में होता हूँ। जब इन दोनों के बीच में अंतर्विरोध होता है, तो मैं अव्यवस्था और दुःख की स्थिति में होता हूँ।
- स्व-अन्वेषण की विषय-वस्तु है:
    a. मानव की मूल चाहना या इच्छा जो सुख और समृद्धि की निरंतरता के लिये है और
    b. मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम।
- स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का अर्थ स्वयं में जाँच है। जब भी यह कहा जाता है कि यह प्रस्ताव है तब आप इसे सच या झूठ अथवा सही या गलत न मानें। सर्वप्रथम इसे अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचे, तत्पश्चात इसे जी कर देखें – यदि दूसरे मानव के साथ व्यवहार में उभय सुख के रूप में परिलक्षित होता है, तथा शेष प्रकृति के साथ कार्य में उभय समृद्धि की तरफ बढ़ता है, तब हम यह कह सकते हैं, कि यह प्रस्ताव हमारे लिये सही है अन्यथा सही नहीं है।
- स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के द्वारा किसी भी मानव में विकास होता है- स्वयं को जान कर, समग्र प्रकृति/अस्तित्व को जान कर, और प्रकृति की प्रत्येक इकाई के बीच के अंतर संबंधों को जानकर। स्व-अन्वेषण के द्वारा कोई भी व्यक्ति मानवीय आचरण के बारे में जानने के योग्य हो पाता है और स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था पूर्वक जी पाता है।
- स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का परिणाम सही-समझ के विकास के रूप में आता है। वास्तव में सही-समझ, स्वयं से लेकर समग्र अस्तित्व की व्यवस्था की स्पष्टता है अर्थात् सह-अस्तित्व में अनुभव, व्यवस्था की समझ, संबंधों का चिंतन; और इसके आधार पर मानवीय आचरण की स्पष्टता। सही-समझ से निश्चितता, आश्वस्ति, एवं तृप्ति होती है और यह सार्वभौमिक भी है।
- सही-समझ के आधार पर जीना (सही-समझ को अपना आंतरिक मार्ग-दर्शक (internal guide) स्वीकार करके जीना) से तात्पर्य है कि कोई जब स्वयं में व्यवस्था की स्थिति में होता है, अर्थात् स्व-व्यवस्थित होता है, तो वह बाहरी दुनिया के साथ भी व्यवस्था की स्थिति में रह पाता है, यानी दूसरे मानव के साथ व्यवहार में उभय सुख होता है, तथा शेष प्रकृति के साथ उसका कार्य भी उभय समृद्धि की तरफ बढ़ता है, यही स्वराज्य का अर्थ है, स्वयं की व्यवस्था का फैलाव स्वयं से लेकर बाहरी दुनिया तक। स्वयं में व्यवस्थित होकर बाहर की शेष-दुनिया के साथ व्यवस्था में रहना ही निरंतर सुख है, जो कि मानव की मूल चाहना है। इसके लिये स्व-अन्वेषण, एक आवश्यक प्रारंभिक बिंदु है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया को "स्व-अन्वेषण" के रूप में प्रस्तुत किया जा चुका है। मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया के रूप में अन्य और क्या संभावनायें हो सकती हैं?
2. स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को समझाइये। स्व-अन्वेषण से परिणाम के रूप में आप क्या अपेक्षा करते हैं? कृपया स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, विषय-वस्तु और अपेक्षित परिणाम को साफ चित्र द्वारा समझायें और अपने जीवन से संबंधित दो उदाहरणों के द्वारा भी स्पष्ट करें।

3. निम्नलिखित वास्तविकतायें वास्तव में क्या हैं?
    a. "जैसा मैं हूँ"।
    b. "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है"।
    c. "जैसा मैं हूँ" और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है" के बीच में होने वाला संवाद।

    उपरोक्त को किन्हीं तीन उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट कीजिये।
4. "सहज स्वीकृति" शब्द की व्याख्या कीजिये। आप कैसे पता करेंगे कि यह आपकी सहज स्वीकृति है या नहीं? सहज स्वीकृति की विशेषताओं की व्याख्या करें। अपने जीवन में घटित कुछ घटनाओं का उदाहरण लेते हुये इनको स्पष्ट कीजिये।
5. सहज स्वीकृति तथा स्वीकृति के बीच के अंतर को कुछ उदाहरणों के साथ स्पष्ट कीजिये।
6. एक प्रस्ताव दिया गया है, यदि कोई इसका स्व-अन्वेषण नहीं करता है, तो अन्य क्या संभावनायें हो सकती हैं? इसे समझाने के लिये; दो उदाहरण भी दीजिये।

वक्तव्य	**मेरी वर्तमान सोच(मान्यता) इस वक्तव्य के बारे में**	**सहज स्वीकार्यता?**
मैं सुखी होना चाहता हूँ		
मैं दूसरों को सुखी करना चाहता हूँ		
मैं स्वस्थ होना चाहता हूँ		
मैं, दूसरों के साथ संबंध पूर्वक जीना चाहता हूँ		
मैं दूसरों से अधिक चाहता हूँ		
जो मेरे लिये वास्तव में आवश्यक है, मैं, उससे अधिक चाहता हूँ		
संबंधों में सम्मान का भाव	यदि आपके पास धन हो तो व्यक्ति आप का सम्मान करते हैं।	संबंधों में सम्मान का भाव सहज स्वीकार्य है।
सभी बड़ों का सम्मान		

सभी का सम्मान		

यह सूची, संकेत मात्र है, आप अपने लिये स्वयं की सूची बनायें

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय-वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के लिये कम से कम वैचारिक स्तर पर इन अभ्यासों को व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

1. ज्ञात कीजिये कि निम्नलिखित आपको सहज स्वीकार्य हैं या नहीं:
   क्या आप यह देख पा रहे हैं कि जब आप वास्तव में कोशिश करते हैं, तो आप अपनी सहज स्वीकृति का संदर्भ ले पाते हैं?
   ऐसी पाँच वस्तुओं की सूची बनाइये, जिनमें आपकी सहज स्वीकृति है। अब, स्वयं जाँच करिये कि आपकी सहज स्वीकृति समय, स्थान और व्यक्ति के आधार पर नहीं बदलती है। यह आपकी मान्यताओं पर निर्भर नहीं करती है, और सदैव विद्यमान रहती है। यदि ऐसा नहीं है तो भी क्या आप इसे अपनी सहज स्वीकृति कह सकते हैं? या इसे सहज स्वीकृति के स्थान पर आप कुछ और कहना चाहेंगे?
   जैसे मिठाई खाना। ऐसा लगता है कि यह आपको सहज स्वीकार्य है। अब जाँच करते हैं कि क्या यह समय, स्थान और व्यक्ति के आधार पर बदलता है? आप देखेंगे कि कई बार आपको मिठाई खाना पसंद होता है और कई बार नहीं भी होता है, स्थान के साथ भी ऐसा ही होता है। और हर व्यक्ति को मिठाई खाना पसंद भी नहीं होता है। अतः यह सभी मापदंडों को पूरा नहीं करता है इसलिये यह आपकी "सहज स्वीकृति" नहीं है। तो आ आपकी सहज स्वीकृति क्या है? जाँच कर देखें (यहाँ पर मिठाई खाना आपकी पसंद हैं, जबकि शरीर का पोषण आपकी सहज स्वीकृति है)।
2. आप स्वयं में देखिये, अर्थात् "जैसा मैं हूँ" और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है" को देखिये। इनसे संबंधित कम से कम 10 ऐसी वस्तुओं की सूची बनाइये जो आप ने अपने विचार, व्यवहार एवं कार्य में देखा है, और अब उन्हें लिखिये (आपकी सुविधा के लिये नीचे तालिका दी गई है)।

जैसा मैं हूँ मेरे विचार व्यवहार और कार्य	**जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है?**	**क्या इन दोनों में संगीत है या अन्तर्विरोध?**	**मैं सहज महसूस कर रहा हूँ या असहज?**	**संवाद**

मैं अपने माता-पिता को सुखी करता हूँ	मैं हर समय अपने माता-पिता को सुखी करना चाहता हूँ	संगीत	सहज	
लेकिन मैं कभी-कभी उन पर क्रोधित हो जाता हूँ	क्रोधित होना मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, वास्तव में मैं हर समय शांत रहना चाहता हूँ	अन्तर्विरोध	असहज	नीचे दिया हुआ उदाहरण (b), देखिये
अपने अन्य विचारों को भी लिखिये	यहाँ पर आप अपनी सहज स्वीकृति को लिखिये	संगीत या अन्तर्विरोध	सहज या असहज	

(a) क्या आप यह देख पाते हैं, कि 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' आप में ये दोनों वास्तविकतायें हैं? आपके अलावा और कौन इन दोनों वास्तविकताओं को आपमें देख सकता है? क्या आप यह देख पाते हैं कि जो वास्तविकतायें आपको सहज स्वीकार्य हैं वह आपके लिये मूल्यवान हैं? इन दो वास्तविकताओं को देखने के बाद आप जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उन्हें लिखिये।

(b) क्या आप यह देख सकते हैं कि स्व-अन्वेषण ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा आप अपनी सहज स्वीकृति के प्रति जागरूक हो सकते हैं, और 'जैसा मैं हूँ' के प्रति भी जागरूक हो सकते हैं और इनके बीच एक आंतरिक संवाद शुरू कर सकते हैं? मूलतः आप स्वयं से प्रश्न पूछें कि 'क्या यह मुझे सहज स्वीकार्य है'?

जैसे यदि मैं कभी भी क्रोधित नहीं होना चाहता हूँ, तो फिर मैं क्यों हो जाता हूँ? यह जाँच कर देखें कि क्या आपने ऐसा मान रखा है, कि कुछ अवसरों पर क्रोधित होना ही चाहिये अन्यथा परिस्थितियां और भी खराब हो जायेंगी, अतः उस समय क्रोध आवश्यक है। परंतु जब मैं क्रोधित होता हूँ, तो अपने अंदर असहज महसूस करता हूँ, क्योंकि क्रोधित होना मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है! तब ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये? क्या कोई दूसरा समाधान भी हो सकता है?

निरीक्षण करके देखें की आपके भीतर ये संवाद किस प्रकार से हो रहा है। एवं इसे लिखिये कि आपने संवाद के निरीक्षण से क्या सीखा?

3. देखिये कि वास्तव में आप क्या होना चाहते हैं। आप स्वयं को 3 वर्ष पश्चात कैसा देखना चाहते हैं उसके अनुसार एक पत्र तैयार करिये (जैसे कि बायो-डाटा)। इसे हम "भविष्य का बायो-डाटा" भी कह सकते हैं। कृपया करके इसमें निम्नलिखित 5 उप श्रेणियों को भी जोड़िये:
   a. आपके बारे में:
      - **i.** आपकी, शैक्षणिक तथा व्यावसायिक योग्यता
      - **ii.** मानव होने के नाते आप के गुण (qualities) (आप किस प्रकार के व्यक्ति होंगे)
      - **iii.** अन्य लोगों के साथ संबंधों में जीने की आपकी योग्यता
      - **iv.** आपका स्वास्थ्य
      - **v.** आपका कार्य-कौशल (आप स्वतंत्र रूप से बिना किसी की मदद के क्या करने के योग्य होंगे)
      - **vi.** आपकी रुचियां (hobbies), जो आपको पसंद है।
   b. परिवार में आप की भूमिका (परिवार में आप क्या भूमिका लेना चाहेंगे और आप अपने परिवार से क्या आशा करेंगे)

c. कार्य स्थल पर आपकी भागीदारी (आप कार्य स्थल पर क्या उत्तरदायित्व लेना चाहेंगे एवं कार्य स्थल से आप क्या अपेक्षा रखेंगे)
d. पड़ोस, संस्थान, समाज में आपकी भागीदारी (समाज में आप क्या उत्तरदायित्व लेना चाहेंगे और समाज से आपकी क्या अपेक्षा होगी)
e. शेष प्रकृति में आपकी भागीदारी (आप प्रकृति से क्या लेंगे और यह भी कि आप प्रकृति के लिये क्या करेंगे)

क्या आप यह देख पाते हैं कि इसके लिये आप में पहले से ही पर्याप्त निष्ठा और क्षमता है? और आप इसके लिये एक कार्यक्रम बना सकते हैं, अपने आगे आने वाले 3 वर्षों की सार्थकता के लिये।

अनुभाग 3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता है, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!
"यह मात्र एक प्रस्ताव है। इसे आपको अपने अधिकार पर जाँच करके निर्णय लेना है, कोई आपको उपदेश नहीं दे रहा है कि आपको क्या करना चाहिये और क्या नहीं"।

1. स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का अनुमान लगाये। 'जैसा आप हैं" और 'जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है" के बीच संवाद को देखिये। स्व-अन्वेषण के कुछ परिणामों को व्यक्त करिये कि वास्तव में आपने क्या समझा।
2. स्वतंत्रता क्या है ('अपने तरीके से' निर्णय लेना) और 'स्वयं में व्यवस्था' क्या है (सहज स्वीकृति के आधार पर निर्णय लेना)?

अनुभाग 4: आपके प्रश्न
(Your Questions)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा चिन्ह लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 3: मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति
Basic Human Aspirations and their Fulfilment

पुनरावृत्ति
(Recap)

पिछले अध्यायों में हम मूल्य शिक्षा की आवश्यकता, दिशानिर्देश (guidelines), विषय-वस्तु (content) और इसकी प्रक्रिया से परिचित हुये, साथ ही साथ स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को भी समझा। स्व-अन्वेषण, मानवीय मूल्यों को समझने की प्रक्रिया है, सर्वप्रथम इस प्रक्रिया में हम अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच करते हैं, तत्पश्चात इसके अनुसार बाहर व्यवहार-कार्य में जी कर देखते हैं, और आने वाले फल परिणामों को भी जाँचते हैं। हमने सहज स्वीकृति को भी समझने का प्रयास किया और यह भी समझा कि कैसे यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का आधार है।
स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को समझते समय दो बातें ध्यान में आयी, पहली कि मानव की मूल चाहना क्या है, और दूसरी इसको कैसे पूरा करेंगे। इस अध्याय में हम इन्हीं दो बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे।

मूल चाहना का क्या अर्थ है?
(What is Meant by Basic Aspiration?)

सामान्यतः हम कुछ इस प्रकार से सोचते हैं कि स्कूल जायेंगे ताकि कुछ सीखकर, कॉलेज जाने के योग्य हो सकें, कालेज में पढ़कर नौकरी पा सकें, और नौकरी से मिलने वाले वेतन से सुविधायें जुटा सकें। इसी तरह के विचारों की श्रृंखला हममें लगातार चलती रहती है, और इसके अनुसार हम कार्य भी करते रहते हैं।

आप यह देख सकते हैं कि जब इनमें से कोई एक मिल जाये तो हम किसी दूसरे की तरफ चल पड़ते हैं। जैसे जब स्कूल की पढ़ाई पूरी हो जाती है तो हम प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने लगते हैं। जब हमें किसी कॉलेज में प्रवेश मिल जाता है, तो हम इसकी पढ़ाई लिखाई, ग्रेड तथा उत्तीर्ण होने वाली श्रेणी के बारे में सोचने लगते हैं। जब यह भी पूरा हो जाता है तो नौकरी पाना हमारा उद्देश्य हो जाता है। समय-समय पर हमारे लिये जो महत्वपूर्ण प्रतीत होता है, उसी के अर्थ में हम कुछ न कुछ करते रहते हैं।

उपरोक्त में कौन सी हमारी मूल चाहना है, क्या स्कूल में की गई पढ़ाई, इंजीनियरिंग की पढ़ाई, नौकरी, वेतन या फिर सुविधाओं की खरीददारी? आइये अपने आप से पूछें कि हमें क्या तृप्त करेगा? आइये जाँच कर देखें कि क्या कोई ऐसा मूल उद्देश्य (end goal) है, जिसे हम इन सब के द्वारा पूरा करना चाहते हैं। क्या कोई ऐसा अंतिम लक्ष्य (बिंदु) है जहाँ पर हम पहुंचना चाहते हैं और उसी स्थिति में निरंतर बने रहना चाहते हैं? यह अंतिम लक्ष्य या स्थिति (end state) ही हमारी मूल चाहना (Basic Aspiration) है।

मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता
(Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations)

मूल चाहना को समझने के लिये स्वयं से निम्नलिखित प्रश्न पूछिये:

- क्या आप सुखी होना चाहते हैं?

- क्या आप समृद्ध होना चाहते हैं?
- क्या आप सुख समृद्धि की निरंतरता चाहते हैं?

आपका उत्तर सकारात्मक (हाँ) है। ठीक है? हमारी सहज स्वीकृति निरंतर सुखी और समृद्ध होने की ही है। **सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता मानव की मूल चाहना है**। निःसंदेह सुख और समृद्धि के हमारे लिये अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं, लेकिन हम सुखी और समृद्ध होना चाहते ही हैं। कभी-कभी हम ऐसा सोचते हैं कि इसकी निरंतरता संभव नहीं हो सकती है उसके उपरांत भी हम निरंतर सुखी और समृद्ध होना चाहते हैं। ऐसा कोई भी क्षण नहीं होता, जब हम स्वयं को दुखी या दरिद्र करना चाहते हैं। अतः अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर यह देख सकते हैं कि हमारी मूल चाहना सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता है, यहाँ पहुँचने के लिये ही हम सब कुछ कर रहे हैं। यहाँ पहुँचने के बाद इसे बदलना नहीं चाहते हैं, बल्कि इसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें
(Basic Requirements for Fulfilment of Human Aspirations*)*

आइये आगे जाँचने के लिये स्वयं से कुछ और प्रश्न पूछते हैं:

- क्या हम सुखी हैं?
- क्या हम समृद्ध हैं?
- क्या हमारे सुख, समृद्धि की निरंतरता है?

आपको क्या उत्तर मिला? क्या यह सकारात्मक (हाँ) है? जहाँ तक मूल चाहना या इच्छा का प्रश्न है इन प्रश्नों का उत्तर सदैव ही सकारात्मक मिलता है; लेकिन जब हम अपने होने (state of being) अर्थात् अपनी वर्तमान स्थिति के बारे यही प्रश्न पूछते हैं तो यह उत्तर हमेशा सकारात्मक नहीं होता है, क्या ऐसा नहीं है? क्या हमारी मूल चाहना और हमारी वर्तमान स्थिति में अंतर नहीं है और यह अंतर (gap) हमें सहज स्वीकार्य भी नहीं है। क्या ऐसा ही है? (चित्र. 3-1. देखिये);

इच्छा, मूल चाहना	होने की स्थिति, हम क्या हैं
क्या हम सुखी होना चाहते हैं?	क्या हम सुखी हैं?
क्या हम समृद्ध होना चाहते हैं?	क्या हम समृद्ध हैं?
क्या हम सुख और समृद्धि की निरंतरता चाहते हैं?	क्या हमारे सुख और समृद्धि की निरंतरता है?

यह अंतर क्यों?
-हमारी चाहना और हमारे होने के बीच
- जैसा होना हमें सहज स्वीकार्य है और जैसा हम हैं के बीच

इस अंतर को भरने के लिये हम क्या कर रहे हैं?
यह अंतर कम हो रहा है या बढ़ रहा है?

हम इसी का अध्ययन करेंगे

चित्र. 3-1. मानव की मूल चाहना और उसके होने की स्थिति

आइये इसकी जाँच आगे जारी रखते हैं। हम अपने प्रयासों को देखे तो वह:

- सुख और समृद्धि की निरंतरता के लिये हैं?

या

- मात्र सुविधाओं के संग्रह के लिये हैं?

जब हम अपने द्वारा किये गये प्रयासों की तरफ देखते हैं, तो हम सरलता से यह देख पाते हैं कि सामान्य तौर पर हम जो भी कर रहे हैं, वह तिक सुविधाओं के संग्रह के लिये कर रहे हैं। हम सुख और समृद्धि की निरंतरता की आशा तो रखते हैं लेकिन प्रयास भौतिक वस्तुओं के संग्रह के लिये ही कर रहे हैं। यहाँ तक कि हम यह भी नहीं जान पाते कि हमारे पास पर्याप्त सुविधा है या नहीं, और वास्तव में ये हमारी सुख और समृद्धि को सुनिश्चित करेगी भी या नहीं, लेकिन इसके बावजूद भी हम अधिक से अधिक सुविधा संग्रह करने में लगे रहते हैं।

हम यह मानकर प्रयत्न करते रहते हैं कि सुविधाओं से ही सुख और समृद्धि प्राप्त की जा सकती है। जाँच कर देखें कि कहीं आपने भी तो यह मान नहीं लिया है कि जब आपके पास पर्याप्त सुविधा हो जायेगी तो सुख और समृद्धि स्वतः ही आ जायेगी।

एक प्रचलित मान्यता है कि धन ही सब कुछ है- हम यह सोचते हैं कि जब हमारे पास पर्याप्त धन हो जायेगा, तो सब कुछ ठीक हो जायेगा- हमारे पास सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता हो जायेगी। इस बारे में हम जागरूक ही नहीं होते हैं कि इस तरह की मान्यता हमारे प्रयासों को गलत दिशा दे रही है। आगे बढ़िये और जाँच कर देखिये कि कहीं आपकी भी यही स्थिति तो नहीं है।

आगे जाँच करने के लिये स्वयं से कुछ और प्रश्न पूछते हैं:

सुविधा के संग्रह के अतिरिक्त; सुख समृद्धि की निरंतरता के लिये हम और क्या प्रयास कर रहे हैं?

क्या हमने यह मान लिया है कि केवल सुविधा ही सब कुछ है जो हमें चाहिये? यदि नहीं तो हम इसके अलावा और क्या कर रहे हैं? हमें अपने जीने में इसे जाँच कर देखने की आवश्यकता है, कि हम अपने प्रयास कहाँ लगा रहे हैं? वास्तव में हम अपना समय खाने में, सोने में, टेलीविजन देखने में, कौशल-विकास (developing skills) करने में, उसी के अनुसार कार्य करने आदि में खर्च कर रहे हैं। अर्थात् हम अपना अधिकांश समय सुविधा में ही लगा रहे हैं। ऐसा इसलिये है क्योंकि हमें ज्यादातर समय यही पढ़ाया गया है, इसी तरह जीने का प्रशिक्षण मिला है कि धन संग्रह के लिये ही कार्य करिये और जितना अधिक हो सके उसे हासिल करिये। हम कठिन से कठिन प्रयत्न करते रहते हैं, अधिक से अधिक सुविधाओं के संग्रह के लिये किन्तु इन सभी प्रयासों में हमारा सुख कहीं पीछे छूट जाता है।

यदि सुख और समृद्धि की निरंतरता केवल सुविधा संग्रह से प्राप्त नहीं हो सकती है तो इसके अतिरिक्त और क्या करने की आवश्यकता है? आइये अपने आप से कुछ और प्रश्न पूछ कर इसे जानने की कोशिश करते हैं:

- क्या हमारे परिवार में दुख है?
- क्या यह दुःख, ज्यादातर सुविधाओं की कमी के कारण है? या
- क्या यह दुःख, ज्यादातर संबंधों में ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है?

जब भी हमारे परिवार में दुख होता है, तो इसका प्रमुख कारण क्या होता है? यदि आप इसकी जाँच करके देखेंगे तो यह पायेंगे कि परिवार में दुख का प्रमुख कारण संबंधों में निर्वाह की कमी है। इस निष्कर्ष को स्वीकार मत करिये बल्कि स्वयं में इसे जाँच कर देखिये।
आइये अब आपके द्वारा लगाये गये समय और प्रयासों को देखते हैं, जाँचते हैं कि:

- आप अपना कितना समय और प्रयास, सुविधाओं में लगा रहे हैं एवं
- आप अपना कितना समय और प्रयास, संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह में लगा रहे हैं?

सामान्यतः कितने प्रतिशत समय और प्रयास आप सुविधा पर लगा रहे हैं? खाने पीने, सोने, कार्य करने और पढ़ने इत्यादि में। पढ़ने में लगा हुआ समय सुविधा से ही जुड़ा हुआ है यदि आप मात्र नौकरी प्राप्त करने या कोई कौशल सीखने के लिए पढ़ रहे हैं। आप अपने लिये स्वयं ही तय करें कि आपका ज्यादातर समय कहाँ लगता है?
सामान्यतः हम ज्यादातर समय और प्रयास सुविधा में ही लगा रहे हैं, क्योंकि हमने ऐसा मान लिया है कि हमारे पास पर्याप्त सुविधा होने पर सब कुछ ठीक हो जायेगा और उसके बाद कोई भी समस्या नहीं रह जायेगी, परिवार में किसी प्रकार का कोई दुख नहीं रहेगा। लेकिन इसी बीच यदि संबंधों में कोई समस्या उभर कर आती है, तो हम तालमेल बिठाने के लिये कुछ प्रयास करते हैं और कई बार इसमें सफल भी होते हैं। ज्यादातर संबंधों में असंतुष्टि या शिकायत को दूर करने के लिये हम सुविधा के प्रयोग की ही सोचते हैं जैसे कि दैनिक जीने में यदि हम अपने परिवार के सदस्यों को समय नहीं दे पा रहे हैं, तो इस असंतुष्टि या शिकायत को दूर करने का प्रयास हम कोई वस्तु उपहार स्वरूप देकर या सप्ताह के अंत में उन्हें बाहर भोजन के लिये ले जाकर, या सिनेमा दिखाकर करना चाहते हैं। और यह सब तभी संभव है जब पर्याप्त सुविधायें हमारे पास उपलब्ध हों। इसके लिये हम और अधिक मेहनत करते हैं। किन्तु क्या हम इस तरह से संबंध में असंतुष्टि या शिकायत को समाप्त करने में सफल हो पाते हैं या थोड़े समय के लिये ही इस असंतुष्टि या शिकायत से ध्यान हटाने में सफल हो पाते हैं और कुछ समय पश्चात् पुनः संबंधों की समस्याओं में अपने आप को घिरा पाते हैं?

ज्यादातर समस्यायें संबंधों के निर्वाह न हो पाने के कारण हैं जबकि हम अपना अधिक समय और प्रयास सुविधायें जुटाने में लगा रहे हैं। हम अपने धन एवं भौतिक स्रोतों का बहुत सावधानी पूर्वक निवेश करते हैं परंतु जब बात अपने संबंधों में समय और प्रयास के निवेश की होती है तो हम इसके प्रति जागरूक नहीं होते हैं। निश्चित रूप से यह सही निवेश नहीं है।

क्या आप यह देख पाते हैं कि:

> आपके परिवार में अधिकतर दुख संबंधों के निर्वाह में कमी के कारण हैं, जबकि समय का अधिकांश भाग और प्रयास सुविधाओं के लिये लगाया जा रहा है?

इन सभी चर्चाओं से, हम जो निष्कर्ष निकाल पा रहे हैं, वह बहुत ही स्वाभाविक है।

मानव के लिये सुविधा आवश्यक तो है, परंतु संबंध भी आवश्यक है।
(For human being physical facility is necessary, but relationship is also necessary)

क्या आप इससे सहमत हैं? क्या आपके लिये यह सही है?
अब हम देख सकते हैं कि जहाँ तक मानव का प्रश्न है, सुविधा आवश्यक तो है लेकिन संबंध भी आवश्यक है। मानव के लिये दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

वास्तव में, इसे देखने के बाद, हम पशु और मानव के अंतर को समझ सकते हैं। सुविधा मानव और पशु दोनों के लिये आवश्यक है। पशुओं के लिये यह आवश्यक है और पूर्ण भी (अर्थात् सामान्यतः: पशु सिर्फ सुविधा मिल जाने पर ही संतुष्ट हो जाते हैं) लेकिन जब यह प्रश्न मानव के लिये आता है तो यह बात ठीक नहीं लगती अर्थात् मानव के लिये सुविधा आवश्यक तो है, परन्तु सिर्फ सुविधा मानव की सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती।

> *उदाहरण के तौर पर, जब किसी पशु को सुविधा की कमी महसूस होती है, तो वह परेशान हो जाता है। परंतु जैसे ही उसे यह सुविधा मिल जाती है, तो वह आराम में आ जाता है। जैसे कि जब एक गाय को भरपेट भोजन मिल जाता है तो वह आराम से बैठकर जुगाली करने लगती है यानी भरपेट घास मिल जाने पर गाय आराम में आ जाती है, लेकिन क्या मानव के बारे में भी यही लगता है?*

जब मानव को किसी सुविधा की कमी होती है तो वह दुखी और परेशान हो जाता है। परंतु जब उसे यह सुविधा मिल जाती है तो वह इसके बारे में भूल जाता हैं और कई अन्य चीजों के बारे में सोचने लगता है।

क्या यह आपके साथ भी कभी घटित हुआ है? जब कभी आपको किसी चीज की आवश्यकता महसूस होती है और वह आपके पास नहीं होती तो आप यही सोचते रहते हैं कि उसे कैसे प्राप्त किया जाये।

यदि किसी व्यक्ति के पास खाने के लिये पर्याप्त भोजन नहीं है तो वह परेशान होता है, परंतु जब उसे पर्याप्त भोजन मिलने लगता है, तो इसके बारे में भूल ही जाता है, इसके अलावा और बहुत सारी दूसरी बातें सोचने लग जाता है।
जैसे आपके पास यदि अपना मकान नहीं है तो ज्यादातर समय यह आपके विचार में चलता रहता है और आप चिंतित रहते हैं, परंतु जैसे ही आपको अपना मकान मिल जाता है तो आप इसके बारे में भूल जाते हैं और इसके अलावा बहुत सी अन्य बातें सोचने लग जाते हैं, उदाहरण के तौर पर घर में फर्नीचर, आपका भविष्य, आपका सामाजिक संपर्क इत्यादि और यदि यह सब आपकी आशाओं के अनुरूप नहीं होता है, तो भी आप चिंतित ही रहते हैं। आप क्या कभी इस बात से सुखी हो पाते हैं कि आपके पास अपना मकान है। क्या आप यह सब अपने में देख पाते हैं?

हम मानवीय मूल्यों की कार्यशाला (workshops) में प्रतिभागियों से इस प्रकार के प्रश्न अक्सर पूछते रहते हैं कि “क्या आप जानते हैं कि आपके पास कितने जोड़ी कपड़े हैं?"। बड़ी मुश्किल से 10% से भी कम व्यक्ति यह

बता पाते हैं, कि उनके पास कितने जोड़ी कपड़े हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हमारे पास कपड़े न हों, तो हम दुखी और परेशान हो जाते हैं परंतु, जब हमारे पास कपड़े होते हैं तो हम में से अधिकांश उनके बारे में भूल ही जाते हैं। निःसंदेह और भी बहुत सी बाते हैं जिनके बारे में हमें सोचना है।

अतः अब हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि सुविधा पशुओं के लिये आवश्यक है और यह मानव के लिये भी आवश्यक है, जबकि;

- पशुओं के लिये सुविधा आवश्यक है और अधिकांश समय पूर्ण भी
- मानव के लिये सुविधा आवश्यक तो है परंतु पूर्ण नहीं

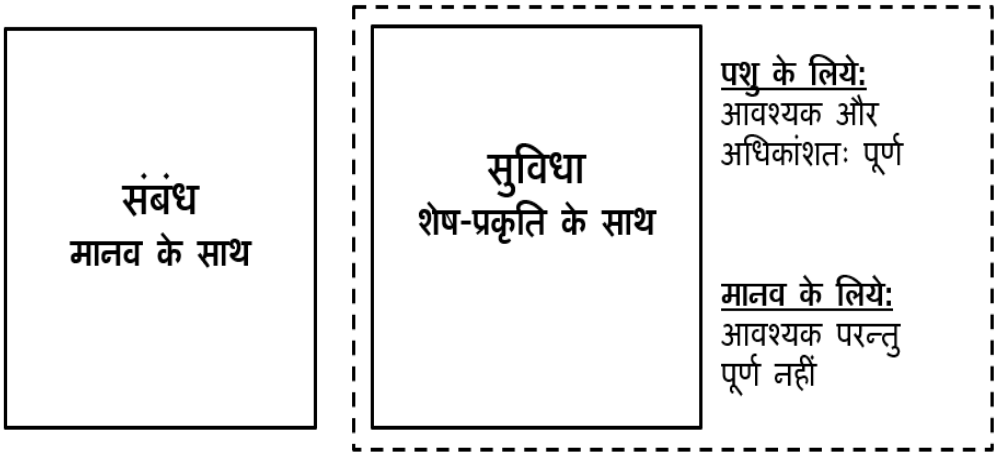

चित्र. 3-2. मानव के लिये सुविधा आवश्यक है, लेकिन संबंध भी आवश्यक है

जब मानव की बात आती है तो सुविधा का अभाव उसे दुखी और परेशान करता है किन्तु केवल सुविधा की उपलब्धता मात्र से ही सुख और समृद्धि का भाव सुनिश्चित नहीं होता है, इसके लिये कुछ और भी चाहिये। जब आप यह देखते हैं कि और क्या चाहिये? तो यह पता चलता है कि संबंधों का निर्वाह भी आवश्यक है (चित्र. 3-2. देखें)।
कल्पना कीजिये कि यदि आपको एक आलीशान फाइव स्टार होटल जिसमें सभी सुविधायें हों, में एक महीने रहने के लिये दे दिया जाये लेकिन आपके साथ बात करने वाला कोई न हो तो क्या आप सुखी रह पायेंगे?
हालांकि संबंध पूर्वक रहना हमें सहज स्वीकार्य है, परन्तु क्या वास्तव में हम संबंध पूर्वक जी पा रहे हैं? क्या हमने संबंध को समझा है या सिर्फ समझा हुआ मान लिया है? इसको और अधिक विस्तार से जानने के लिये जाँच कर देखें कि इनमें से आपको क्या सहज स्वीकार्य है:

1. दूसरों के साथ संबंध पूर्वक(व्यवस्था में) जीना या
2. दूसरों के साथ विरोध पूर्वक जीना या
3. आप मानते हैं कि दूसरों के साथ जीने के लिये विरोध आवश्यक है, क्योंकि 'struggle for survival', 'survival of the fittest' और क्या इस प्रकार से जीते हुये आप सुखी होते हैं?

थोड़ा स्वयं में निरीक्षण करने पर देखेंगे कि इन तीनों में से पहला बिंदु ही, हमें सहज स्वीकार्य है। क्या ऐसा नहीं है? निश्चित तौर पर आप दूसरों के साथ विरोध पूर्वक नहीं जीना चाहते हैं, लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ हो जाती हैं कि आपको तीसरे विकल्प के अनुरूप सोचना पड़ता है क्योंकि आजकल ज्यादातर स्कूल और कॉलेजों में हम यही पढ़ा रहे हैं। यद्यपि हमें संबंध सहज स्वीकार्य है फिर भी हम अपने बच्चों को विरोध और संघर्ष सिखा रहे

हैं। यदि हम तीसरे विकल्प को अपना लेते हैं तो इससे मानव, परिवार, और समाज में बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हम इसे अपने चारों तरफ देख भी सकते हैं।

सामान्यतः संबंधों में, आज जो घटित हो रहा है, वह कुछ इस प्रकार से है:

हर बार जब झगड़ा होता है, तो हम इसे सुलझाना चाहते हैं। अगले दिन की शुरुआत हम यह सोचकर करते हैं, कि आज झगड़ा नहीं करेंगे, किन्तु पुनः झगड़ा हो जाता है (कभी-कभी उस दिन की समाप्ति से पहले ही)।
क्या ऐसा आपके साथ भी घटित होता है, आपके भाई-बहन, माता-पिता, मित्र आदि के साथ में? खिन्न रहना, क्रोधित रहना, कई दिनों तक बात न करना, एक दूसरे को न्यायालय तक घसीटना, तलाक इत्यादि संबंधों की स्थिति के सूचक हैं। संबंध पूर्वक जीने की प्रबल इच्छा तो हममें होती ही है, किन्तु संबंध की समझ की कमी होती है, और संबंध के निर्वाह करने की योग्यता नहीं होती है; यही कारण है कि संबंधों में आने वाली समस्यायें बार-बार घटित होती रहती हैं और आपस में बार-बार झगड़ा भी होता रहता है। आप सोचते हैं कि गलती दूसरे व्यक्ति की है- चाहते हैं कि उसमें सुधार हो; और दूसरा व्यक्ति सोचता हैं कि गलती आपकी है और चाहता है कि आप स्वयं को ठीक करें। ऐसे में कोई भी स्वयं को नहीं सुधारता और किसी तरह से हम संबंधों को चलाने का प्रयत्न करते रहते हैं।
क्या आप यह देख सकते हैं कि संबंधों के सही निर्वाह को सुनिश्चित करने के लिये, संबंधों के बारे में सही-समझ का होना आवश्यक है? इसके साथ ही अपने बारे में और शेष प्रकृति के बारे में सही-समझ का होना भी आवश्यक है, ताकि सुविधा की आवश्यकता का सही-सही आंकलन किया जा सके एवं इसकी उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिये सही तरीकों को भी अपनाया जा सके।

सही-समझ, संबंध और सुविधा - यह तीनों ही मानव की तृप्ति के लिये आवश्यक हैं (Right Understanding, Relationship and Physical Facilities- All Three are Required for fulfilment of Human Being)

अब तक के विचार-विमर्श से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये सुविधा, संबंध और सही-समझ इन तीनों का ही होना आवश्यक है।
इसे चित्र. 3-3. में दिखाया गया है-

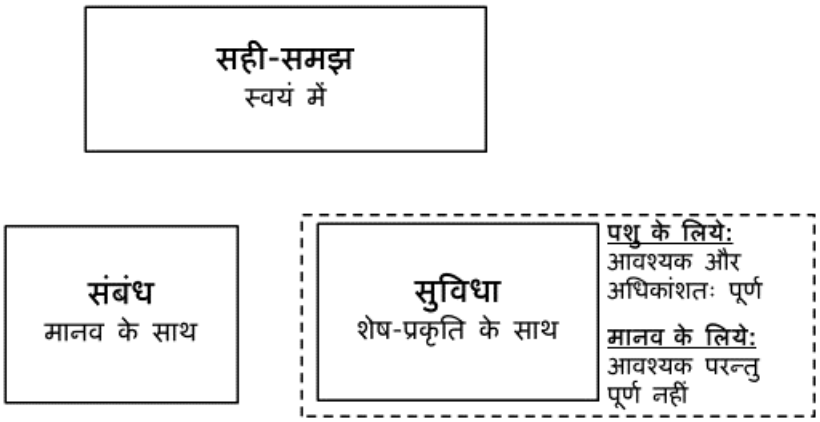

चित्र. 3-3. मानव के लिये सुविधा और संबंध में निर्वाह के साथ-साथ सही-समझ भी आवश्यक

अब आप यह देख सकते हैं कि ये तीनों ही आपकी आवश्यकता हैं। क्या आप इनमें से किसी को भी छोड़ सकते हैं? क्या आपको सुविधा की आवश्यकता है? क्या आपको संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह की आवश्यकता है? क्या आपको सही-समझ की आवश्यकता है? क्या इनमें कुछ भी अनावश्यक या जरूरत से ज्यादा (superflous) है। अतः हम आसानी से यह कह सकते हैं कि ये तीनों ही आवश्यक हैं।

ये तीनों अलग-अलग तरह की वास्तविकतायें हैं। इन्हें और अधिक समझने के लिये आइये इन तीन परिस्थितियों को देखते हैं।

- बहुत ज्यादा उमस (humid) और गर्मी है, और आपको पसीना (sweating) आ रहा है। यदि आप एयर कंडीशनर (A.C.) का स्विच ऑन कर देते हैं तो क्या ठंडी हवा इसमें आपकी मदद करेगी? आप देखेंगे की वातावरण और अधिक अनुकूल हो गया है और आपके शरीर से पसीना निकलना बंद हो गया है। एयर कंडीशनर और ठंडी हवा सुविधा है यह शरीर को अत्यधिक गर्मी से निज़ात दिलाने में सहयोगी है।
- अब आप उसी ठंडे कमरे में बैठे हुये हैं, आपका शरीर ठंडी हवा के कारण आराम में है। एक व्यक्ति, जिसके साथ आप में विरोध का भाव है, कमरे में प्रवेश करता है अब आप स्वयं में कैसा महसूस करते है? सहज या असहज? थोड़ा स्वयं में ध्यान देने से आप यह देख सकते हैं कि आप असहज महसूस कर रहे हैं। यह असहजता आपके अंदर होने वाले विरोध के भाव के कारण है। अब यह जाँच कर देखिये कि स्वयं में होने वाली इस असहजता पर कमरे को ठंडा या गर्म रखने से कोई फर्क पड़ता है क्या?
- कुछ समय पश्चात वह व्यक्ति कमरे से चला जाता है, और आप कमरे में अकेले बैठे हुये भी उसी व्यक्ति के बारे में सोचते रहते हैं अथवा आपके विचारों में अन्तर्विरोध (contradictions) है। आप इस अन्तर्विरोध को सुलझाने के बारे में सोचते हैं, परंतु आप ऐसा करने में अक्षम हैं। ऐसे में क्या आप स्वयं में सहज महसूस करेंगे या असहज? पुनः आप यह देख सकते हैं कि आप स्वयं में असहज हैं, और इस असहजता पर एयर कंडीशनर के तापमान का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। क्या बिना पर्याप्त जानकारी और सही-समझ (संबंध और संबंधों में सही भाव की) के आप इस अन्तर्विरोध को सुलझा सकते हैं? क्या कोई भी सुविधा इस अन्तर्विरोध को सुलझा सकती है?

क्या आप यह देख पाते हैं कि सुविधा, संबंध और सही-समझ तीनों अलग-अलग तरह की वास्तविकतायें हैं, जब इन्हें और विस्तार से समझते हैं तो हम देख सकते हैं कि:

- सही-समझ (स्वयं में) से तात्पर्य, अपने आप को समझना है, उन सभी (समग्र अस्तित्व) को समझना है, जिनके साथ मैं जीता हूँ, और उनके साथ अपनी भागीदारी को समझना है अर्थात् स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व को समझना है।
- संबंध अर्थात् आवश्यक भाव जो अन्य व्यक्तियों के लिये मुझ में हैं (परिवार में, समाज में)।
- सुविधाओं में सभी भौतिक वस्तुयें सम्मिलित हैं।

मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये इन तीनों की ही आवश्यकता होती है। किसी एक को दूसरे की जगह नहीं रख सकते हैं।

आइये अब देखते हैं कि क्या हम इन तीनों पर ध्यान दे पा रहे हैं या हमारा ध्यान ज्यादातर सुविधाओं पर ही केंद्रित है? आप यह देख सकते हैं कि हमारे लिये तीनों ही आवश्यक हैं, परंतु वर्तमान में हमारा ज्यादातर ध्यान सुविधाओं पर ही है।

अब आप इस प्रचलित मान्यता की जाँच कर सकते हैं कि 'धन (सुविधा) है तो सब कुछ है' सही है या नहीं। क्या हम केवल सुविधा से संबंधों में भाव की पूर्ति कर सकते हैं? क्या हम सिर्फ सुविधा से सही-समझ की पूर्ति कर सकते हैं?

वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा
(Priority - Right Understanding, Relationship and Physical Facility)

अब अगला प्रश्न यह उठता है कि जब यह तीनों ही आवश्यक हैं, तो इन तीनों में वरीयता (priority) क्रम क्या होगा?
वरीयता से यह इंगित होता है कि क्या मौलिक (fundamental) है, क्या सापेक्ष रूप से महत्वपूर्ण (relatively important) है। अधिक वरीयता वाले पर ध्यान देने से, कम वरीयता वाले को पूरा करना आसान हो जाता है। इसका आशय यह नहीं है कि हम कम वरीयता वाले को छोड़ देते हैं। सही वरीयता क्रम की पहचान करने के लिये पहले यह पता करना होगा कि क्या मौलिक है, जिससे अन्य वरीयताओं को पूरा करना आसान हो जायेगा।

इसका उत्तर पाने के लिये हम अपने आप से वरीयता के बारे में सीधे प्रश्न पूछ सकते हैं, समय लीजिये और इसके बारे में सोचिये।

तीनों ही आवश्यक हैं। स्वयं में सही-समझ प्रथम वरीयता पर है, क्योंकि हम सही-समझ के साथ ही संबंधों में ठीक निर्वाह को सुनिश्चित कर सकते हैं; और हम यह भी पता कर सकते हैं कि कितनी सुविधा की मूलतः आवश्यकता है। इसलिये सही-समझ को प्रथम वरीयता पर रखा गया है।

जैसा कि हमने चर्चा की है कि परिवार में ज्यादातर समस्यायें संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण हैं, न कि सुविधाओं की कमी के कारण। यह दर्शाता है कि सुविधा से संबंध अधिक महत्वपूर्ण है।

उदाहरण के लिये, एक महिला अध्यापक (lady teacher) सायंकालीन मानवीय मूल्यों की कार्यशाला में भाग ले रहीं थीं। दो दिन तक संबंध और उसकी वरीयता पर चर्चा हो जाने के बाद उन्होंने अपना अनुभव बताया कि एक बार वह जब रसोई घर में थीं और उनके दोनों बच्चे (उम्र-5 साल और 8 साल) घर के अंदर ही क्रिकेट खेल रहे थे। खेल के दौरान गेंद शीशे पर लगी और शीशा टूट गया, अचानक उन्होंने जब शीशा टूटने की आवाज सुनी तो वो गुस्से में रसोई से बाहर दौड़ीं, यह सोचते हुये कि ये बिना पिटाई किये नहीं मानेंगे, देखो शीशा तोड़ दिया। जैसे ही वो बच्चों के पास पहुँचीं उनमें यह प्रश्न उठा कि सुविधा की वरीयता अधिक है या संबंध की? संबंध की वरीयता अधिक है ऐसा उत्तर अपने अन्दर से मिलते ही उन्होंने देखा की उनका गुस्सा कम हो गया और तुरंत ही उनका ध्यान बच्चों पर गया कि कहीं शीशा टूटने से इन्हें चोट तो नहीं आई, और वो बच्चों से पूछने लगीं कि "कहीं तुम लोगों को चोट तो नहीं आयी", बच्चों ने उत्तर दिया "नहीं हम ठीक हैं"। वही महिला जो बच्चों की पिटाई करने की सोच कर दौड़ी थी स्वयं में सही वरीयता ध्यान में आते ही उसका गुस्सा समाप्त हो गया और उसकी जगह ममता का भाव जाग गया, अब वो शीशे के स्थान पर बच्चों की पहले सोचने लगी, और पीटने के स्थान पर यह पूछने लगी कि "तुम लोगों को चोट तो नहीं आई"। वैसे भी टूटे हुये शीशे तो कुछ पैसों में ठीक हो जाते हैं, लेकिन चोट खाये हुये बच्चों की पिटाई करने से बच्चों में माँ के प्रति जो लगाव (भाव) टूटता है, उसे ठीक करने में तो वर्षों लग जाते हैं और अगर आपस में भाव ठीक है तो चर्चा करके देर-सवेर ये बच्चों को समझाया ही जा सकता है कि वे ऐसा उपाय निकालें जिससे वे खेल भी सकें और उनके शरीर एवं घर के शीशों की सुरक्षा भी हो सके। इतना सोचते हुये वह टूटे हुये शीशे के टुकड़ों को उठाकर कूड़ेदान (dustbin) में डालते हुये वापस रसोई घर की तरफ जाने लगीं तभी उनके छोटे बच्चे ने पूछा "माँ माँ, क्या आज पीटोगी नहीं"? क्योंकि उसको अपनी माँ के बारे में पता था कि माँ सुविधाओं

के टूटने पर उसे पीटती ही है। अर्थात् माँ के लिये सुविधा अधिक महत्वपूर्ण है न की मैं (बच्चा) क्योंकि अनजाने में माँ बच्चों की भावनाओं से अधिक वरीयता सुविधाओं को देती रही है।

अब यदि आप इस पूरे वरीयता क्रम को देखें, तो सही-समझ पहली वरीयता पर है, मानव के साथ संबंधों का निर्वाह दूसरी वरीयता पर और शेष प्रकृति के साथ सुविधा सुनिश्चित करना तीसरी वरीयता पर है।
वरीयता क्रम के संबंध में हम आपके लिये यह खुला रखते हैं कि यह आपके लिये सही वरीयता क्रम है या नहीं- आप वरीयता क्रम के साथ प्रयोग करने के लिये अपने को स्वतंत्र महसूस करें और अपने निष्कर्ष तक स्वयं पहुँचें। एक बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि यह तीनों ही आवश्यक हैं, स्वयं में सही-समझ भी, मानव के साथ संबंधों का निर्वाह भी और शेष प्रकृति से सुविधायें भी। अतः इन तीनों को अलग-अलग सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है (किसी एक का विकल्प कोई दूसरा नहीं हो सकता है)।

क्या आप यह देख सकते हैं कि वर्तमान समय में सामान्यतः हम इन तीनों में से पहली एवं दूसरी वरीयता का ध्यान नहीं रख पाते हैं और सारा ध्यान तीसरी वरीयता पर रखते हैं? अर्थात् क्या आप यह देख पाते हैं कि हमारा मुख्य ध्यान न तो स्वयं में सही-समझ पर है न ही संबंधों के निर्वाह पर बल्कि सुविधा पर है? अब क्या यह भी देख सकते हैं कि जब आप पहली दो वरीयताओं पर ध्यान न देकर केवल तीसरी वरीयता अर्थात् सुविधा के लिये कार्य करते हैं तो आप कहाँ पहुँचते हैं? इसी तरह यदि इन तीनों का ध्यान रख कर चलते हैं तो क्या परिणाम आता है? आपका निष्कर्ष क्या है? इसकी जाँच हम आगे करेंगे।

यदि हम केवल सुविधा के लिये कार्य करते हैं तो जो परिणाम आता है उसे चित्र. 3-4. में दर्शाया गया है। सुविधा के स्तर पर, हम स्वयं में दरिद्रता महसूस (feeling deprived) करते हैं और दूसरों को भी दरिद्र ही बनाते हैं या उनका शोषण करते हैं। जब स्वयं में, संबंधों के बारे में सही-समझ नहीं होती, तो हम संबंधों के निर्वाह को ठीक-ठीक सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं, इसलिये हम अपने आप में दुखी रहते हैं। जब हम अपने आप में ही दुखी रहते हैं तो दूसरों को भी दुखी ही करते हैं, क्या ऐसा ही नहीं हो रहा है?

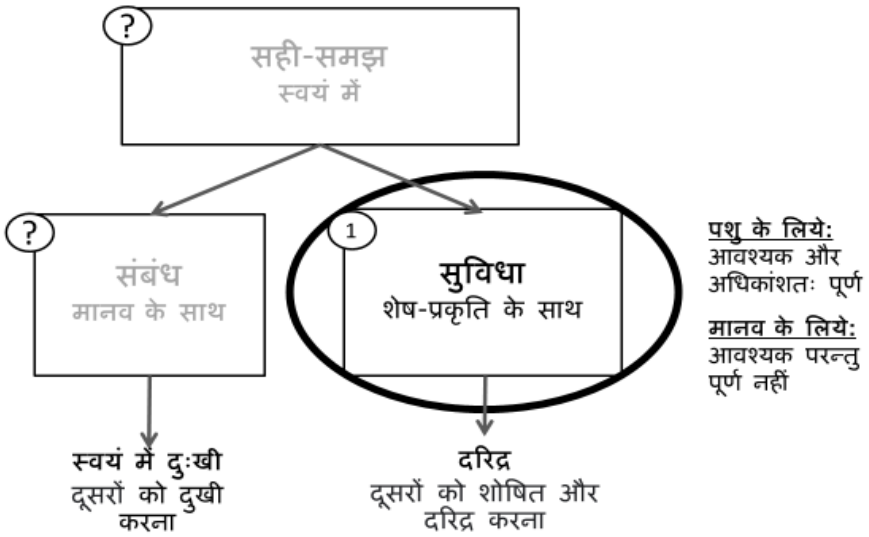

चित्र. 3-4. सुविधा को पहली प्राथमिकता देकर जीता हुआ मानव

यहाँ पर उदाहरण के लिये हम माताओं से पूछते हैं कि 'आप अपने बच्चों को कब डाँटती या मारती हैं जब आप स्वयं में आराम में होती हैं या जब स्वयं में परेशान होती हैं तब"? उत्तर सीधा है, जब आप स्वयं में परेशान होती हैं तब।

जब आप स्वयं में दुखी होते हैं तो दूसरों को भी दुखी करते हैं। आप अपने लिये इसकी जाँच उस समय कर सकते हैं- जब आप अपने परिवार के सदस्यों या मित्रों के साथ व्यवहार करते हैं। यदि हममें संबंधों की सही-समझ नहीं होती, तो हम संबंधों में भाव के बारे में भी नहीं जानते हैं। यदि हमने स्वयं में इन भावों को सुनिश्चित नहीं किया है, तो हम दुखी रहते हैं। दुख की स्थिति में हम संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह को सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं और दूसरों को भी दुखी करते हैं। यह पहला निष्कर्ष है।

इसका दूसरा निष्कर्ष यह है कि यदि हममें सही-समझ नहीं होती है, तो हम अपने लिये सुविधा की आवश्यकता की सही-सही पहचान भी नहीं कर पाते हैं। अब अगर हममें अपनी भौतिक आवश्यकता की पहचान ही नहीं है तो हममें कभी भी यह भाव नहीं आता है कि हमारे पास आवश्यकता से अधिक सुविधा है। यह मायने नहीं रखता कि हमने कितनी सुविधा का संग्रह कर लिया है, और अधिक सुविधा की चाहना हममें बनी ही रहती है। आवश्यकता से अधिक सुविधा नहीं है, का भाव ही दरिद्रता का भाव है। और यदि हम में दरिद्रता का भाव है, तो हम दूसरों का पोषण करने के बारे में सोचेंगे या शोषण करने के बारे में? इसे जाँच कर देखें, उत्तर बहुत आसान है, दरिद्रता की इस स्थिति में हम दूसरों का शोषण करने के बारे में ही सोचेंगे, जिससे अधिक से अधिक सुविधा जुटाई जा सके।

इसी सन्दर्भ में, एक बार छात्रों के साथ कप में चाय पीते हुये एक मजाकिया सवाल उठाया, आइये देखते हैं कि कितनी चाय में यह कप भर जायेगा, यदि इस कप में तली (पेंदी) न हो (if it does not have a bottom)? वे चकित हुये और मुस्कुराते हुये उत्तर दिये श्रीमान (Sir) जी क्या आप मजाक कर रहे हैं? यह तो स्पष्ट है ही कि यदि कप में तली (पेंदी) नहीं है, तो इसके भरने का प्रश्न ही नहीं उठता। चाय की कितनी भी मात्रा इसे भरने के लिये पर्याप्त नहीं है। परंतु आप इस प्रकार का तुच्छ प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं? तो फिर चर्चा शुरू हो गई कि आप यह देख सकते हैं कि यदि कप में तली (बेस) नहीं होगी तो इसके भरने का प्रश्न ही नहीं उठता। बहुत अच्छा, आपने इसे बिल्कुल आसानी से स्वीकार कर लिया है। अब आप अपनी सुविधा की चाहना को इस कप के रूप में लेकर और सुविधा या धन को चाय के रूप में लेकर देखिये। क्या इस कप में कोई तली(बेस) है? अर्थात् क्या आप जानते हैं कि आपको कितनी सुविधा की आवश्यकता है? जब आपको यह पता ही न हो कि आपको कितनी सुविधा की आवश्यकता है तो क्या आप कभी भी इसे पूरा कर सकते हैं अर्थात् क्या आप कभी समृद्ध महसूस कर सकते हैं, भले ही आपने कितना भी धन क्यों न कमा लिया हो?

आप स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं? यह उन मान्यताओं के बारे में एक संकेत देता है, जिससे अधिकतर लोग संचालित हो कर अधिक से अधिक सुविधाओं का संग्रह करने में लगे हुये हैं। इस पर विचार कीजिये।
यदि हमें यह पता ही न हो कि हमें कितनी सुविधाओं की आवश्यकता है, तो हम कितनी भी सुविधायें जुटा लें कभी भी समृद्धि का भाव नहीं आयेगा। सुविधाओं का संग्रह तो बढ़ता चला जायेगा लेकिन दरिद्रता का भाव बना ही रहेगा, और यदि हमारे में दरिद्रता का भाव होगा तो हम दूसरों को भी दरिद्र बनाने के बारे में ही सोचेंगे, अधिक से अधिक सुविधा संग्रह करने के लिये दूसरों का शोषण ही करेंगे।
यदि आप अपने आस-पास देखें, तो सामान्यतः दो तरह के लोग मिलते हैं:

1. सुविधा विहीन दुखी दरिद्र
2. सुविधा संपन्न दुखी दरिद्र

क्या आप ऐसे दोनों प्रकार के व्यक्तियों को देख पाते हैं, पहला ऐसे व्यक्ति जिनके पास पर्याप्त सुविधायें ही नहीं है और वे दुखी दरिद्र हैं, दूसरा जिनके पास बहुत सारी सुविधायें हैं लेकिन उनको यही लगता रहता है कि और अधिक सुविधायें हों? ऐसे व्यक्तियों को उनकी सुविधाओं की आवश्यकता की सही-समझ नहीं होती है, जिससे उनमें दरिद्रता का भाव रहता है और वे दुखी बने रहते हैं।

जानने का प्रयास करें कि आप कहाँ हैं- स्थिति 1 में या 2 में?

आप देख रहे हैं कि वर्तमान में जिसे विकास कहा जाता है उसकी पूरी अवधारणा मुख्य रूप से हमें बिंदु-1 से बिंदु-2 की तरफ ले जाती हुई दिखाई देती है। जब हम विकास के लिये कार्य करते हैं तो हम इस पर ध्यान (फोकस) देते है कि बाहर का वातावरण अच्छा हो, बड़ा इन्फ्रास्ट्रक्चर (ढांचे) आदि हो लेकिन क्या यह हमारी सुख और समृद्धि के लिये काफी है? बहुत बड़े-बड़े अपार्टमेंट, चौबीसों घंटे बिजली पानी, लैपटॉप, मोबाइल, बड़ी-बड़ी कारें, चौड़े-चौड़े रोड, ट्रेन, हवाई जहाज इत्यादि। यह सब आवश्यक तो हो सकता है, पर क्या यह सब आपके सुख और समृद्धि की निरंतरता को सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त है? शिक्षा के माध्यम से, हमारा ध्यान अच्छी नौकरी, जिसमें अधिक वेतन हो, की तरफ होता है जिससे हम अधिक से अधिक सुविधाओं को जुटा सकें, बिना इसकी स्पष्टता के 'कि हमारी कितनी आवश्यकता है'? यह हमें अधिक से अधिक स्थिति 1 से 2 की तरफ ले जा सकती है और इससे कभी भी सुख समृद्धि एवं इसकी निरंतरता सुनिश्चित नहीं की जा सकती।

जबकि वास्तव में जैसा होना हम चाहते हैं वह है:

3. सुविधा संपन्न सुखी समृद्ध

जाँच कर देखें कि कौन सी स्थिति में होना आपको सहज स्वीकार्य है– स्थिति-1 में, 2 में या 3 में? यह आसानी से देखा जा सकता है कि हम स्थिति-3 में ही होना चाहते हैं, यानी सुविधा संपन्न सुखी समृद्ध- क्या ऐसा नहीं है?

जबकि, आज हम कहाँ हैं– स्थिति-1 में, 2 में, या 3 में? और उससे ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि हमारा प्रयास किसके लिये है– स्थिति-1 के लिये, 2 के लिये या 3 के लिये?

अब, यदि हम बताये गये वरीयता क्रम के अनुसार सही-समझ, संबंध और सुविधा तीनों को सुनिश्चित कर लें तो देखते हैं कि क्या परिणाम आयेगा (चित्र. 3-5. देखे)

- संबंधों में सही-समझ पर आधारित सही भाव के द्वारा, हम उभय सुख सुनिश्चित कर सकते हैं- स्वयं के लिये सुख, साथ ही साथ दूसरों के लिये भी सुख।
- सही-समझ के साथ, हम सुविधाओं की आवश्यकता को पहचान सकते हैं। हम यह भी सीख सकते हैं कि कैसे आवर्तन शील (mutually enriching) विधि से उत्पादन करें। एक बार जब हम आवश्यकता से अधिक सुविधाओं की उपलब्धता को सुनिश्चित कर लेते हैं तो हम समृद्धि का भाव महसूस करते हैं, क्या ऐसा नहीं है?

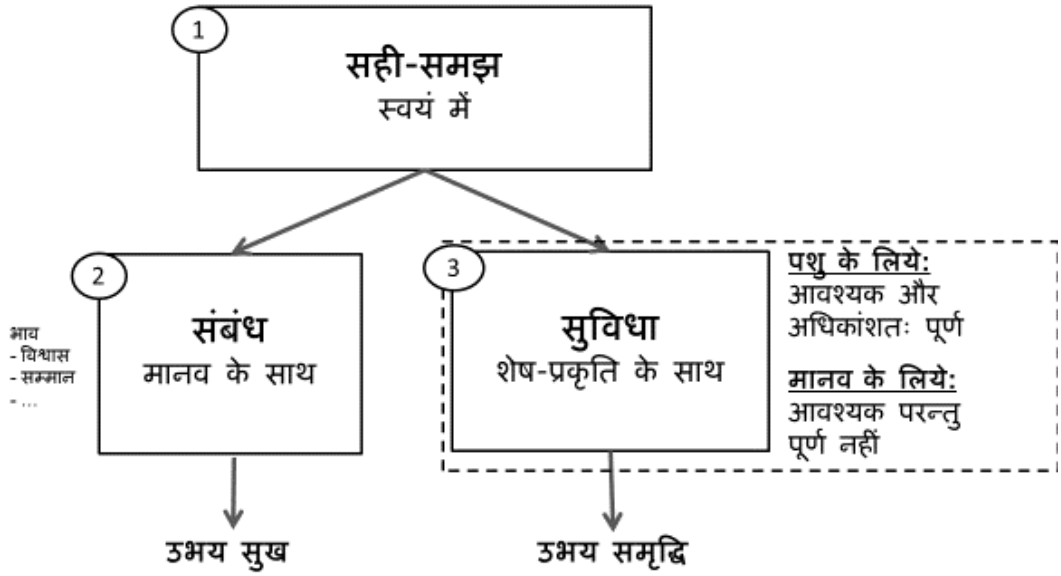

चित्र. 3-5. सही-समझ, संबंध और सुविधा के वरीयता क्रम में जीता हुआ मानव

अब अपने आप से पूछिये कि यदि स्वयं में समृद्धि का भाव है, तो आप दूसरों का पोषण करने के बारे में सोचते हैं या शोषण करने के बारे में? आप यह देख सकते हैं कि जब आपके पास आवश्यकता से अधिक है, अर्थात् समृद्धि का भाव है तो सहज रूप से आप दूसरों का पोषण करने के बारे में ही सोचते हैं, शोषण का नहीं एवं उनके द्वारा, उनकी समृद्धि हेतु किये जा रहे प्रयासों में मदद करने के बारे में भी सोचते हैं। यदि कोई शोषण करने के बारे में सोचता है, तो इससे यह संकेत मिलता है कि उस व्यक्ति में दरिद्रता का भाव है समृद्धि का नहीं।

सही समझ + संबंध → उभय सुख
सही समझ + सुविधा → उभय समृद्धि
इस तरह से, सही-समझ और संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह से हम उभय सुख सुनिश्चित कर सकते हैं। सही-समझ और शेष प्रकृति के साथ कार्य से प्राप्त पर्याप्त सुविधाओं के द्वारा हमउभय समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं एवं प्रकृति के साथ परस्पर-संवर्धन (mutual enrichment) भी सुनिश्चित कर सकते हैं। इसलिये सही-समझ, संबंध और सुविधा के द्वारा, हम स्वयं में सुख और समृद्धि सुनिश्चित कर सकते हैं तथा दूसरों के सुख और समृद्धि के लिये भी कार्य कर सकते हैं। क्या आप यह देख पाते हैं?

मानव चेतना का विकास

(Development of Human Consciousness)

मानव की मूल-चाहना अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता की पूर्ति सही-समझ, संबंध और सुविधाओं को सही वरीयता क्रम में रखते हुये की जा सकती है।
कोई भी मानव जो इन तीनों के लिये कार्य कर रहा है, वह तृप्त हो सकता है। अत: जो व्यक्ति इन तीनों के साथ जी रहा है वह **मानव चेतना (Human Consciousnesses)** में जी रहा है।
दूसरी तरफ, यदि कोई व्यक्ति केवल सुविधा संग्रह के लिये जी रहा है तो वह **जीव चेतना (Animal Consciousness)** में जी रहा है। क्योंकि केवल सुविधा पशुओं के लिये तो पर्याप्त हो सकती है, लेकिन मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये पर्याप्त नहीं है।

अब आप यह तय कर सकते हैं कि विकास का क्या सही अर्थ है? अर्थात् यह मूलतः मानव में मानवीय चेतना का विकास है या सिर्फ सुविधाओं का विकास है।
सावधानी के लिये! यहाँ पर "जीव चेतना" शब्द का प्रयोग करते समय हम पशुओं को नीचा दिखाने का प्रयास नहीं कर रहे हैं।

पशु जो जीव चेतना में जी रहे हैं	वे व्यवस्था में हैं	यह ठीक है
मानव जो मानव चेतना में जी रहे हैं	वे व्यवस्था में हैं	यह ठीक है
मानव जो जीव चेतना में जी रहे हैं	वे अव्यवस्था में हैं	यही समस्या है

पशु, जो पशु-चेतना में जी रहे हैं, वह केवल सुविधा अर्थात् केवल भोजन और आश्रय (shelter) के लिये जी रहे हैं, यह ठीक भी है– वे शेष प्रकृति के साथ व्यवस्था में हैं। परंतु जब मानव केवल सुविधा से तृप्त होने का प्रयास करता है, तो स्वयं अव्यवस्था में होता है तथा दूसरों के साथ भी अव्यवस्था का कारण बनता है। यही मानव का पशु-चेतना में जीना है जो कि समस्या है, आप इसे विरोध, संघर्ष, युद्ध आदि घटनाओं में देख सकते हैं, जो इस तरह के लोगों के कारण ही हो रही हैं। यदि पशु-चेतना शब्द, पशुओं को नीचा दिखाने का भाव देता है तो आप इसे अमानवीय-चेतना या कुछ और भी कह सकते है।

समग्र विकास

(Holistic Development)

जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमण (Transformation from Animal Consciousness to Human Consciousness)

इस पृष्ठभूमि के साथ चित्र. 3-6. का संदर्भ लेते हुये स्वयं से प्रश्न पूछिये:

1. आपको को क्या सहज स्वीकार्य है- पशु-चेतना (अमानवीय-चेतना) में जीना या मानव-चेतना में जीना?
2. इस समय हम कहाँ जी रहे हैं? पशु-चेतना में या मानव-चेतना में?
3. पशु-चेतना से मानव-चेतना में यह संक्रमण आवश्यक है या अनावश्यक?

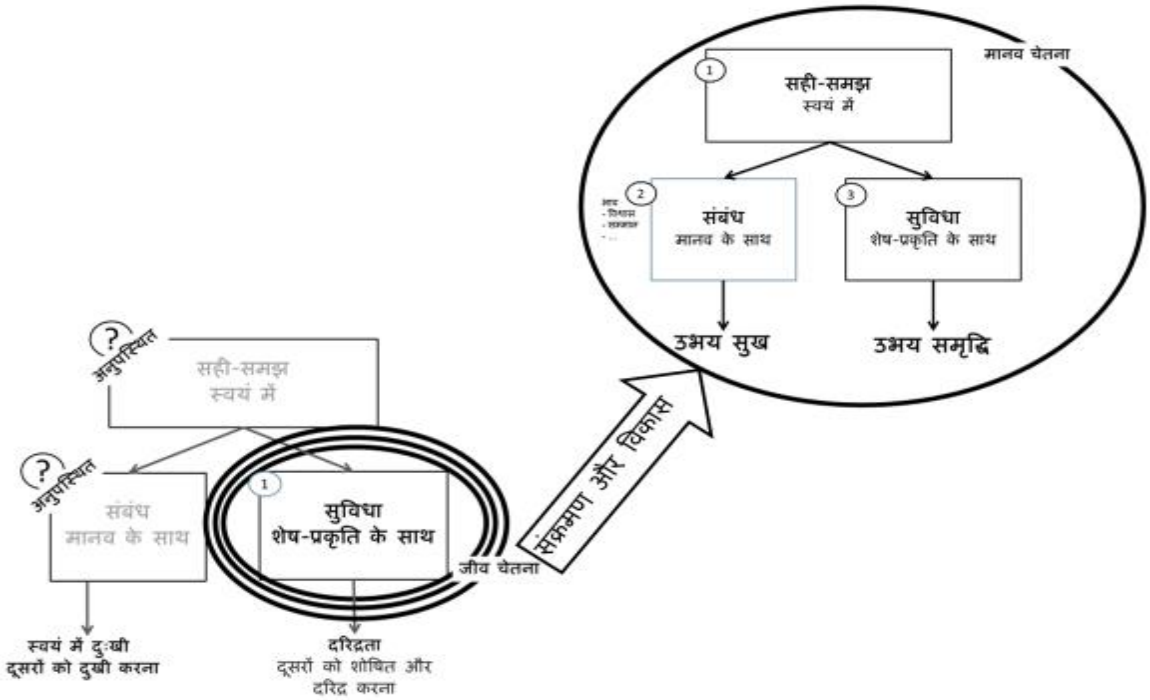

चित्र. 3-6. संक्रमण, विकास-क्रम, विकास

इन प्रश्नों का अध्ययन जारी रखें।
यदि हम वर्तमान में देखें तो पूरा विश्व प्रमुख तौर पर सुविधाओं पर ही केंद्रित है, और यही एक मुख्य पैमाना है, जिससे प्रगति और विकास (progress and development) को नापा जा रहा है। देश, सकल घरेलू उत्पाद (gross domestic product) (जीडीपी) को नापते हैं और इसमें हो रही वृद्धि दर को ही विकास का प्रमुख सूचक(Indicators) मानते हैं। परिवार और व्यक्ति भी इन्हीं आधारों को अपने शुभ का प्रतीक मानते हैं- वे नौकरियों में पद, संपदा, बैंक बैलेंस, घर, कार एवं अन्य सुविधाओं को प्रगति, विकास एवं सफलता के प्रतीक की तरह देखते हैं।
विकास के संबंध में गहरी मान्यता यह है कि सफलता और समृद्धि को ज्यादातर सुविधाओं के संग्रह के साथ ही जोड़कर देखा जाता है अर्थात् अधिक से अधिक सुविधा संग्रह कर पाने को ही सफलता माना जाता है। यही मान्यता समाज में है, शिक्षा व्यवस्था में है, यहाँ तक कि परिवारों में भी है। यह भी अवश्य देखें कि कहीं आप भी सफलता और समृद्धि के नाम पर इस सुविधा के दायरे को ही बड़ा, और बड़ा करने की कोशिश में तो नहीं लगे हैं? जैसे कि आप पहले दस हजार रुपये के वेतन के लिये, फिर पचास हजार, उसके बाद एक लाख रुपये वेतन के लिये ही प्रयास तो नहीं कर रहे हैं? यह भी जाँच कर देखें कि क्या ये सभी आपको मानव-चेतना में ले जा रहे हैं? क्या केवल सुविधा के दायरे को बड़ा करना ही सुख और समृद्धि की निरंतरता के लिये पर्याप्त है? यह भी जाँच कर देखना आवश्यक है कि केवल सुविधा की मात्रा और विविधता (quantity and variety) बढ़ाना ही विकास के लिये पर्याप्त है क्या?
सही-समझ के साथ, हम स्पष्ट रूप से समग्र विकास की परिकल्पना चेतना के संक्रमण के रूप में कर सकते हैं- पशु-चेतना से मानव-चेतना के संक्रमण के रूप में। निःसंदेह तीनों पर कार्य करना होगा- सही-समझ, संबंधों का निर्वाह और सुविधा; वह भी इसी वरीयता क्रम में।

शिक्षा-संस्कार की भूमिका

*(*Role of Education-Sanskar*)*

(मानव चेतना की तरफ संक्रमण करने के योग्य बनाना)
हम बच्चों को अनेक प्रकार से जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं। परिवार में शुरूआत से ही, माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य बच्चों को जानकारियाँ देना शुरू कर देते हैं। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था जैसे कि स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय इत्यादि भी जानकारियाँ देते ही हैं। समाज भी अपने रोल मॉडलों, मीडिया और अनेक माध्यमों से जानकारियाँ देता रहता है। ये सभी मिलकर बच्चों के भाव और उनकी दृष्टि (perspective) को आकार देते हैं। क्या आप यह देख पाते हैं?

- **सही-समझ (समग्रता की दृष्टि) का विकास करना ही शिक्षा है**।
- **संस्कार- सही समझ के साथ जीने की निष्ठा, तैयारी और अभ्यास है; तैयारी में उपयुक्त कौशल और तकनीकी को सीखना भी सम्मिलित है।**

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, इसका और विवरण भी देते रहेंगे।
शिक्षा की भूमिका, निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता का विकास अर्थात् मानव-चेतना का विकास करना है। इसके लिये, शिक्षा-संस्कार से निम्न को सुनिश्चित करना होगा:

1. प्रत्येक बच्चे में सही समझ
2. दूसरे मानव के साथ संबंध पूर्वक जीने की योग्यता तथा
3. सुविधाओं की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता, जितनी आवश्यकता है उससे अधिक उत्पादन करने के लिये आवर्तन शील विधि का अभ्यास एवं कौशल, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित हो सके।

इसी के साथ, आइये देखते हैं कि हमारी वर्तमान शिक्षा-संस्कार व्यवस्था इन तीनों को सुनिश्चित कर पा रही है या नहीं। हम इसे अपने आज के शिक्षा कार्यक्रम में देख सकते हैं,

1. ज्यादातर पहला बिंदु अनुपस्थित (missing) है (क्या आप जाँचने और जानने (सही-समझ) के लिये पढ़ रहे हैं या मानने और विषय को याद करने के लिये?)
2. दूसरा बिंदु भी अधिकांशतः: अनुपस्थित है (क्या आप संबंध और परस्पर-सहयोग के बारे में पढ़ रहे हैं या परस्पर-विरोध और प्रतिस्पर्धा (opposition and competition) के बारे में?)
3. और तीसरे बिंदु में देखेंगे कि सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना अनुपस्थित (missing) है। श्रम के द्वारा उत्पादन करने की इच्छा शक्ति भी अनुपस्थित है। जो मुख्य भाव उत्पन्न किया जा रहा है, वह अधिक से अधिक संग्रह और अधिक से अधिक भोग है, बजाय इसके कि आवश्यकता के अनुसार उत्पादन करें।

हमारे एक साथी ने यह घटना सुनायी, उन्होंने बताया कि उनकी चर्चा एक बहुत प्रतिष्ठित संस्थान के अंतिम वर्ष के छात्रों के साथ हुई। उन्होंने छात्रों से पूछा कि पढ़ाई पूरी करने के बाद उनकी क्या अपेक्षायें हैं। एक छात्र ने बहुत स्पष्ट उत्तर दिया, कहा कि पहला 'अच्छी नौकरी' अच्छी नौकरी अर्थात् अच्छा वेतन, दूसरा "कार्य से संतुष्टि (job satisfaction)" और धीरे से तीसरा यह जोड़ा कि "यदि संभव हो तो काम न करना पड़े"। वर्तमान शिक्षा, छात्रों में इस प्रकार की अपेक्षायें उत्पन्न कर रही है।

क्या यही हो रहा है? आप वर्तमान शिक्षा से अपनी अपेक्षायें तथा उपलब्धियों को बता सकते हैं।

शिक्षा, व्यक्ति निर्माण के माध्यम से समाज को वैचारिक नेतृत्व व दिशा देती है। मानवीय शिक्षा-संस्कार की दीर्घकालिक क्षमतायें (long-term potential) निम्न हैं:

1. सही-समझ हर बच्चे में- सही समझ में विकास की सहायता से मानव-चेतना से जीने की योग्यता में विकास होगा।
2. संबंध पूर्वक जीने की योग्यता- दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध में उभय सुख या न्याय से जीने की योग्यता विकसित करना, इससे परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और यह व्यवस्था, बड़े परिवार तक भी फैलेगी; अंततः विश्व परिवार तक फैलेगी, जो अखण्ड समाज (undivided society) की ओर बढ़ता है।
3. सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता विकसित करना, आवर्तन शील विधि के द्वारा आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन के लिये कौशल एवं अभ्यास को विकसित करना, सुविधाओं के सदुपयोग एवं श्रम के माध्यम से उत्पादन करने की मानसिकता का विकास करना, जिससे समृद्धि का भाव सुनिश्चित होगा। इससे परिवार व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और इसका फैलाव परिवार के सदस्यों की भागीदारी के द्वारा बड़े समाज व्यवस्था तक होगा; अंततः यह सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) तक होगा।

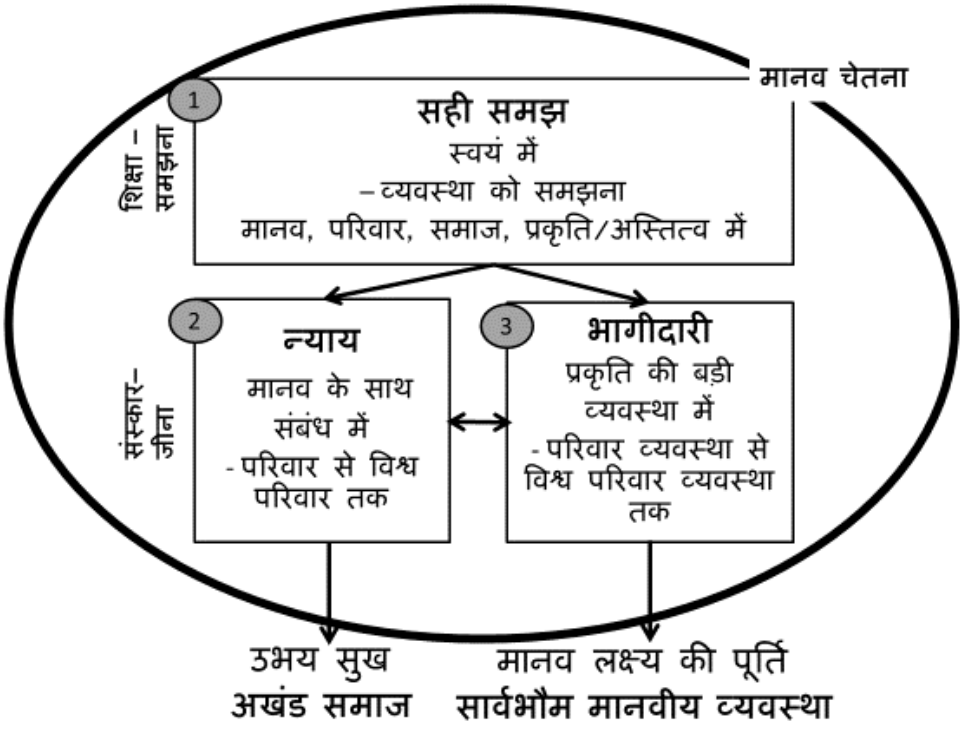

चित्र. 3-7. मानव चेतना में जीना

मानव का मानव चेतना में जीने के परिणामों को चित्र. 3-7. में दर्शाया गया है।

शिक्षा की भूमिका के बारे में यह एक प्रस्ताव है। यदि आप इसका अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि मूल्य शिक्षा का मूल उद्देश्य समग्रात्मक विकास को सुनिश्चित करना है, अर्थात् मानव चेतना की तरफ व्यक्ति का संक्रमण (individual transformation) और साथ ही साथ सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की तरफ सामाजिक संक्रमण (societal transformation)। हम आगे आने वाले अध्यायों में इन दोनों संक्रमणों की चर्चा करेंगे।

सारांश के रूप में, हमारी मूल चाहना अर्थात् सुख और समृद्धि की निरंतरता की पूर्ति सही-समझ, संबंध, और सुविधा के द्वारा इसी वरीयता क्रम में ही होगी। जिसके लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि मानवीय शिक्षा-संस्कार है।

सारांश के रूप में, हमारी मूल चाहना अर्थात् सुख और समृद्धि की निरंतरता की पूर्ति सही-समझ, संबंध, और सुविधा के द्वारा इसी वरीयता क्रम में ही होगी। जिसके लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि मानवीय शिक्षा-संस्कार है।

प्रमुख बिंदु

(Salient Points)

- मानव की मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि की स्थिति में होना है। जिनको हम निरंतर बनाये रखना चाहते हैं, बिना किसी अन्तराल (break) के।
- मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये तीनों ही आवश्यक हैं: स्वयं में सही-समझ, मानव के साथ संबंधों का निर्वाह, शेष प्रकृति के साथ सुविधा, इसी वरीयता क्रम में।
- संबंधों के निर्वाह से (मानव के साथ) उभय सुख होता है और सुविधा (शेष प्रकृति के साथ) की पूर्ति सेउभय समृद्धि होती है।
- सही-समझ, संबंध और सुविधा इन तीनों के साथ इसी वरीयता क्रम में जीने से, मानव में तृप्ति होती है। इस प्रकार से जीने को समझना और इसके ठीक-ठीक निर्वाह को सुनिश्चित करना ही मानव-चेतना में जीना है।
- मात्र सुविधा के आधार पर ही जीने से मानव में तृप्ति नहीं होती है- मानव के लिये सुविधा आवश्यक है, परंतु यह पर्याप्त नहीं है। सुविधा पशु के लिये पर्याप्त हो सकती है। यदि कोई व्यक्ति केवल सुविधा के

आधार पर (सही समझ तथा संबंधों को अनदेखा करते हुये) जीने के बारे में सोचता है, तो वह जीव - चेतना या अमानवीय-चेतना में ही जी रहा होता है। पशु का जीव-चेतना में जीना उचित है क्योंकि वह व्यवस्था में है, लेकिन यदि मानव केवल सुविधा के आधार पर ही अर्थात् जीव-चेतना में जी रहा है तो वह अव्यवस्था की तरफ जाता है। अतः यदि मानव, पशु-चेतना में जी रहा है तो यह समस्या है।

- पशु-चेतना से मानव-चेतना की तरफ संक्रमण ही समग्रात्मक विकास है। मानव-चेतना को आधार के रूप लेते हुये समग्रात्मक विकास में भाव पूर्ण संबंधों का और साथ ही साथ आवश्यक सुविधाओं का विकास भी सम्मिलित है।
- मानव-चेतना के विकास में शिक्षा-संस्कार (Education-Sanskar) की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा-संस्कार के द्वारा प्रत्येक बच्चे में सही-समझ सुनिश्चित करना होगा तथा दूसरे मानव के साथ संबंध पूर्वक जीने की योग्यता और साथ ही साथ समृद्धि के भाव को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक सुविधा की पहचान और उससे अधिक का अवर्तानशील विधि से उत्पादन करने का कौशल एवं अभ्यास भी विकसित करना होगा। इस प्रकार की शिक्षा, सही रूप से बच्चों को स्वयं में व्यवस्थित रहने और बाहरी दुनिया के साथ व्यवस्था में जीने की योग्यता विकसित करने में सहायक होगी; यह निश्चित मानवीय आचरण से जीने में और अखण्ड समाज एवं सार्वभौम मानवीय व्यवस्था को मूर्त रूप देने में भी सहायक होगी।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-evaluation)

(क्या आपने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. मानव की मूल चाहना क्या है; इनकी पूर्ति के लिये क्या-क्या आवश्यक है? इन्हें सही वरीयता क्रम में दर्शाइये, अपने उत्तर के समर्थन में दो उदाहरण भी दीजिये।
2. संबंधों में उभय सुख के लिये सही-समझ की आवश्यकता क्यों है? अपने जीने से संबंधित किन्हीं दो उदाहरणों की सहायता से समझाइये।
3. सुविधा को सुनिश्चित करने के लिये सही-समझ की आवश्यकता क्यों है? दो व्यक्तिगत उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट करें।
4. मानव-चेतना तथा जीव-चेतना के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये।
5. मानव-चेतना में जीने से समाज पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिये।
6. आप कब कह सकते हैं कि विकास, समग्रात्मक है? समग्रात्मक विकास में शिक्षा की क्या भूमिका है? इसे संक्षेप में समझायें।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय-वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के लिये कम से कम वैचारिक स्तर पर ही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत या सामूहिक स्तर पर अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

1. अपनी इच्छाओं की सूची को लीजिये जिसे आपने अध्याय-1 के अभ्यास में बनाया था, यदि आपको आवश्यक लगता है, तो इस सूची में संशोधन भी कर सकते हैं। अब इस सूची में लिखे हुये प्रत्येक इच्छा को जाँच कर देखें कि उनकी पूर्ति के लिये निम्नलिखित में से क्या आवश्यक है:
    a. सही-समझ?
    b. संबंध (सही भाव)?

c. सुविधा?

इच्छा	सही-समझ	संबंधों में निर्वाह	सुविधा
अच्छा स्वास्थ्य	?	?	भोजन इत्यादि
बहुत से मित्र	?	हाँ	?
अन्य इच्छायें			
आपकी प्राथमिकता	1,2 या 3		?

यदि एक से अधिक की आवश्यकता है तो किसकी वरीयता होगी उसे चिन्हित करिये।
इस अभ्यास के द्वारा निकाले गये अपने निष्कर्षों को समझायें।

- क्या आपकी सभी इच्छायें केवल सुविधा के द्वारा ही पूर्ण हो सकती हैं?
- क्या सही-समझ की आवश्यकता इनमें से किसी की भी पूर्ति के लिये नहीं है या कुछ के लिये है या सभी के लिये है।
- क्या संबंध की आवश्यकता इनमें से किसी की भी पूर्ति के लिये नहीं है या कुछ के लिये है या सभी के लिये है?
- क्या किसी एक को, किसी दूसरे के द्वारा पूरा किया जा सकता है? उदाहरण के लिये क्या सही-समझ को सुविधाओं के द्वारा पूरा कर सकते हैं। यदि ये अलग-अलग वास्तविकतायें हैं, तो इनकी प्रमुख विशेषतायें क्या हैं अर्थात् सही-समझ, संबंध और सुविधा में प्रमुख अंतर क्या है?
- इन तीनों में वरीयता क्रम क्या है?

इस सूची को तैयार रखिये, क्योंकि हम आगे आने वाले अध्यायों में भी इसका उपयोग करेंगे।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!
"दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह, वर्ष के बाद वर्ष, कब से मैं सुख के लिये दौड़ ही रहा था। अब मुझे पता चला कि मुझे इसके लिये कहाँ प्रयास करना है। मैं कुछ वर्षों के बाद के अपने जीवन की कल्पना कर सकता हूँ- यह अद्भुत होगा।"

1. मानव चेतना की तरफ व्यक्तिगत संक्रमण, सही-समझ, संबंधों के निर्वाह और सुविधा की पूर्ति को ध्यान में रखने के द्वारा।
2. अमानवीय समाज से मानवीय समाज तरफ सामाजिक संक्रमण।
3. दोनों संक्रमण के लिये मानवीय शिक्षा आधार के रूप में।

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुए अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 4: सुख और समृद्धि को समझना – इनकी निरन्तरता और पूर्ति के लिए कार्यक्रम
(Understanding Happiness and Prosperity - Their Continuity and Programme for Fulfilment)

पुनरावृत्ति
(Recap)

पिछले अध्याय में हमने देखा कि मानव की मूल चाहना (aspiration) सुख और समृद्धि की निरंतरता है। हमने यह भी देखा कि इस चाहना की पूर्ति के लिये तीन मूलभूत आवश्यकतायें हैं- सही-समझ, संबंध और सुविधा, इसी वरीयता क्रम में।
इस अध्याय में हम सुख और समृद्धि के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। इन मूल चाहनाओं के लिये सामान्यतः हमारी क्या दृष्टि है इसे भी समझेंगे, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से हम इनका मूल्यांकन करते हुये, इनके बारे में सही-समझ सुनिश्चित करने का प्रयास करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि इन मूल चाहनाओं की पूर्ति कैसे हो सकती है, इसकी विधि और प्रक्रिया क्या होगी?

सुख के अर्थ को समझना
(Exploring The Meaning of Happiness)

सुख एक ऐसी बात है, जो हम सभी के लिये महत्वपूर्ण है। हमारे सभी प्रयास सुखी होने के लिये ही होते हैं। जबकि सामान्यतः सुख क्या है , इस पर हम सभी एकमत नहीं होते। क्या यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये अलग-अलग है, जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता या यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसे निश्चितता से परिभाषित किया जा सकता है?
आपकी दृष्टि में सुख क्या है ?
यहाँ पर हम लोग इसी को समझने का प्रयास कर रहे हैं।
अध्याय-2, में हमने यह प्रस्ताव दिया था कि जब हम स्वयं में संगीत में होते हैं अर्थात् "जैसा मैं हूँ" और "जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है" के बीच, तो हम सुख की स्थिति में होते हैं (चित्र. 4-1. का संदर्भ लें)। हमने आपसे यह भी कहा था कि आप स्वयं में जाँच करके देखिये कि यह आपके लिये सही है या नहीं। क्या आप कोई ऐसा समय याद कर सकते हैं, जब आपने सुखी महसूस किया हो, और इस प्रस्ताव को जाँच कर भी देखा हो?

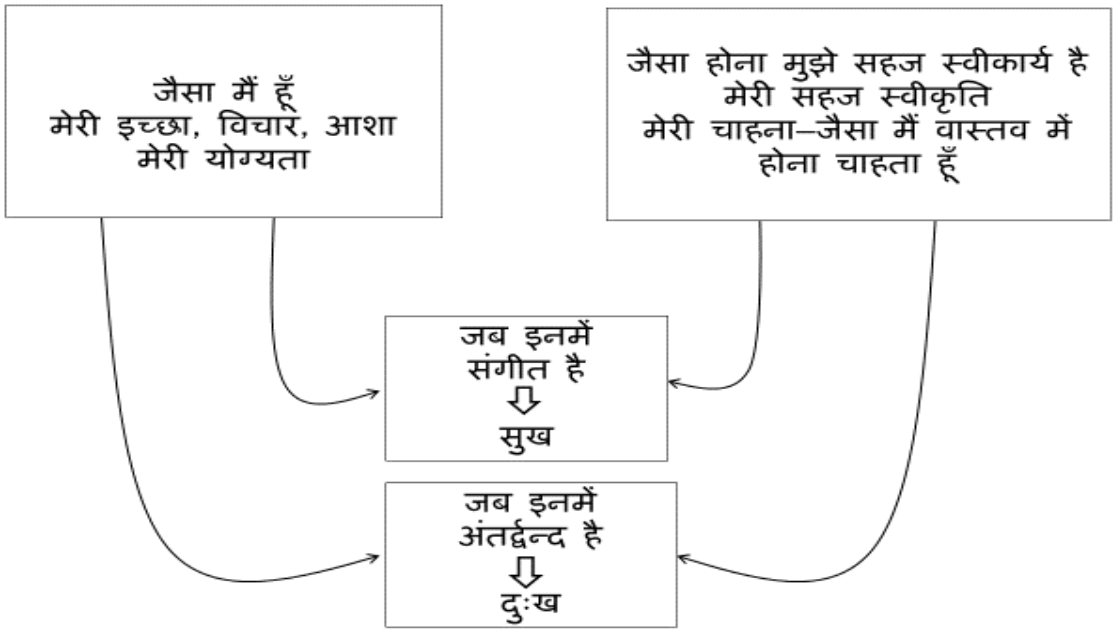

चित्र. 4-1. स्वयं में सुख और दुःख

हमने यह भी इंगित किया था कि जब इन दोनों में संगीत नहीं होता तो हम अन्तर्विरोध की स्थिति में होते हैं। हम इस अन्तर्विरोध की स्थिति से बाहर निकलना चाहते हैं, लेकिन यदि हमें इसी स्थिति में रहने के लिये बाध्य होना पड़े तो हम दुखी होते हैं। क्या आप कोई ऐसा समय याद कर सकते हैं, जब आपने दुखी महसूस किया हो और इसे जाँच कर भी देखा हो?

आइये अब सुख को और अधिक गहनता से समझने का प्रयास करते हैं। यहाँ पर यह कहने का प्रयास किया जा रहा है कि सुख वास्तविक है, निश्चित है, अतः इसको परिभाषित किया जा सकता है, समझा जा सकता है और इसे सुनिश्चित करने का प्रयास भी किया जा सकता है। सुख के बारे में विस्तृत प्रस्ताव इस प्रकार है:

"जिस स्थिति या परिस्थिति में मैं हूँ, यदि उसमें संगीत या व्यवस्था है, तो उस स्थिति या परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य होता है"।

ऐसी स्थिति या परिस्थिति में जीना, जो मुझे सहज स्वीकार्य है, यही सुख है।

अर्थात् संगीत या व्यवस्था की स्थिति में होना ही सुख है।

अर्थात् संगीत या व्यवस्था ही सुख है।

सुख=व्यवस्था।

आइये इस प्रस्ताव का अध्ययन करने के लिये, कुछ उदाहरण लेते हैं**।**

ऐसा समय याद करने का प्रयास कीजिये कि जब आपने लंबे समय से चली आ रही किसी समस्या का समाधान ढूंढ लिया हो और जैसे ही आपको समस्या का समाधान मिला तो क्या उस समय आप में सुख का भाव आया? जब आपको वह क्षण याद आता है, तो क्या अब भी आप में वही सुख का भाव आता है? यह स्पष्ट है कि जब हमारे विचारों में संगीत होता है तो हम सुखी होते हैं, यदि यह संगीत बाधित हो जाये, तो हम असहज महसूस करते हैं, और जब हमारे विचारों में अंतर्विरोध होता है तो, हम दुखी होते है| इस प्रकार हम सभी अपनी स्थिति की जाँच करके देख सकते हैं कि हम स्वयं में संगीत में हैं अर्थात् सुखी हैं या इसके विपरीत? इसे स्वयं में जाँचने का प्रयत्न करें।

आइये, अब कुछ ऐसी परिस्थितियों की जाँच करके देखते हैं जिसमें आप बाहरी दुनिया के साथ सहभागिता कर रहे हों। यहाँ पर आपके अलावा अन्य व्यक्ति भी उपस्थित हैं। आप में अपने परिवार के सदस्यों के प्रति स्नेह का भाव है और आपके परिवार के सदस्यों में भी आपके प्रति स्नेह का भाव है अर्थात् परिवार में व्यवस्था है। इस परिस्थिति में आप में सुख का भाव होगा, ऐसा है या नहीं? इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति शासन या मनमानी करने का प्रयास कर रहा है, तो परिवार में अंतर्विरोध या अव्यवस्था होती है और आप में इसके प्रति असहजता

का भाव होता है। शासन और मनमानी की इस परिस्थिति से आप दूर जाना चाहते हैं, किन्तु आपको यह स्पष्ट नहीं रहता कि इसके लिये करें क्या। इस तरह की परिस्थिति में आप दुखी रहते हैं। आप स्वयं में इसे जाँच कर देखें।

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से यह देख सकते हैं कि जब हम स्वयं में संगीत/व्यवस्था की स्थिति में होते हैं तो सुखी होते हैं, क्योंकि यह स्थिति हमें सहज स्वीकार्य है। जब हम बाहरी दुनिया के साथ जी रहे होते हैं और उसमें व्यवस्था होती है तो ऐसी स्थिति में भी हम सुखी महसूस करते हैं क्योंकि ऐसी स्थिति में रहना भी हमें सहज स्वीकार्य है। अतः सहज स्वीकार्यता की स्थिति में जीना ही सुख है।

अब यह जाँच कर देखते हैं कि जब आप संगीत या व्यवस्था की स्थिति या परिस्थिति में जीते हुये सुखी होते हैं, तो आप इसे निरंतर बनायें रखना चाहते हैं या नहीं? उदाहरण के लिये एक परिस्थिति पर विचार करते हैं कि, आप अपने एक ऐसे प्रिय मित्र से मिलते हैं, जिनके लिये आप में सम्मान का भाव है। और वह भी आपके प्रति ऐसा ही सम्मान का भाव रखता है। जब आप उनसे मिलते हैं तो सम्मान के भाव को व्यक्त करने के लिये हाथ मिलाते हैं। परंतु अब यह प्रश्न उठता है कि क्या आप सम्मान के भाव की निरंतरता बनायें रखना चाहते हैं? यह देखना तो बहुत ही स्वाभाविक है कि हम सम्मान के भाव को निरंतर ही बनायें रखना चाहते हैं। निःसंदेह हमारा तात्पर्य उस परिस्थिति की निरंतरता से नहीं है, अर्थात् निश्चित रूप से आप बहुत लंबे समय तक हाथ मिलाये हुये नहीं रह सकते हैं। अतः यहाँ पर बात सम्मान के भाव की हो रही है जिसमें हम निरंतरता चाहते हैं, हाथ मिलाना तो सम्मान के भाव की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसमें निरंतरता हो ही नहीं सकती। अर्थात् हमारी चाहना, भाव की निरंतरता और संगीत या व्यवस्था की निरंतरता की है।

और यह भी देख सकते हैं कि हम इस संगीत या व्यवस्था की स्थिति में न केवल निरंतरता चाहते हैं, बल्कि इसे दूसरों के साथ साझा भी करना चाहते हैं और जहाँ तक संभव हो सके इसका प्रसार भी चाहते हैं। उदाहरण के रूप में जब परिवार में किसी के साथ स्नेह का भाव होता है, तो इससे स्वयं में संगीत या व्यवस्था की स्थिति बनी रहती है और हम इसमें निरंतरता चाहते हैं, हम परिवार के सभी सदस्यों के साथ ऐसा ही चाहते हैं। अंततः संगीत या व्यवस्था के इस भाव को हम प्रत्येक व्यक्ति के साथ सुनिश्चित करना चाहते हैं।

यह देखना भी स्वाभाविक है कि हम उस स्थिति या परिस्थिति में निरंतरता नहीं चाहते हैं जिसमें अंतर्विरोध या अव्यवस्था हो। उदाहरण के लिये यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में सोच रहे हैं जिसके साथ आपका विवाद हुआ हो और आप उस व्यक्ति के बारे में विरोध का भाव रखते हों, तो जितने समय तक आप उस व्यक्ति के बारे में सोचते हैं, आपके अंदर असहजता का भाव होता है, क्या ऐसा नहीं है? इसी प्रकार यदि आपका अपने परिवार के किसी सदस्य के साथ किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ हो और आप यह नहीं जानते कि इसे कैसे सुलझाया जाये तो आप असहज होते हैं, और आप इस स्थिति से बाहर निकलना चाहते हैं।

ऐसी भी कई स्थितियाँ होती हैं, जहाँ स्वयं में अन्तर्विरोध होता है, या हमारे और बाहरी दुनिया के बीच अंतर्विरोध होता है। हम ऐसी स्थितियों या परिस्थितियों की निरंतरता नहीं चाहते हैं, जितना जल्दी हो सके हम इन स्थितियों या परिस्थितियों से बाहर निकलना चाहते हैं। यदि हम उन स्थितियों या परिस्थितियों से बाहर नहीं आ पाते हैं तो हम दुख की स्थिति में होते हैं। अतः अब हम दुख के बारे में ये कह सकते हैं कि:

"ऐसी स्थिति या परिस्थिति जिसमें मैं जीता हूँ यदि उसमें अन्तर्विरोध या अव्यवस्था है, तो उस स्थिति या परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य नहीं होता है"।

"ऐसी स्थिति या परिस्थिति में रहने के लिये बाध्य होना, जो मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, यही दुख है"।

अर्थात् अन्तर्विरोध या अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।

अतः अन्तर्विरोध या अव्यवस्था ही दुख है।

दुःख = अव्यवस्था।

आइये सुख और दुख की परिभाषा को समझने के लिये एक उदाहरण लेते हैं जैसे कि आप अपने किसी घनिष्ठ मित्र के साथ एक बगीचे में बैठे हैं। इस मित्र के लिये आपमें स्नेह का भाव है और आप कई घंटों तक बिना बातचीत किये हुये बैठे रहते हैं, तो क्या आप स्वयं में सुख की स्थिति में होंगे या दुख की स्थिति में? इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण लेते है आप कक्षा में बैठे है| किसी छात्र के प्रति आप में द्वेष का भाव है और शिक्षक उस छात्र की प्रशंसा करता है क्या आप स्वयं में सुख की स्थिति में होंगे या दुख की स्थिति में? निःसंदेह पहले

उदाहरण में आप सुख की स्थिति में होंगे, क्योंकि आप में स्नेह का भाव है जो आपको सहज स्वीकार्य है, जबकि दूसरे उदाहरण में आप दुख की स्थिति में होंगे, क्योंकि आप में विरोध का भाव है जो आपको सहज स्वीकार्य नहीं है।

निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम
(Programme for Continuity of Happiness)

अब सुख की निरंतरता के लिये हमें अपने जीने के पूरे फैलाव को देखना होगा। जीने के हर स्तर पर व्यवस्था को सुनिश्चित करना ही सुख की निरंतरता की तरफ गति है। आइये जाँच कर देखें कि मानव के जीने का फैलाव क्या है?

स्वयं में जीने के साथ-साथ हम कई स्तरों पर जीते हैं, जैसे दूसरे व्यक्तियों के साथ परिवार में, समाज में, और प्रकृति के साथ भी हमारा जुड़ाव है ही। भले ही हम इन सब पर ध्यान दें या न दें, हमारा जीना निम्नलिखित चार स्तरों पर होता ही है:

1. व्यक्ति के रूप में
2. परिवार के एक सदस्य के रूप में
3. समाज के एक सदस्य के रूप में
4. प्रकृति /अस्तित्व की एक इकाई के रूप में

आइये हम जीने के इन विभिन्न स्तरों को समझते हैं:

मानव के रूप में जीना (As an Individual Human Being): हम सभी ज्यादातर अपने आप में ही व्यस्त रहते हैं यानि कि अपनी इच्छा, विचार, मान्यता, कल्पनाशीलता, पुरानी यादों, भविष्य की योजनाओं इत्यादि में। जिसमें दूसरा कोई और सम्मिलित नहीं होता।

परिवार के एक सदस्य के रूप में (As a Member of a Family): हम एक परिवार में जन्म लेते हैं, परिवार में हमारा पोषण और शिक्षा होती है। हम परिवार में अपने भाई-बहन, माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची, भतीजे-भतीजियों और अन्य बहुत से व्यक्तियों के साथ रहते हैं। परिवार में सभी सदस्य एक दूसरे के साथ उभय सुख को सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं, और भौतिक आवश्यकताओं का ध्यान भी रखते हैं। परिवार में बच्चे, बुजुर्ग एवं अन्य सदस्य एक दूसरे की देखभाल भी करते हैं।

समाज के एक सदस्य के रूप में (As a Member of The Society): हमारा परिवार दूसरे अन्य परिवारों के साथ, एक बड़े समूह का हिस्सा होता है। हम अपने परिवार से बाहर भी बहुत से व्यक्तियों के साथ सहभागिता करते हैं एवं उनके संपर्क में रहते हैं। समाज में हम भोजन, वस्त्र, आवास इत्यादि का उत्पादन व विनिमय करते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, उत्पादन तथा आवास आदि की व्यवस्था समाज में ही होती है। हमारे गाँव, कस्बे और शहर इसी बड़े समाज का हिस्सा हैं।

प्रकृति/अस्तित्व की एक इकाई के रूप में (As a Unit in Nature/Existence): वायु, जल, मृदा, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी जिन्हें हम प्रकृति कहते हैं, यह एक ऐसा व्यवस्थित पारिस्थितिक-तंत्र (eco-system) है, जो परस्पर जुड़ा (interconnected) हुआ है और परस्पर निर्भर (interdependent) है, हम भी उसके एक भाग हैं। हम श्वसन क्रिया में ऑक्सीजन के रूप में बहुत सी वायु लेते हैं और कार्बन-डाइऑक्साइड युक्त वायु छोड़ते हैं, जिसे पौधे ग्रहण करते हैं। हमारी पृथ्वी, सौर-मंडल के कई ग्रहों में से एक है। हमारी आकाश-गंगा भी बहुत सी आकाश-गंगाओं में से एक है और यह सभी एक सर्वव्यापी शून्य (space) में हैं। यहाँ पर जो कुछ भी है वह व्यापक और प्रकृति की एक-एक इकाई के रूप में है, उसे ही अस्तित्व कहा गया है। मानव के रूप में हम भी इसी प्रकृति/अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई एक इकाई ही हैं।

अतः हमारे जीने का फैलाव इन सभी स्तरों पर है। निःसंदेह हम इसके बारे में जागरूक हो भी सकते हैं और नहीं भी। जाँच कर देखिये कि क्या आप इन चारों स्तरों पर जी रहे हैं?

क्या आप इन चारों स्तरों की व्यवस्था को समझते हैं ?

हमने यह अध्ययन किया है कि संगीत या व्यवस्था में जीना ही सुख है। और हमने यह भी देखा है कि हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है। अब हम यह भी देख सकते हैं कि सुख की निरंतरता के लिये सभी स्तरों पर व्यवस्था को सुनिश्चित करना आवश्यक है।
निरंतर सुख को सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम यह है:

व्यवस्था को समझना

और

व्यवस्था में जीना

अपने जीने के सभी स्तरों पर

- **व्यक्तिगत) मानव (के स्तर पर**
- **परिवार के स्तर पर**
- **समाज के स्तर पर**
- **प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर**

व्यवस्था को समझने का विस्तार, मानव में व्यवस्था को समझने से लेकर, परिवार में व्यवस्था, समाज में व्यवस्था और प्रकृति /अस्तित्व में व्यवस्था को समझने तक फैली हुई है। जीने का फैलाव भी इन्हीं चारों स्तरों पर ही है अर्थात् व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था में जीने से लेकर, परिवार में व्यवस्था, समाज में व्यवस्था और प्रकृति /अस्तित्व में व्यवस्था में जीने तक। क्या आप यह देख पाते हैं?
व्यक्तिगत स्तर पर जीने में क्या यह आवश्यक है कि स्वयं में संगीत या व्यवस्था सुनिश्चित हो? इसी प्रकार से क्या यह आवश्यक है कि परिवार में, व्यवस्था में जीना सुनिश्चित हो? समाज में व्यवस्था में जीना सुनिश्चित हो? और प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था में जीना सुनिश्चित हो?
यदि हमारे जीने में कहीं भी, किसी भी समय अन्तर्विरोध या अव्यवस्था हो तो, यह हमें दुख की तरफ ही ले जायेगा, यह हमारी सुख की निरंतरता को बाधित कर देगा। देखने में तो ऐसा ही लगता है लेकिन आप स्वयं में इसे जाँच कर देखना जारी रखें।
इस पुस्तक के माध्यम से हमारा प्रयास स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से सभी चार स्तरों पर व्यवस्था को समझने में आपका सहयोग करना है। सभी स्तरों की व्यवस्था के बारे में प्रस्ताव दिया जायेगा। अध्याय 5 से 7 में मानव में व्यवस्था के बारे में प्रस्ताव दिये गये हैं। अध्याय-8 में परिवार में व्यवस्था का प्रस्ताव दिया गया है। अध्याय-9 में समाज में व्यवस्था और अंततः अध्याय 10 और 11 में प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था के बारे में चर्चा प्रस्तावित है जो आगे की कक्षाओं में किया जायेगा|
हमें विश्वास है कि आप अपने हिस्से का कार्य करेंगे अर्थात् प्रत्येक प्रस्ताव को अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचेंगे और फिर इसे जीने में प्रयोग करके सत्यापित भी करेंगे। यदि आप ऐसा कर पाते हैं तो इससे स्वयं में विकास की ओर गति की शुरुआत होगी।

समृद्धि के अर्थ को समझना

*(*Exploring the Meaning of Prosperity*)*

समृद्धि, जड़ वस्तुओं (material things) से संबंधित है, जिसकी चर्चा हम सुविधा के रूप में करते आये हैं। यदि आप उन वस्तुओं की सूची बनायें जिनका आप उपयोग करते रहे हैं, तो संभवतः यह बहुत लंबी सूची बनेगी। सूची में, हम जो भोजन करते हैं, जो वस्त्र पहनते हैं, सुरक्षा के लिये आवास, मोबाइल फोन, वाहन और अन्य बहुत सी वस्तुयें शामिल होंगी। इन वस्तुओं की आवश्यकता होती ही है। यदि हमारे पास आवश्यकता से अधिक मात्रा में सुविधायें हों और हम इसे देख पायें तो यह समृद्धि का भाव देता है।
समृद्धि का जुड़ाव सुविधा की अपेक्षा हमारे भावों से अधिक है। प्रस्ताव यह है:
आवश्यकता से अधिक सुविधाओं के उत्पादन या उपलब्धता का भाव समृद्धि है।

समृद्धि के लिये दो मूलभूत आवश्यकतायें हैं:

1. सुविधा की आवश्यकता की सही-सही पहचान।
2. आवश्यकता से अधिक सुविधा की उपलब्धता या उत्पादन को सुनिश्चित करना।

क्या आपको लगता है कि सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव है? जैसे भोजन एक आवश्यकता है, कितनी मात्रा में इसकी आवश्यकता है क्या आप इसे पहचान सकते हैं? या आपको कितने वस्त्र चाहिये? और इसी प्रकार से अन्य कितनी सुविधाओं की आवश्यकता है? इस पर विचार कीजिये। इस बिंदु पर स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि जब हम अपनी आवश्यकताओं की सही-सही पहचान करने के योग्य हो पाते हैं तो स्वयं में समृद्धि का भाव आता है। सही-समझ के द्वारा आवश्यकता की सही-सही पहचान एवं कितनी मात्रा में इसकी आवश्यकता है इसे जाना जा सकता है। सही पहचान के बिना समृद्धि का भाव सुनिश्चित नहीं हो सकता, भले ही हमने कितनी भी सुविधायें संग्रहित कर रखी हों या ये हमें उपलब्ध हों या हम ऐसा कर पाने के योग्य हों।

केवल सुविधा की आवश्यकता का ठीक-ठीक आंकलन करना ही पर्याप्त नहीं है। हमें जितनी मात्रा में सुविधा चाहिये, उससे अधिक का उत्पादन या उपलब्धता सुनिश्चित करने की भी आवश्यकता है। इसके लिये कौशल, तकनीकी और उत्पादन की आवश्यकता है। सही पहचान और उत्पादन के द्वारा हमारे पास आवश्यकता से अधिक सुविधायें उपलब्ध हो जायेंगी। इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि हममें आवश्यकता से अधिक सुविधा उपलब्ध होने का भाव होगा।

आइये एक उदाहरण लेते हैं, जब हम अपने शरीर के पोषण के लिये भोजन की आवश्यकता को देखते हैं, तो हम यह जान पाते हैं कि भोजन निश्चित मात्रा में ही आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति असीमित मात्रा में नहीं खा सकता क्या आप यह देख पाते हैं? एक बार जब हम भोजन और इसकी आवश्यक मात्रा की सही-सही पहचान करने के योग्य हो जाते हैं तो हम यह भी जाँच सकते हैं कि क्या हमारे पास पहले से ही आवश्यकता से अधिक भोजन है। यदि हमारे पास आवश्यकता से अधिक भोजन हो या हम आवश्यकता से अधिक भोजन का उत्पादन सुनिश्चित कर सकते हों तो भोजन के संदर्भ में हम में समृद्धि का भाव होगा। और यदि हमारे पास भोजन की उपलब्धता न हो, और न ही आवश्यक मात्रा में भोजन का उत्पादन करने की योग्यता हो, तो हममें दरिद्रता का भाव होगा। जाँच कर देखें कि जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, आप इसमें समृद्ध महसूस कर रहे हैं या दरिद्र? इसी प्रकार आप वस्त्रों, मोबाइल फ़ोन और अन्य वस्तुओं के बारे में भी जाँच कर सकते हैं।

जब आप में समृद्धि का भाव होता है तो आप स्वाभाविक रूप से दूसरों के पोषण और उन्नति के बारे में ही सोचते हैं, क्या ऐसा नहीं है? दूसरी तरफ यदि आप में दरिद्रता का भाव हो तो आप दूसरों के शोषण और उन्हें दरिद्र बनाने के बारे में ही सोचते हैं।

प्रायः यह देखा गया है कि सुविधाओं के संग्रह और समृद्धि के भाव में एक भ्रम की स्थिति बनी रहती है। सामान्य तौर पर यह मान्यता है कि आप जितने अधिक धनी हैं उतने ही समृद्ध हैं, और जितना अधिक से अधिक आप संग्रह करेंगे उतने ही और अधिक समृद्ध हो जायेंगे। इस प्रकार की मान्यता के साथ हम समृद्धि को देखने लगते हैं तथा इसे लाभ (profit) और सुविधा संग्रह (accumulation) के साथ जोड़ लेते हैं। ऐसा सभी जगह घटित हो रहा है। समाज में आज-कल सुविधाओं का संग्रह ही मुख्य लक्ष्य हो गया है। विशेषकर इसका मुख्य केंद्र-बिंदु धन-संग्रह (accumulating money) करने के अर्थ में है।

आज विश्व की अधिकांश संपदा या धन कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के पास ही है। फिर भी ये व्यक्ति और अधिक संग्रह करने के लिये, दूसरे व्यक्तियों का और शेष प्रकृति का शोषण करते हुये देखें जा सकते हैं। कितना चाहिये- इसकी स्पष्टता के बिना असीमित मात्रा में सुविधा संग्रह के लिये प्रयास किया जा रहा है और इसके लिये कोई भी तरीका अपनाया जा रहा है। शुरुआत तो वैधानिक प्रयासों (legal means) से होती है किंतु धीरे-धीरे यह अवैधानिक तरीकों (illegal means) तक पहुँच जाता है। ऐसा केवल इसलिये हो रहा है क्योंकि सही-सही आवश्यकता की पहचान नहीं हो पा रही है और स्वयं में दरिद्रता का भाव है।

अपनी आवश्यकताओं की सूची बनाइए।

जाँचने का प्रयत्न करें, कि आप में दरिद्रता का भाव है या समृद्धि का।

मानव में व्यवस्था पर चर्चा करने के पश्चात, समृद्धि के बारे में हम आगे के अध्यायों में और भी अध्ययन करेंगे।

सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि
(A Look at the Prevailing Notions of Happiness)

सुख के बारे में अब तक के किये गये विचार विमर्शों के प्रकाश में, आइये अब सुख की कुछ प्रचलित मान्यताओं पर भी एक दृष्टि डालते हैं। इनमें से एक मान्यता यह है कि सुख की निरंतरता सुविधा के भोग से ही संभव है। लोग अपनी मनपसंद संवेदनाओं का स्वाद चखने के लिये किसी भी स्तर तक चले जाते हैं। संवेदनायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या गंध किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

सुख की निरंतरता, सुविधाओं से
(Continuity of Happiness from Physical Facility)

क्या सुख की निरंतरता को सुविधा से मिलने वाली अनुकूल संवेदना के भोग से सुनिश्चित किया जाना संभव है?
भौतिक वस्तु → 'शरीर' के साथ संपर्क → संवेदना('शरीर' के द्वारा) → 'स्वयं' के द्वारा आस्वादन (स्वाद लेना)

- यदि स्वाद अनुकूल है → सुख(सामयिक)
- यदि स्वाद अनुकूल नहीं है → दुख(सामयिक)

आप संवेदना से जो थोड़ा बहुत सुख पाते भी हैं, वह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये होता है, और यह निम्नलिखित स्थितियों से होकर गुजरता है:
रुचिकर-आवश्यक → रुचिकर-अनावश्यक → अरुचिकर-अनावश्यक → असहनीय (Tasty-Necessary → Tasty-Unnecessary → Tasteless-Unnecessary → Intolerable)

सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से
(Continuity of Happiness from Favorable Feeling from Others)

दूसरी प्रचलित मान्यता यह है कि हम दूसरों से मिलने वाले अनुकूल भाव के माध्यम से सुखी हो सकते हैं। जब दूसरे लोग हम पर ध्यान देते हैं, हमारी प्रशंसा करते हैं, हमारा सम्मान करते हैं, हमारी देखभाल करते हैं या हमारे अनुकूल भाव को व्यक्त करते हैं तो हम सुखी महसूस करते हैं।
क्या दूसरों से मिलने वाले अनुकूल भाव से होने वाले सुख की निरंतरता संभव हो सकती है? आइये इस बात का अध्ययन करते हैं:
दूसरा मानव → भाव की अभिव्यक्ति → प्राप्त होने वाले भाव का 'स्वयं' के द्वारा मूल्यांकन

- यदि भाव अनुकूल है → सुख(सामयिक)
- यदि भाव अनुकूल नहीं है → दुख(सामयिक)

जब कोई व्यक्ति सही भाव व्यक्त कर रहा होता है, जैसे कि सम्मान का, तो यह आपको सहज स्वीकार्य होता है। आप इस तरह का भाव पाना पसंद करते हैं जिससे, आप सुखी होते हैं। निःसंदेह यदि दूसरा व्यक्ति आपको ऐसा भाव व्यक्त कर रहा है जो आपको सहज स्वीकार्य नहीं है, अर्थात् अपमान का भाव तो आप दुःखी महसूस करते हैं।
निष्कर्ष यह है कि यदि आप किसी प्रकार का सुख, दूसरे व्यक्तियों के ध्यान या भाव के द्वारा प्राप्त करते हैं, तो यह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये रहता है। इसलिये पहले तो यह कि दूसरे से मिलने वाले भाव से निरंतर सुख संभव नहीं है, और दूसरा कि जो भी क्षणिक सुख आपने दूसरे की तारीफ से प्राप्त किया है, उसकी निर्भरता भी आप पर नहीं है अर्थात् आप भाव का निर्धारण नहीं कर रहे हैं, बल्कि यह दूसरे व्यक्ति के द्वारा निर्धारित किया जा रहा है। इसमें कोई भी निश्चितता नहीं है, कि दोबारा मिलते समय वह आप पर फिर से ध्यान देगा या नहीं।

सुख, आवेश के जैसा नहीं है

(Happiness is Not The Same as Excitement)

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि हमें जो भाव प्राप्त हुआ है, वह सुख है या कुछ और:

- क्या जो हमें अनुकूल संवेदना से मिला, वह सुख है?
- क्या जो हमें दूसरों के अनुकूल भाव से मिला, वह सुख है?

यदि ध्यान से देखें तो इन दोनों ही स्थितियों में हमें एक प्रकार का क्षणिक सुख ही मिला है, जिसे हम आवेश कह सकते हैं। आवेश एवं सुख (स्वयं के भीतर संगीत की स्थिति) के बीच एक भ्रम की स्थिति है। वास्तविकता यह है कि आवेश बहुत अल्पकालिक (कम समय के लिए) होता है, यह सतत नहीं रहता , जबकि सुख अर्थात् स्वयं के अंदर संगीत की स्थिति निरंतर एवं सतत हो सकती है।

सुख के अन्य प्रचलित अभिप्राय

(Other Prevailing Notions About Happiness)

सुख के बारे में अनेक प्रश्न, मान्यतायें, और भ्रम हैं। *यदि मैं निरंतर सुखी हो जाऊँगा तो मैं सुख से ऊब जाऊँगा" निःसंदेह कोई व्यक्ति अनुकूल संवेदना से उत्पन्न हुई आवेश को ही यदि सुख मान लेता है, तो इससे अवश्य ही ऊब जायेगा। लेकिन यदि उसने यह समझ लिया कि संगीत में होना ही सुख है तो वह मूल्यांकन कर पायेगा कि यह मान्यता सही नहीं है।*

सुख के लिये किये गये विभिन्न प्रयासों का मूल्यांकन

(Test on Various efforts for the Happiness)

बाहर से सुख प्राप्त करने की विधियों से यह आवश्यक नहीं कि स्वयं में संगीत(सुख) सुनिश्चित हो सके। ऐसे प्रयासों में स्वयं में होने वाला अन्तर्विरोध बना रहता है, जिससे झुंझलाहट बढ़ती रहती है। और जब दुख लगातार बना रहता है, तो हम इससे बचने के लिये विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करते रहते हैं जैसे धूम्रपान, सिगरेट पीना। । इतना ही नहीं यह एक लत का रूप भी ले लेती है। हम कई नामी-गिरामी लोगों को भी इस प्रकार के चक्कर में फंसा हुआ देख सकते हैं।

सुख के लिये कार्यक्रम

(The Program for Happiness)

हमने देखा है कि स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है। और हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है- मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व। सुख के लिये अब कार्यक्रम यह हैं कि हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझें और उसके अनुसार सभी चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीने को सुनिश्चित करने का प्रयास करें। इसे चित्र. 4-4. और 4-5. में दिखाया गया है।

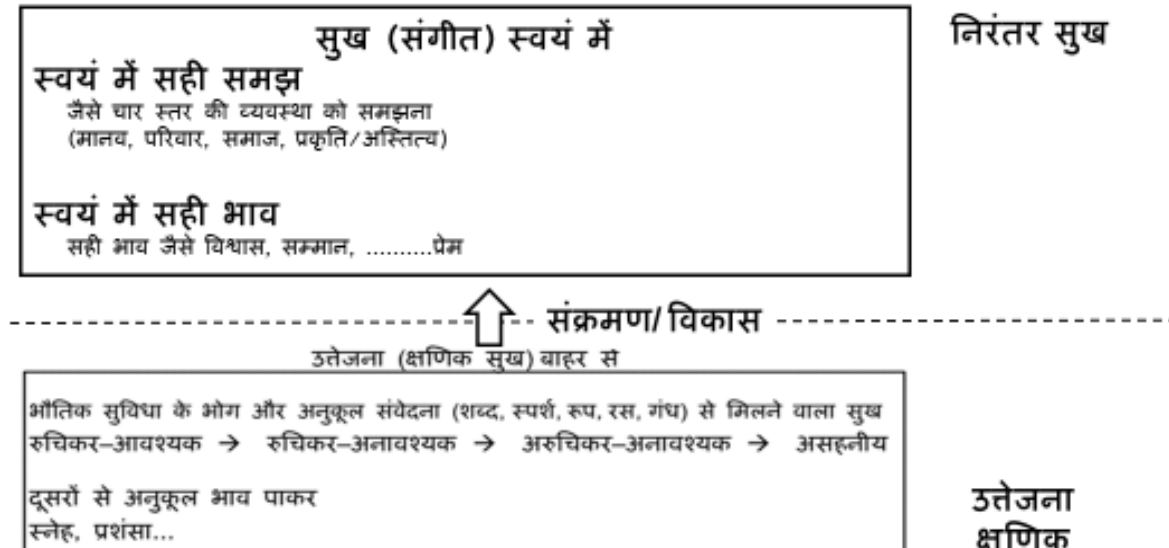

हमने पहले यह प्रस्ताव दिया था कि मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता हैं, और इनकी पूर्ति सही-समझ, संबंध और सुविधा के द्वारा इसी क्रम में होती है।
मानव, परिवार, समाज और प्रकृति /अस्तित्व में व्यवस्था की स्पष्टता आवश्यक है और हमारे जीने के इस समग्र फैलाव में व्यवस्था की स्पष्टता के लिये सही-समझ आवश्यक है। यदि हम इन सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझ पाते हैं, तो सभी स्तरों में व्यवस्था पूर्वक जीने की संभावना बन पाती है।

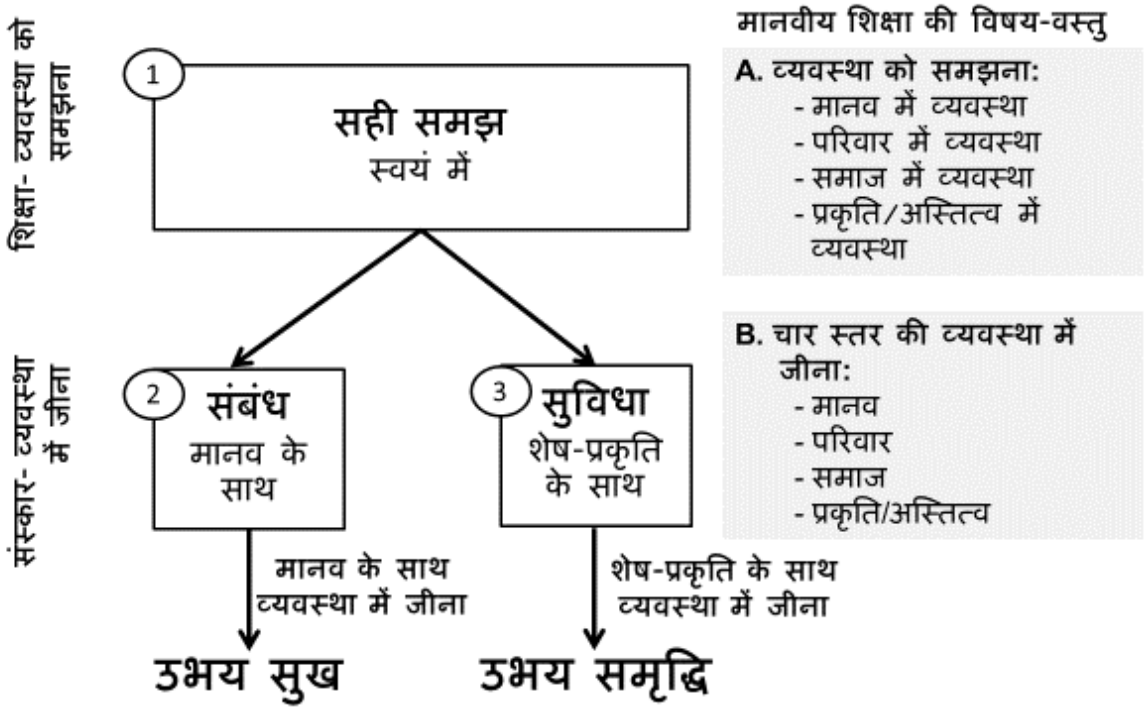

चित्र. 4-5. मानवीय शिक्षा की विषय-वस्तु

अध्याय-3 में, हमने इसी बात को समझा था जिसे चित्र. 4-5. में दर्शाया गया है। व्यवस्था को समझना ही स्वयं में सही-समझ का होना है। व्यवस्था में जीने के दो भाग हैं, पहला मानव के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय सुख होता है और दूसरा शेष प्रकृति के साथ व्यवस्था में जीना, जिससे उभय समृद्धि होती है। सुविधा शेष प्रकृति से ही आती है और जब हम परस्पर संवर्धन की प्रक्रिया के द्वारा पर्याप्त सुविधा को सुनिश्चित कर पाते हैं, तो उभय समृद्धि होती है।

अब हम इसे सूक्ष्मता से इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये कार्यक्रम इस प्रकार है:

व्यवस्था को समझना

और

व्यवस्था में जीना

1. **स्वयं में**
2. **परिवार में**
3. **समाज में**
4. **प्रकृति/ अस्तित्व में**

कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष

(Natural Outcome of The Program)

जैसा कि हमने सुख और समृद्धि को अपनी मूल चाहना के रूप में पहचाना है, अब हम इसको पूरा करने के लिये सहज रूप से निम्नलिखित प्रयास करेंगे:-

1. व्यवस्था को समझना
2. व्यवस्था में जीना

व्यवस्था को समझने का पहला स्वाभाविक निष्कर्ष तो यह होगा कि स्वयं में संगीत, अर्थात् स्वयं में व्यवस्था की स्थिति हो पायेगी। जब हम स्वयं में संगीत की स्थिति में होते हैं, तो हम सहज रूप से इस संगीत को अपनी प्रत्येक गतिविधि के माध्यम से दूसरे व्यक्तियों के साथ साझा करने का प्रयत्न करते हैं- छोटे से छोटे या बड़े से बड़े प्रयास के रूप में, जो भी हम कर सकते हैं। याद कीजिये अध्याय-1 में हमने चर्चा की थी कि मानव का मूल्य, प्रकृति/अस्तित्व में उसकी भागीदारी है, और इस भागीदारी के निर्वाह से वह सुखी होता है। यह हमारी स्वाभाविक भागीदारी है, न कि जबरन लादी हुई। अब क्या हम यह देख पाते हैं कि व्यवस्था में भागीदारी ही सुख है:

- स्वयं में हमारी भागीदारी होगी- मानव के रूप में व्यवस्था में होना।
- परिवार में हमारी भागीदारी होगी- परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करना।
- समाज में हमारी भागीदारी होगी- समाज में व्यवस्था के लिये प्रयास करना।
- प्रकृति/अस्तित्व में हमारी भागीदारी होगी- प्रकृति/अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ व्यवस्था को बनाये रखना।

इसके लिये व्यवस्था को समझना आवश्यक है। इसी के लिये प्रस्ताव अध्याय-5 से लेकर अध्याय-11 तक में दिया गया है।

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

- सुख एक निश्चित वास्तविकता है, जिसे परिभाषित कर सकते हैं और समझ भी सकते हैं।
- ऐसी स्थिति या परिस्थिति जिसमें संगीत या व्यवस्था है, उस स्थिति या परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य होता है। इस संगीत या व्यवस्था की स्थिति में जीना ही सुख है।
- ऐसी स्थिति या परिस्थिति जिसमें अन्तर्विरोध या अव्यवस्था हो, उस स्थिति या परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य नहीं होता है। इस अन्तर्विरोध या अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।
- हम व्यक्ति के रूप में, परिवार के एक सदस्य के रूप में, समाज के एक सदस्य के रूप में और प्रकृति /अस्तित्व की एक इकाई के रूप में जीते हैं। यह हमारे जीने का सम्पूर्ण फैलाव है।
- निरंतर सुख को सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम इस प्रकार है:

व्यवस्था को समझना

और

व्यवस्था में जीना

सभी स्तरों पर

1. **मानव के स्तर पर**
2. **परिवार के स्तर पर**
3. **समाज के स्तर पर**
4. **प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर**

- आवश्यकता से अधिक सुविधा का उपलब्ध होना या उत्पादन होने का भाव ही समृद्धि है।
- समृद्धि के लिये निम्न दोनों आवश्यक हैं-
  - ❖ भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता की पहचान उनकी सही मात्रा के साथ और
  - ❖ आवश्यकता से अधिक सुविधा की उपलब्धता या उत्पादन को सुनिश्चित करना।

समृद्ध व्यक्ति सदुपयोग और दूसरे व्यक्तियों के पोषण की सोचता है, जबकि दरिद्र व्यक्ति संग्रह और दूसरे व्यक्तियों के शोषण की ही सोचता है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिए गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. सुख को परिभाषित कीजिये, जैसा कि इस अध्याय में प्रस्तावित किया गया है। और अपनी दिनचर्या के उदाहरणों के द्वारा अपने उत्तर का समर्थन भी कीजिये।
2. इस अध्याय में जीने के चारों स्तरों को प्रस्तावित किया गया है, ये चारों स्तर कौन-कौन से हैं? आपका जीना इन चारों स्तरों पर है, क्या आप ऐसा देख पा रहे हैं? इसे अपने दिनचर्या के उदाहरणों के द्वारा समझाइये।
3. सुख की निरंतरता के लिये कार्यक्रम की व्याख्या कीजिये।
4. समृद्धि को परिभाषित कीजिये जैसा कि इस अध्याय में प्रस्तावित है। अपने जीने के दो उदाहरणों के द्वारा अपने उत्तर का समर्थन भी कीजिये।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(दी गई विषय-वस्तु को अपने जीवन से जोड़ने के लिये, कम से कम वैचारिक स्तर पर, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में अपने मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ अवश्य करें।)

1. जैसा कि बताया गया है जब आप किसी सुविधा का उपभोग करते हैं तो निम्नलिखित क्रम घटित होता है:
   रुचिकर-आवश्यक → रुचिकर-अनावश्यक → अरुचिकर–अनावश्यक → असहनीय।
   इस क्रम को, पाँच प्रकार की सुविधाओं के लिये परीक्षण करके देखें, जैसे कि स्वादिष्ट भोजन, टेलीविजन के कार्यक्रम, आपका मनपसंद संगीत इत्यादि, और अपना निष्कर्ष भी लिखें। सुख की निरंतरता के लिये अन्य क्या विकल्प हो सकते हैं, यह भी बतायें?

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निःसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, सोशल मीडिया इत्यादि

के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!
संगीत की स्थिति में होना ही सुख है। अन्तर्विरोध/अव्यवस्था में जीने के लिये बाध्य होना ही दुख है।

1. मेरी स्थिति- आवेश या सुख के लिये प्रयास करने की है?
2. समाज की स्थिति- आवेश और दुःख से भागने के लिये या सुख के लिये प्रयास करने की है?
3. अंततः मैं तो सुखी होना चाहता हूँ, चाहें मेरा व्यवसाय कुछ भी हो।

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 5: मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना
Understanding the Human Being as Co-existence of the Self and the Body

पुनरावृत्ति

(Recap)

पिछले अध्यायों में हमने मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता के बारे में चर्चा की और यह

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞ मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

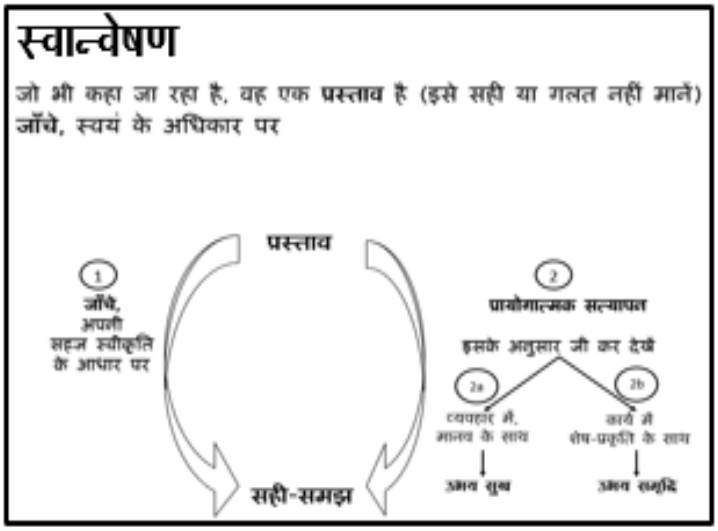

पाया कि व्यवस्था में जीना सुख है, और निरंतर सुख के लिये सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज एवं प्रकृति/अस्तित्व पर व्यवस्था में जीना इसका कार्यक्रम है। व्यवस्था में जीने के लिये या निरंतर सुख के लिये इन सभी स्तरों पर व्यवस्था की समझ आवश्यक है।
जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, इन सभी स्तरों पर व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा, एक-एक करके इसका अध्ययन करेंगे। जिसमें आपके समक्ष व्यवस्था के प्रत्येक स्तर के बारे में प्रस्ताव रखें जायेंगे। आपसे निवेदन है कि आप एक-एक करके इन्हें अपने अधिकार पर जाँचे। पहले तो आप इन्हें अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचे और फिर इनको जीने में सत्यापित अर्थात् प्रयोगात्मक-सत्यापन भी करें; यह देखते हुये कि इन प्रस्तावों के अनुसार जीने से आप उभय सुख और उभय समृद्धि की तरफ बढ़ रहें हैं, या नहीं। हमारी भूमिका तो केवल इन प्रस्तावों की तरफ आपका ध्यानाकर्षण कराना है और स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया आप में शुरू हो सके इसमें सहयोग करना है। इस पूरी प्रक्रिया में मुख्य उत्तरदायित्व तो आपका ही है।
इस अध्याय में हम मानव में व्यवस्था का अध्ययन शुरू करेंगे।

'स्वयं(मैं)' और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव
(Human Being as Co-existence of the Self and the Body)

जब आपने 'मानव' शब्द को पढ़ा तो आपके ध्यान में क्या आया? हो सकता है कि आप मानव-शरीर के जिस रूप और संरचना से परिचित हैं उसी की कल्पना कर रहे हों? या आपने यह भी सोचा कि इस मानव के बारे में जो कल्पना कर रहा है वह कौन है? और कौन इस मानव-शरीर के रूप और संरचना के महत्व को समझने का प्रयास कर रहा है? क्या मानव केवल शरीर है या इससे अधिक भी कुछ है? यहाँ पर हम यही अध्ययन करना चाहते हैं कि वास्तव में मानव क्या है?
प्रस्ताव यह है कि **मानव, 'स्वयं(मैं)' और शरीर का सह-अस्तित्व है।**
आइये, अब इसे स्वयं में, देखने का प्रयास करते हैं (चित्र. 5-1. का संदर्भ लें)।

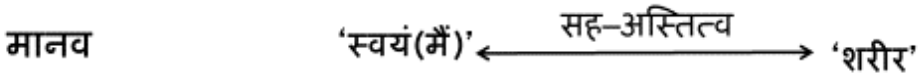

चित्र. 5-1. मानव

इस पुस्तक में क्या लिखा हुआ है, इसको समझने में रुचि कौन ले रहा है? शब्दों का अर्थ कौन निकाल रहा है? हम यह कहते ही रहते हैं कि "मैं सुखी हूँ", "मैं ऊब गया हूँ", "यह मेरा मित्र है", "वह अपरिचित है", "मुझे यह गीत पसंद है", "मैं स्वादिष्ट भोजन खाना चाहता हूँ" इसका अभिप्राय यह निकलता है कि यहाँ पर मैं भी हूँ और मेरा शरीर तो है ही। हम देख सकते हैं कि यह शरीर ही है जो लंबा या छोटा है, मोटा या पतला है, स्वस्थ या बीमार है इत्यादि। हमें 'मैं' के बारे में थोड़ा बहुत आभास तो होता ही है। यहाँ 'मैं' का संदर्भ 'स्वयं' के लिये है न कि शरीर के लिये। 'मैं' ही है जो संबंधों को पहचानता है, जो निर्णय लेता है कि क्या करना है और यही सुख या दुख को भी महसूस करता है। जब हम कहते हैं कि 'मैंने स्वादिष्ट भोजन खाया', तो यह देख सकते हैं कि भोजन का उपयोग शरीर के लिये हुआ और स्वाद 'मैं' ने लिया।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें
(The Needs of the Self and the Body)

'स्वयं(मैं)' और शरीर अलग-अलग हैं, यदि आप इसे समझना चाहते हैं, तो इनकी आवश्यकताओं के आधार पर इसे समझा जा सकता है (चित्र. 5-2. देखिये)। 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता सुख है। यदि कोई हमारे लिये सम्मान का भाव व्यक्त करता है, तो इससे हम सुखी होते हैं। सम्मान, 'मैं' की आवश्यकताओं में से एक है। आप यदि शरीर की आवश्यकता को देखें तो यह भौतिक-सुविधा है। जिसका एक उदाहरण भोजन है। आप इसे अपने लिये देख सकते हैं कि आपको भोजन और सम्मान दोनों की आवश्यकता है कि नहीं? मानव के लिये इन दोनों की ही आवश्यकता है।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)

चित्र. 5-2. मानव की आवश्यकतायें

आपको क्या लगता है किसी एक तरह की आवश्यकता को दूसरे से पूरा कर सकते हैं? उदाहरण के लिये यदि आपको बहुत स्वादिष्ट भोजन परोसा जाये, लेकिन परोसते समय थाली को थोड़ा धक्का देते हुये तीखे स्वर में कहा जाये कि "यह ले, खा"! तो क्या यह आपको स्वीकार होगा? स्वादिष्ट भोजन से शरीर की आवश्यकता की पूर्ति तो हो जायेगी लेकिन इससे 'मैं' की आवश्यकता अर्थात् सम्मान की पूर्ति नहीं होगी!
इसी प्रकार यदि आपको सम्मान दिया जाये, लेकिन भोजन नहीं, तो हो सकता है कि एक या दो दिन तक आप सहन कर लें। लेकिन निश्चित रूप से आपको भोजन भी चाहिये। ऐसा है कि नहीं?
अतः इन दोनों की ही आवश्यकता है। सिर्फ भोजन देकर, सम्मान सुनिश्चित नहीं कर सकते। इसी तरह सिर्फ सम्मान देकर, भोजन की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती। अतः ये दोनों अलग-अलग प्रकार की आवश्यकतायें हैं और ये दोनों ही आवश्यक हैं; इसलिये मानव के लिये इन दोनों की अलग-अलग पूर्ति आवश्यक है।

आवश्यकता- क्या ये सामयिक हैं या निरंतर?
(Needs – Are they Temporary of Continuous?)

दोनों प्रकार की आवश्यकताओं में अंतर को और समझने के लिये आइये इन्हें समय के संदर्भ में देखते हैं। भोजन की आवश्यकता, निरंतर होती है या जब आप भूखे होते हैं तब होती है? जब आपका पेट पूरा भर जाता है तो भी क्या आपको भोजन चाहिये? यह आसानी से देख सकते हैं कि जब हम भूखे होते हैं, तभी भोजन चाहिये। जब पेट भरा हो और हमें भोजन करने के लिये बाध्य किया जाये तो हम असहज होते हैं, बल्कि कई बार तो यह असहनीय भी हो जाता है। अत: भोजन की आवश्यकता समय-समय पर है न कि निरंतर। इसलिये भोजन की आवश्यकता सामयिक है।
सम्मान के बारे में क्या लगता है? इसकी आवश्यकता निरंतर है या सामयिक? इसको भी आसानी से देख सकते हैं कि हमें सम्मान की आवश्यकता निरंतर है।
आप यह देख सकते हैं कि आपके मित्र यदि प्रतिदिन सुबह आपको नमस्ते करते हैं और किसी एक दिन न करें तो आपको कैसा लगेगा सहज या असहज? इससे यदि आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आज उन्होंने आपका सम्मान नहीं किया तो आप असहज महसूस करते हैं। क्या ऐसा है कि नहीं?

एक बार मेरे मित्र, अपनी दस वर्षीय पुत्री के साथ मिलने आये। बातचीत के दौरान मैंने ऐसे ही उनकी बेटी से पूछा कि "क्यों बेटी, तुम्हारे पिता तुम्हें प्यार करते हैं कि नहीं?" बच्ची जब कुछ देर तक चुप रही और कोई भी उत्तर नहीं दिया तब उसके पिता जी ने उससे थोड़ा जोर देकर पूछा कि "क्या मैं तुम्हें प्यार नहीं करता?; तुम अंकल जी को बताती क्यों नहीं कि मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूँ" बेटी ने उनकी तरफ देखा और कहा कि "आप मुझे प्यार तो करते हैं, लेकिन मुझ पर चिल्लाते या मुझे मारते क्यों हैं?" इससे मेरे मित्र थोड़ा परेशान होकर अपना बचाव करते हुये कहने लगे कि "मैंने कई बार तुम्हें डांटा तो है, लेकिन कभी पीटा नहीं, तुम ही बताओ क्या मैंने कभी तुम्हें पीटा है?"। उस लड़की ने उत्तर दिया-"याद करिये कुछ वर्षों पहले दीपावली के आस-पास आपने मुझे दो थप्पड़ मारे थे...."।

चूंकि भाव की आवश्यकता हमें निरंतर होती है इसलिये इसकी पूर्ति में किसी भी तरह की बाधा चाहें वह बहुत कम समय के लिये ही क्यों न हो हमें स्वीकार्य नहीं होती है। अतः पिता जी भले ही थप्पड़ मार के भूल गये हों लेकिन बच्ची के सम्मान की पूर्ति में जो बाधा हुई, चाहे थोड़े समय के लिये ही सही, बच्ची ने तो उसे बहुत लंबे समय तक याद रखा!

भोजन की आवश्यकता सामयिक है। यदि कोई हमें निरंतर खाने के लिये बाध्य करें, तो हम असहज महसूस करते हैं। कल्पना कीजिये कि आप अपने मित्र के घर गये हैं और उन्होंने आपके लिये स्वादिष्ट भोजन परोसा है। आपने बड़े चाव से अपना पसंदीदा भोजन पेट भर के खाया। पूरा पेट भरने के बाद भी यदि आपका मित्र और अधिक खाने के लिये दबाव डालता रहे तब क्या होगा?

जहाँ तक सम्मान का प्रश्न है, हम इसकी पूर्ति निरंतरता में चाहते हैं; लेकिन भोजन करते रहना हम निरंतरता में नहीं चाहते। इसलिये दोनों आवश्यकतायें समय के संदर्भ में अलग-अलग हैं। क्या आप यह देख पाते हैं?

इसी प्रकार से अपनी सभी आवश्यकताओं की जाँच करके देखें। 'स्वयं(मैं)' से जुड़ी हुई आवश्यकतायें जैसे कि सम्मान, विश्वास, संबंध, सुख आदि; इन सभी की आवश्यकता समय के संदर्भ में निरंतर है। हम इनकी पूर्ति में क्षण भर की भी कोई बाधा नहीं चाहते। दूसरी तरफ शरीर से जुड़ी आवश्यकतायें जैसे कि भोजन, आवास, गाड़ी इत्यादि; इन सब की आवश्यकता सीमित समय के लिये होती है। यदि इनकी निरंतरता हो तो, ये हमारे लिये समस्या हो सकती है। इस तरह हम 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता और शरीर की आवश्यकता के बीच के अंतर को समझ सकते हैं।

आवश्यकता- मात्रात्मक और गुणात्मक
(Needs – Quantitative and Qualitative)

इन दोनों के बीच के अंतर को समझने का दूसरा तरीका मात्रात्मक एवं गुणात्मक आधार पर हो सकता है। भोजन की आवश्यकता मात्रात्मक है। हम अपने शरीर के पोषण के लिये भोजन की आवश्यक मात्रा की पहचान कर सकते हैं। यही स्थिति कपड़ों तथा आवास की आवश्यकता के लिये भी है। हममें से कोई भी व्यक्ति असीमित मात्रा में भोजन नहीं कर सकता या असंख्य कपड़े नहीं पहन सकता। हम सदैव किसी परिधान को बनवाने के लिये कपड़े की आवश्यक मात्रा की पहचान करते ही हैं, जैसे किसी भी परिधान को बनवाते समय कितने मीटर कपड़े की आवश्यकता होगी, यह तो तय करते ही हैं। इसी प्रकार से किसी भी सुविधा की आवश्यकता हमें निश्चित मात्रा में ही होती है। आप इसे स्वयं में देख सकते हैं कि आपको सुविधा सीमित मात्रा में चाहिये या असीमित मात्रा में।

दूसरी तरफ सम्मान और विश्वास का भाव मात्रात्मक नहीं है। हम यह नहीं कहते कि मुझे आज आधा किलो सम्मान की आवश्यकता है या दो मीटर विश्वास की आवश्यकता है। यहाँ तक कि ऐसा बोलना भी हास्यास्पद लगेगा। इस तरह की आवश्यकतायें गुणात्मक हैं; मात्रात्मक नहीं। हम उनकी मात्रा के बारे में बात भी नहीं कर सकते हैं। हम केवल यह कह सकते हैं कि अमुक भाव है, अथवा नहीं है। ये गुणात्मक हैं; और भाव के रूप में होते हैं। या तो ये भाव हममें होंगे या नहीं होंगे; इन पर मात्रा संबंधित मापदंड लागू नहीं होता है।

इन दोनों अंतरों से यह देख सकते हैं कि सुविधा और सुख दोनों अलग-अलग प्रकार की आवश्यकतायें हैं। सुविधा की आवश्यकता शरीर से और सुख की आवश्यकता "मैं' से संबंधित है।
इस अध्याय के अंत में दिये गये अभ्यास संख्या-2, 'स्व-अन्वेषण के लिये प्रयोगात्मक अभ्यास' का संदर्भ लीजिये। इसके द्वारा आप 'मैं' एवं शरीर की आवश्यकताओं का और अधिक अध्ययन कर सकते हैं। आगे बढ़ने से पहले कृपया यह अभ्यास अभी करें। क्या आप यह देख सकते हैं कि 'मैं' की आवश्यकतायें और शरीर की आवश्यकतायें अलग-अलग प्रकार की हैं?

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति
(Fulfilment of the Needs of the Self and the Body)

आइये अब देखते हैं कि इन दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होती है (चित्र. 5-3. का संदर्भ लीजिये)? भोजन की आवश्यकता किसी भौतिक वस्तु जैसे चावल, सब्जी या सैंडविच आदि से पूर्ण होती है। आप यह कह सकते हैं कि यह तो स्वाभाविक ही है क्योंकि वास्तव में ऐसा ही होता है। परंतु जब बात सम्मान की आवश्यकता की हो तो यह सम्मान के भाव से ही पूर्ण हो सकती है। जैसे आप चाहते हैं कि आपके मित्र आप पर ध्यान दें, जो आप कहते हैं, उसे बिना किसी अवरोध के सुनें और आपने जो कहा उसके महत्व पर भी ध्यान दें, क्या ऐसा नहीं है? ये कुछ अभिव्यक्तियाँ हैं; जिनके आधार पर आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आपके मित्र आपका सम्मान करते हैं।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान....)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन....)
पूर्ति	सही-समझ और सही-भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु

चित्र. 5-3. मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति

आप यह देख सकते हैं कि यदि आप अपने किसी मित्र के घर गये हैं; आपके मित्र आपके बारे में अच्छी-अच्छी बातें तो करते रहें लेकिन पूरा दिन खाने के लिये वह आपको कुछ भी उपलब्ध न करवायें तो क्या आपके शरीर की आवश्यकता इससे पूरी हो सकती है? यह स्वाभाविक रूप से स्पष्ट है कि शरीर के आवश्यकता की पूर्ति हेतु भोजन तो आवश्यक ही है। ऐसे ही अब आप यह भी देख सकते हैं कि यदि आपके मित्र पूरा दिन आपके लिये अच्छे से अच्छा भोजन परोसते रहें और आप का मजाक भी बनाते रहें तो, क्या आपके सम्मान के भाव की पूर्ति हो पायेगी? अतः अब आप यह देख सकते हैं कि एक प्रकार की आवश्यकता, दूसरे के द्वारा पूरी नहीं हो सकती है।
शरीर से जुड़ी हुई सभी आवश्यकतायें, सुविधा के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति किन्हीं भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के द्वारा ही हो सकती है। 'मैं' से जुड़ी हुई सभी आवश्यकतायें भाव के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति सही-समझ और सही-भाव के द्वारा ही हो सकती है।
इनके बारे में चर्चा हमने अध्याय-3 में भी की थी, जब हम मानव की मूल चाहना के बारे में बात कर रहे थे तब हमने यह देखा था कि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये निम्न तीनों ही आवश्यक हैं:

1. स्वयं में सही-समझ
2. मानव के साथ संबंधों का निर्वाह
3. शेष प्रकृति के साथ सुविधा

चित्र. 5-4. का संदर्भ लें। सुविधा, शरीर की आवश्यकता से संबंधित है। सही-समझ और सही भाव, 'मैं' से संबंधित हैं।

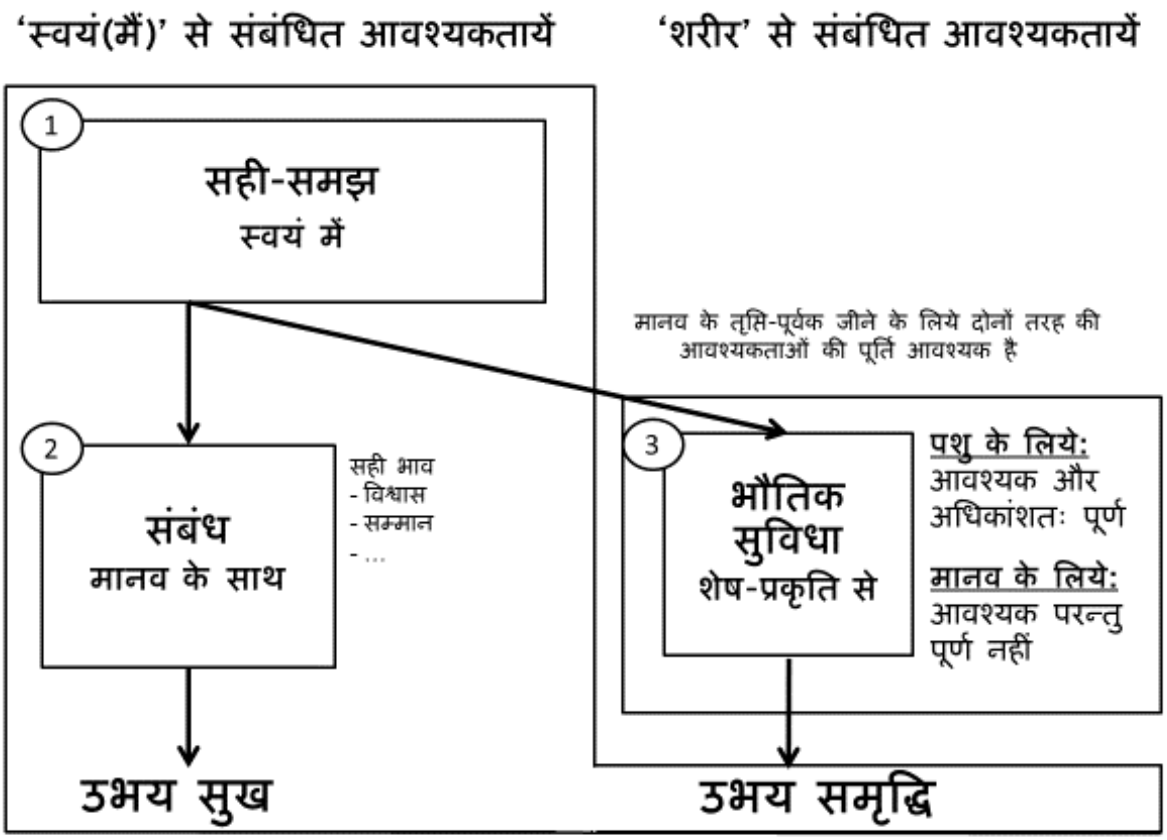

चित्र. 5-4. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' से संबंधित आवश्यकतायें

मानव के लिये, शरीर के साथ-साथ, 'मैं' मुख्य है। अतः 'मैं' की आवश्यकता और अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिये भाव जैसे कि विश्वास, सम्मान आदि की वरीयता सुविधाओं के मुकाबले अधिक है। अतः मानव में, 'मैं से जुड़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, सही-समझ और सही-भाव की आवश्यकता सुविधाओं से अधिक है।
'मैं' की आवश्यकता सुख है, जबकि शरीर की आवश्यकता भौतिक-सुविधा है। सुख की आवश्यकता की पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से, जबकि सुविधा की पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के द्वारा की जा सकती है। इन दोनों ही आवश्यकताओं को अलग-अलग पूरा करना आवश्यक है, क्योंकि दोनों अलग-अलग प्रकार की आवश्यकतायें हैं। मानव की तृप्ति के लिये दोनों तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखना आवश्यक होगा।
आप क्या सोचते हैं, 'मैं और शरीर दोनों ही महत्वपूर्ण हैं या आप इनमें से किसी को छोड़ सकते हैं? क्या हम दोनों का ध्यान रख पाते हैं या हमारा अधिकांश ध्यान शरीर पर ही केंद्रित रहता है? ज्यादातर माता-पिता अपने बच्चे की देखभाल गंभीरता से करना चाहते हैं। इनमें से अधिकतर माता-पिता बच्चे के शरीर की आवश्यकताओं पर तो बहुत ध्यान देते हैं लेकिन बच्चे के 'मैं' की आवश्यकताओं को अनदेखा करते हैं। उदाहरण के लिये माँ, बच्चे को अधिक भोजन खिलाने का प्रयत्न करती है, यदि बच्चा मना करता है तो माँ उस पर चिल्लाती है, यहाँ तक कि कई बार तो पिटाई भी कर देती है। इस प्रक्रिया में बच्चे के शरीर की आवश्यकता की पूर्ति पर तो ध्यान है लेकिन उसके 'मैं' की आवश्यकता कि पूर्ति बाधित होती है। यदि हम अपने दैनिक जीवन की गतिविधियों पर ध्यान दें तो हम पायेंगे की अधिकांशतः हमारा ध्यान शरीर से संबंधित आवश्यकताओं पर ही केंद्रित है।

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकतायें निश्चित हैं
(Needs of the Self are Definite)

नि:संदेह शरीर से जुड़ी हुई आवश्यकतायें आयु, स्वास्थ्य की स्थिति एवं शरीर के आकार और आकृति पर निर्भर करती हैं। एक वयस्क को एक दिन में लगभग एक किलो भोजन चाहिये, जबकि एक छोटे बच्चे को लगभग सौ ग्राम। एक लंबे व्यक्ति को पतलून बनाने के लिये तीन मीटर कपड़ा चाहिये जबकि एक बौने व्यक्ति को एक मीटर कपड़ा ही पर्याप्त है। इसी प्रकार से शरीर की आवश्यकतायें अलग-अलग व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न होती हैं।
दूसरी तरफ 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकतायें निश्चित होती हैं। एक बच्चे के लिये सुख वैसे ही आवश्यक है जैसे कि किसी बूढ़े व्यक्ति के लिये। दूसरे शब्दों में प्रत्येक 'मैं' को सही-भाव और सही-समझ की आवश्यकता है। यह शरीर की स्थिति या अवस्थाओं पर निर्भर नहीं करता है। क्या आप यह देख सकते हैं?

'स्वयं(मैं)' और शरीर की क्रियायें
(The Activities of the Self and the Body)

जब मानव को और गहराई से देखते हैं, तो हम मानव में चल रही क्रियाओं को भी देख पाते हैं। चित्र. 5-5. को देखें।
'मैं' की क्रियायें इच्छा, विचार और आशा हैं। आप स्वयं में देखें कि ये क्रियायें आपमें चल रही हैं या नहीं? आपने क्या देखा? ये क्रियायें 'मैं की हैं या शरीर की? इच्छा और विचार की क्रियायें काल में निरंतर हैं या सामयिक? आप स्वयं में यह देखना प्रारंभ करें कि ये क्रियायें आपमें निरंतर चल रही हैं या कभी-कभी? अपने विचारों को रोकने का प्रयत्न करें- आपने क्या पाया? क्या आप इन्हें रोक पाये? क्या इच्छा की क्रिया और विचार की क्रिया को रोक पाना संभव है? हम पायेंगे कि 'मैं' की क्रियायें काल में निरंतर हैं; और हम इन्हें रोक नहीं सकते हैं।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक

चित्र. 5-5. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की क्रियायें

दूसरी तरफ, शरीर के द्वारा जो भी कार्य हम करते हैं जैसे खाना, चलना इत्यादि; ये सब काल में सामयिक (समय के साथ परिवर्तनीय) हैं। कुछ समय पश्चात, शरीर थक जाता है और हमें इसको आराम देने की आवश्यकता पड़ती है। हम इनको निरंतर नहीं कर सकते हैं।
इस प्रकार, जब शरीर से कोई क्रिया करने की बात आती है, तो हम इसे निरंतर नहीं कर सकते हैं और दूसरी तरफ 'मैं' की प्रत्येक क्रिया निरंतर है, हम इन्हें क्षण भर के लिये भी नहीं रोक सकते हैं। जब हम किसी एक वस्तु के बारे में सोचते हुये उब जाते हैं तो कुछ और सोचने लग जाते हैं। लेकिन कोई न कोई इच्छा, विचार हमारे अंदर निरंतर चलता ही रहता है। शरीर के द्वारा की जाने वाली कोई भी क्रिया को निरंतरता में चलाना मुश्किल है, जबकि 'मैं' की किसी भी क्रिया को रोकना बहुत कठिन है। क्या आप यह अंतर देख पाते हैं?
इस अध्याय के अंत में दिये गये अभ्यास संख्या-3, 'स्व-अन्वेषण के लिये प्रयोगात्मक अभ्यास' का संदर्भ लीजिये। इसके द्वारा आप 'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं और शरीर की क्रियाओं का और अधिक अध्ययन कर सकते हैं। आगे बढ़ने से पहले कृपया आप यह अभ्यास अभी करें। अब क्या आप यह देख पा रहे हैं कि 'मैं' की क्रियायें और शरीर की क्रियायें वास्तव में अलग-अलग प्रकार की हैं?
'मैं' और शरीर के अंतर को उनकी आवश्यकताओं एवं उनकी क्रियाओं के आधार पर समझ सकते हैं। और तीसरा अंतर उनकी अनुक्रिया (response) के आधार पर कर सकते हैं अर्थात् शरीर की अनुक्रिया और 'मैं' की अनुक्रिया।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की अनुक्रिया
(The Response of the Self and the Body)

शरीर की अनुक्रिया; पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है जबकि 'मैं' की अनुक्रिया; जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है (चित्र. 5-6. देखिये)।

मानव	'स्वयं(मैं)' ←— सह अस्तित्व —→ 'शरीर'	
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना

चित्र. 5-6. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की अनुक्रिया

आइये इसकी स्पष्टता के लिये एक उदाहरण की सहायता लेते हैं। यदि कोई व्यक्ति आपके शरीर में सुई चुभा रहा है, तो शरीर की अनुक्रिया एक निश्चित पहचानने और निर्वाह-करने के रूप में होती है। जैसे यदि सुई, शरीर से कठोर है तो वह शरीर की त्वचा के अंदर चली जायेगी और यदि सुई, शरीर से मुलायम है तो अंदर नहीं जायेगी। यह शरीर का सुई के साथ निश्चित पहचानना और निर्वाह-करना है।

आइये अब 'मैं' की अनुक्रिया को देखते हैं। यदि कोई व्यक्ति आपके शरीर में सुई चुभा रहा है तो आप उसका सहयोग करेंगे या विरोध करेंगे, यह उस व्यक्ति के बारे में आपके मानने पर निर्भर करता है। जैसे यदि सुई चुभाने वाले व्यक्ति को आपने डॉक्टर माना है तो आप सहयोग करेंगे और यदि शत्रु माना है तो विरोध। इसका आशय यह हुआ कि 'मैं' का पहचानना और निर्वाह-करना 'मैं' के मानने पर निर्भर करता है। अतः क्या आप यह देख सकते हैं कि दूसरे व्यक्ति के साथ आपकी निर्वाह 'मैं' के मानने पर निर्भर करता है? मानना में थोड़ा भी परिवर्तन होने पर पहचानना और निर्वाह-करना भी बदल जाता है।

आइये एक और उदाहरण लेते हैं, जिसमें आप किसी शल्य चिकित्सा के लिये ऑपरेशन टेबल पर लेटे हुये हैं, डॉक्टर अपना कार्य करने के लिये तैयार है। आपको बेहोश करने से ठीक पहले यदि आपका एक नजदीकी मित्र आपको फोन करता है कि डॉक्टर आपके शत्रु के साथ मिला हुआ है तो आप क्या करेंगे? आप ऑपरेशन करवा लेंगे या मेज से कूद जायेंगे? निश्चित रूप से फोन-कॉल के माध्यम से मिली सूचना के आधार पर आप दूसरा अर्थात् ऑपरेशन टेबल से कूद कर भाग जाने का विकल्प ही चुनेंगे क्योंकि डॉक्टर के प्रति आपकी मान्यता अब परिवर्तित हो चुकी है। निःसंदेह बाहर कोई भी भौतिक परिवर्तन नहीं हुआ है जैसे मेज, कमरा, लोग सब कुछ वैसे ही हैं, लेकिन डॉक्टर के प्रति अब आपका मानना बदल गया है। इसी कारण आपके पहचानने और निर्वाह-करने में भी बदलाव हुआ। पहले आप ऑपरेशन के लिये भुगतान करने को तैयार थे और अब आप भुगतान ले कर भी ऑपरेशन नहीं करने देंगे।

शरीर के द्वारा तो दोनों ही स्थितियों में पहचानना और निर्वाह-करना एक ही जैसा होता है जबकि 'मैं' का पहचानना और निर्वाह-करना, मानना पर निर्भर करता है। चूंकि मानना परिस्थितियों के प्रभाव के कारण, साथियों के दबाव के कारण, समाज, मीडिया इत्यादि के कारण परिवर्तित होता रहता है इसलिये हमारा पहचानना और निर्वाह-करना अर्थात् हमारा आचरण भी बदलता रहता है। यही मानव के अनिश्चित आचरण का कारण है। अपने चारों तरफ हम जो भी समस्यायें देख रहे हैं, वह इसी से जुड़ी हुई हैं।

इस पृष्ठभूमि के साथ अब यदि आप अपने आस-पास के लोगों को देखें तो उनमें बहुत सी अलग-अलग तरह की मान्यताओं को पायेंगे, कई बार ये सही-समझ पर आधारित न होकर संवेदना, मीडिया, विज्ञापन, समाज में प्रचलित पूर्व मान्यताओं आदि से प्रभावित होती हैं। मान्यताओं में अंतर होने के कारण पहचानना और निर्वाह-करना भी अलग-अलग होता है। इसलिये व्यक्तियों के आचरण में बहुत भिन्नता होती है।

केवल यही नहीं, किसी एक व्यक्ति में भी मान्यताओं के विभिन्न समूह हो सकते हैं। जब कोई एक मान्यता का समूह प्रभावी होता है, तो उसका आचरण एक तरह का होता है और जब मान्यता का दूसरा समूह प्रभावी होता है, तो आचरण दूसरी तरह का होता है। आप यह देख सकते हैं कि कोई एक व्यक्ति किसी समय तो स्नेह से भरा होता है और किसी समय ईर्ष्या से। हमारे अपने अंदर भी बहुत सारी मान्यतायें होती हैं। कभी-कभी यह मान्यतायें एक-दूसरे के परस्पर-विरोध में भी होती हैं; समय, स्थिति एवं परिस्थितियों के अनुसार कभी एक मान्यता प्रभावी होती है तो कभी दूसरी। इसके कारण हमारा व्यवहार बहुत अधिक जटिल हो जाता है। यदि कोई मान्यता गलत है तो उसके आधार पर होने वाला पहचानना और निर्वाह-करना भी गलत ही होता है और अंततः यही गलत व्यवहार या आचरण के रूप में दिखता है।

हममें से अधिकांश यही कर रहे हैं अर्थात् मान्यताओं के आधार पर जी रहे हैं। परिणाम स्वरूप हमें विभिन्न स्तरों पर बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे यदि हम यह मानते हैं कि हम किसी एक संप्रदाय से हैं और दूसरा संप्रदाय हमारा विरोधी है तो इन दोनों संप्रदायों के व्यक्तियों के साथ हमारा व्यवहार अलग-अलग होता है। यद्यपि जब हम मानव को सही-समझ के आधार पर देखने के योग्य हो जाते हैं तो हमारी मान्यता ठीक हो जाती है और हमारा व्यवहार सहज रूप से किसी भी व्यक्ति के लिये तृप्ति-दायक ही होता है। क्या आप यह देख सकते हैं?
किसी व्यक्ति का आचरण मूलतः 'मैं' के निर्वाह पर निर्भर करता है क्योंकि सभी निर्णय, 'मैं' के द्वारा ही लिये जाते हैं। केवल सही मान्यता को स्थापित करके अर्थात् मानना को जानना के आधार पर सुनिश्चित करके ही, उस पर आधारित पहचानना और निर्वाह-करना को ठीक कर सकते हैं; उसके बाद ही हमारा आचरण निश्चित हो सकता है।

चित्र. 5-7. में इसे विस्तार से दिखाया गया है। जब हम छोटे ब्लॉक (मानना, पहचानना, निर्वाह-करना) के आधार पर जीते हैं तो हम समस्या में होते हैं। हमारा आचरण अनिश्चित होता है, क्योंकि हमारी मान्यतायें बार-बार बदलती रहती हैं। इसका समाधान यह है कि हमारा जीना बड़े ब्लॉक (जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना) के आधार पर हो जाये। यह बदलाव 'जानना के बिना केवल मानना के आधार पर जीना' से 'जानना के अनुसार मानना के आधार पर जीना', मानवीय शिक्षा-संस्कार के द्वारा ही संभव है।

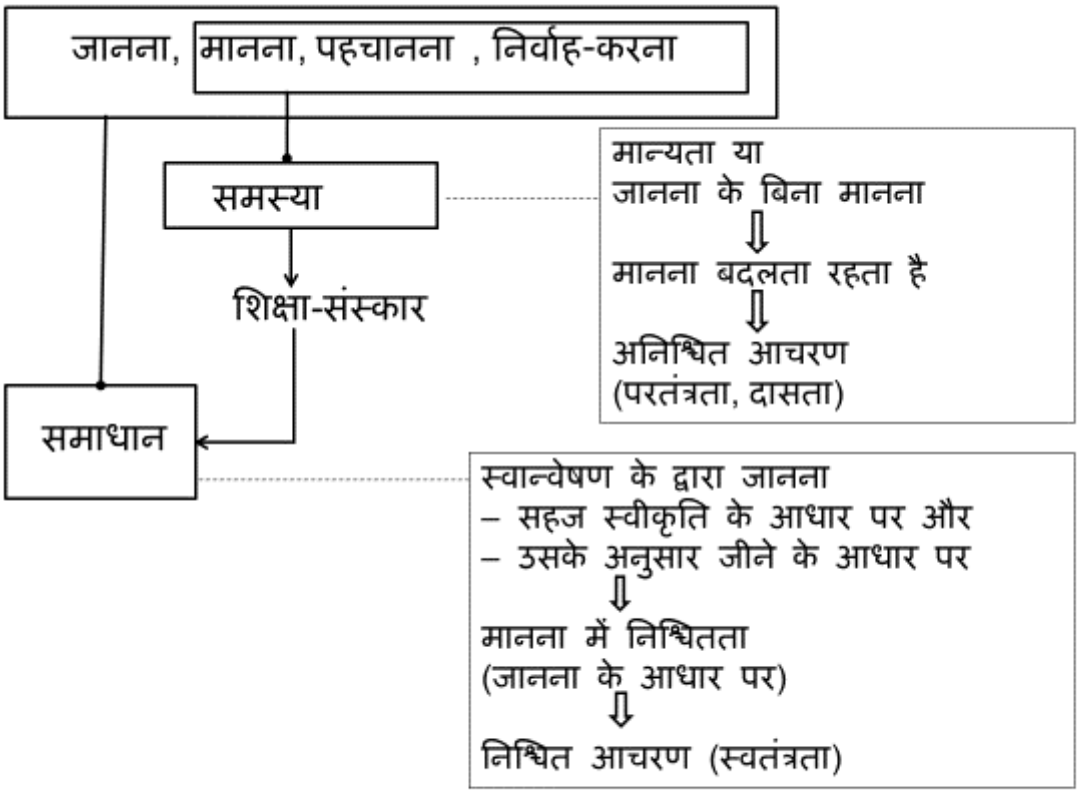

चित्र. 5-7. जानना के आधार पर अनुक्रिया या जानना के बिना मानना के आधार पर अनुक्रिया

जैसी वास्तविकता है, उसको संपूर्णता में वैसा ही समझना 'जानना' है। क्योंकि वास्तविकता निश्चित है, इसलिये 'जानना' भी निश्चित होगा। सही-समझ के साथ ही हमारी मान्यतायें अर्थात् हमारी स्वीकृतियां ठीक हो पाती हैं, संबंधों का ठीक-ठीक पहचानना भी हो पाता है जिससे संबंधों के निर्वाह के लिये हम सही-सही प्रयत्न कर पाते हैं। इस प्रकार से हमारा आचरण निश्चित हो पाता है; मानवीय हो पाता है; इसलिये हम इसे 'निश्चित मानवीय आचरण' कहते हैं।

ऊपर जैसा प्रस्ताव दिया गया है यदि हम मानव को ऐसे ही समझते (जानते) हैं, तो हमारी मान्यतायें सही हो पाती हैं और हम सभी मानवों को एक जैसा देखने के योग्य हो पाते हैं, बजाय इसके कि जाति, वर्ण, लिंग, आयु, भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाय आदि के आधार पर अलग-अलग। इसके साथ ही सही पहचानना हो पाता है, संबंधों का निर्वाह भी ठीक हो पाता है और हम 'मैं' और शरीर दोनों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये प्रयास कर पाते हैं, बजाय इस तरह का भेद करने के कि वह पुरुष है या महिला, काला है या सफेद, हिंदू है या ईसाई इत्यादि।

समाधान से जीने के लिये, हमें 'मैं' में 'जानना' को सुनिश्चित करना आवश्यक है, जो कि मानव का एक प्रमुख कार्यक्रम है। 'जानने' के बिना जब हम सिर्फ 'मानना' के आधार पर जीते हैं तो हम समस्या में होते हैं और दूसरों के लिये भी समस्यायें ही उत्पन्न करते हैं। क्या आप यह देख सकते हैं?

समस्या या अनिश्चित आचरण से समाधान या निश्चित आचरण की तरफ संक्रमण को 'मानवीय शिक्षा-संस्कार' के द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है।

'स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में
(The Self as the Consciousness Entity, the Body as the Material Entity)

हमने देखा कि 'मैं' और शरीर की आवश्यकता, पूर्ति, क्रिया एवं अनुक्रिया पूर्णतः अलग-अलग हैं। अतः ये दो अलग प्रकार की वास्तविकतायें हैं। 'मैं', जिसे जीवन भी कहते हैं, जो कि चैतन्य का क्षेत्र है ,जबकि शरीर, जड़ का क्षेत्र है।

मानव	'स्वयं (मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)
पूर्ति	सही समझ और सही भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना
	↓ चैतन्य	↓ जड़

चित्र. 5-8. मानव – 'स्वयं' (चैतन्य क्षेत्र) और 'शरीर' (जड़ क्षेत्र) का सह-अस्तित्व

जैसे चित्र. 5-8. में दिखाया गया है कि चैतन्य-क्षेत्र, जानने, मानने, पहचानने एवं निर्वाह-करने की क्रियाओं के रूप में परिलक्षित होता है जबकि जड़-क्षेत्र, केवल पहचानने एवं निर्वाह-करने की क्रियाओं के रूप में।
चैतन्य की आवश्यकता सुख है, जिसकी पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से होती है, जो चैतन्य की ही क्रियायें हैं। शरीर, जड़ इकाई है और इसकी आवश्यकता भी जड़ की ही है, जिसकी पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के द्वारा की जा सकती है। अतः चैतन्य की आवश्यकताओं की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से और शरीर (जड़) की आवश्यकताओं की पूर्ति, भौतिक-रासायनिक वस्तुओं (जड़) से कर सकते हैं।
मानव को समझने के लिये, 'चैतन्य-क्षेत्र' और 'जड़-क्षेत्र' दोनों को ही समझने की आवश्यकता है। मानव के लिये दोनों क्षेत्रों की आवश्यकताओं को भी अलग-अलग प्रकार से पूरा करना आवश्यक है।

आगे की कक्षा में :
अभी तक हमनें देखा कि मानव,चैतन्य इकाई अर्थात् 'मैं' और जड़ इकाई अर्थात् 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। कक्षा 10 में हम इस बारे में और गहराई से देखेंगे कि किस तरह से हम अपने को शरीर ही मान कर जीते रहते है और अपना अधिकतर प्रयास शरीर की सम्वेदना को संतुष्ट करने में करते रहते है, जबकि मानव के केंद्र में तो 'मैं' ही है जो शरीर को अपनी समझ के अनुसार निर्देशित कर सकता है|

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

- मानव, चैतन्य इकाई अर्थात् 'मैं' और जड़ इकाई अर्थात् 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। ये दोनों एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व में हैं।
- 'मैं' और शरीर की आवश्यकतायें अलग-अलग प्रकार की हैं। किसी एक के पूरा होने से दूसरे की पूर्ति नहीं हो सकती। 'मैं' की आवश्यकता सुख है, जो गुणात्मक एवं निरंतर है। शरीर की आवश्यकता भौतिक-सुविधा है, जो मात्रात्मक एवं सामयिक है।

- 'मैं' की आवश्यकता की पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से की जा सकती है, जबकि शरीर की आवश्यकता की पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं से की जा सकती है।
- चैतन्य (स्वयं) की आवश्यकता की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से और जड़ (शरीर) की आवश्यकता की पूर्ति जड़ वस्तुओं से करते हैं। चैतन्य की आवश्यकता की पूर्ति जड़ वस्तुओं से और जड़ की आवश्यकता की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से नहीं कर सकते।
- 'मैं' की क्रियायें जैसे इच्छा, विचार, आशा इत्यादि 'काल में' निरंतर हैं, जबकि शरीर की क्रियायें जैसे खाना, टहलना इत्यादि 'काल में' सामयिक हैं।
- शरीर की अनुक्रिया निश्चित है, यह पहचानने और निर्वाह-करने के रूप में है। 'मैं' की अनुक्रिया जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह-करने के रूप में है। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा देख पाना ही जानना है। यदि 'मैं' का निर्वाह सिर्फ मानने, पहचानने और निर्वाह-करने पर ही आधारित है, तो इसमें अनिश्चितता होगी। और यदि यह जानने, मानने, पहचानने एवं निर्वाह-करने पर आधारित है तो स्वयं की अनुक्रिया निश्चित और मानवीय होगी।
- अनिश्चित निर्वाह और अनिश्चित आचरण ही समस्याओं का स्रोत है। जानने से निर्वाह में निश्चितता आती है, जिससे निश्चित मानवीय आचरण सुनिश्चित होता है। यही समाधान है। समस्या से समाधान की तरफ संक्रमण (गति) करने में मानवीय शिक्षा-संस्कार सहायक है।

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. मानव, 'मैं' और शरीर का सह-अस्तित्व है। शरीर और 'मैं' के बीच अंतर को स्पष्ट करने वाले तीन प्रमुख बिंदु कौन से हैं? उदाहरण सहित समझाइये।
2. चैतन्य-क्षेत्र की पूर्ति चैतन्य क्रियाओं से की जा सकती है, जबकि जड़-क्षेत्र की पूर्ति जड़ वस्तुओं से कर सकते हैं। चैतन्य की पूर्ति जड़ से नहीं की जा सकती। इन कथनों की व्याख्या कीजिये?
3. 'शरीर' और 'मैं' की क्रियाओं के बीच गुणात्मक अंतर क्या है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
4. शरीर की अनुक्रिया, निश्चित कैसे है? उदाहरण के साथ स्पष्ट करें।
5. निश्चित मानवीय आचरण का क्या अर्थ है? 'मैं' के निश्चित और अनिश्चित निर्वाह को उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. कौन महिला-पुरुष है, लंबा-छोटा है, सुंदर-बदसूरत है, हिंदू-मुस्लिम है, अंधा-आँखों वाला है? कौन समझने वाला है, निर्णय लेने वाला है, दौड़ने वाला है? यह शरीर है या 'मैं' है?
2. अपनी इच्छाओं की सूची लीजिये जिसे आपने पिछले अध्यायों में बनाया था। यदि आवश्यक हो तो इसमें संशोधन कर लें। अब इन इच्छाओं को 'मैं' से जुड़ी इच्छा और शरीर से जुड़ी इच्छा के रूप में सूचीबद्ध कीजिये।

इच्छा	'मैं' से जुड़ी इच्छा	शरीर से जुड़ी इच्छा
स्वास्थ्य		शरीर
मेरे लिये मित्रों में स्वीकृति का भाव हो	मैं अपने लिये स्वीकृति का भाव चाहता हूँ	
भौतिक रूप से मित्रों के साथ रहना	मैं अपने मित्रों के साथ रहना चाहता हूँ	
पोषण के लिये भोजन		मेरे शरीर को पोषण चाहिये
स्वाद के लिये भोजन	स्वाद, स्वयं को चाहिये	
बहुत सारा धन, शरीर के आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये		भोजन, वस्त्र, आवास आदि के लिये धन
बहुत सारा धन, समाज में सम्मान के लिये	अच्छी मोटर-साइकिल के लिये धन, जिससे लोग मेरा सम्मान करेंगे	
सहज स्वीकृति की समझ	व्यवस्था में जीने के लिये यह मेरी आवश्यकता है	

यह सूची नमूना मात्र है, कृपया अपनी सूची स्वयं बनायें

यदि कोई इच्छा, दोनों से संबंधित दिखती है अर्थात् 'मैं' और 'शरीर' दोनों से, तो इसके उद्देश्य को देखिये, और इन इच्छाओं को दो या दो से अधिक उप इच्छाओं में विभक्त कीजिये, जब तक कि आपको स्पष्ट रूप से यह न दिख जाये कि इच्छा शरीर से जुड़ी है या 'मैं' से? जैसे "बहुत सारे धन की इच्छा" को दो उप इच्छाओं में विभक्त करें और उसके उद्देश्य को देखें तो पहली उप-इच्छा अच्छा भोजन, कपड़े, आवास इत्यादि के लिये होगी, और दूसरी मित्रों एवं समाज से सम्मान प्राप्त करने के लिये होगी। यदि आप पहली उप-इच्छा को देखें तो वह शरीर से जुड़ी हुई है; और दूसरी 'मैं'' से जुड़ी हुई है।

इस अभ्यास के द्वारा,

(a) 'मैं' और 'शरीर' की आवश्यकताओं की कम से कम दो प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट करें।
(b) आपकी कितने प्रतिशत इच्छायें 'मैं' से और कितने प्रतिशत इच्छायें 'शरीर' से संबंधित हैं।
(c) इनके प्रतिशत की तुलना निम्नलिखित प्रकार से करें:

सुविधा के लिये लगाये गये समय और प्रयास का प्रतिशत (अध्याय-3 में किये गये अभ्यास को याद कीजिये)	शरीर की आवश्यकताओं का प्रतिशत
सही-समझ और संबंध के निर्वाह के लिये लगाये गये समय और प्रयास का प्रतिशत (अध्याय-3 में किये गये अभ्यास को याद कीजिये)	'मैं' की आवश्यकताओं का प्रतिशत

इस अभ्यास से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं?

3. सुबह से रात तक की क्रियाओं की सूची बनायें। इसमें से कुछ क्रियायें, 'मैं' में चल रही होंगी और कुछ 'शरीर' में चल रही होंगी और कुछ दोनों में सम्मिलित होंगी। क्रियाओं की सूची को इन तीन श्रेणियों में विभक्त करें (नीचे तालिका देखिये)।

क्रियायें	'मैं' में	'शरीर' में	'मैं' और 'शरीर' दोनों

			सम्मिलित
दौड़ना			'मैं' ने दौड़ने का निर्णय लिया है, और 'शरीर' दौड़ रहा है
भोजन करना			'मैं' ने भोजन करने का निर्णय लिया है, और 'शरीर' भोजन कर रहा है; 'शरीर' को पोषण मिल रहा है और 'मैं' को स्वाद
सोचना	'मैं' सोच रहा है, 'शरीर' सम्मिलित नहीं है		
उत्तेजित महसूस करना	'मैं' उत्तेजित महसूस कर रहा है	'शरीर' पर भी कुछ प्रभाव पड़ता है	'मैं' और शरीर दोनों सम्मिलित हैं
हृदय गति		'शरीर' में हो रही है	
रक्त संचार		'शरीर' में हो रहा है	
अन्य गतिविधियां			

नोट : अन्य गतिविधियों की सूची आप स्वयं बनाये

निम्नलिखित से जुड़े हुये अपने परीक्षणों को लिखे:

a) क्या आप यह देख सकते हैं कि 'मैं' की वे क्रियायें जिनमें 'शरीर' सम्मिलित नहीं है, निरंतर हैं?
b) क्या आप यह देख सकते है कि 'शरीर' की क्रियाओं में 'शरीर' के कुछ आंतरिक अंग सम्मिलित हैं जैसे हृदय और रक्त वाहिनियाँ आदि? क्या आप यह भी देख सकते हैं कि ये क्रियायें सामयिक हैं और चक्रीय हैं?
c) वे क्रियायें जिनमें 'मैं' और 'शरीर' दोनों सम्मिलित हैं, उनमें संवेदी अंगों तथा कार्य करने वाले अंगों की भूमिका को पहचानने का प्रयत्न करिये। उदाहरण के लिये, जब आप किसी मच्छर को मारने के लिये देखते हैं तो-
   - आपने मच्छर को देखने का निर्णय लिया।
   - नेत्र, एक संवेदी अंग तथा कर्ण, दूसरा संवेदी अंग, यंत्र के रूप में प्रयोग हुये।
   - मच्छर को मारने के लिये हाथ एक कार्य-अंग की तरह प्रयोग हुआ। (निःसंदेह कब और कैसे करना है, यह आपने अर्थात् आपके 'मैं' ने तय किया होगा)

4. आप उन 10 निर्णयों की सूची बनाइये जो आपने पिछले 10 दिनों में लिये हैं। प्रत्येक निर्णय के आधार को पहचानने का प्रयत्न करें कि क्या यह निर्णय जानने पर आधारित था या बिना जाने, सिर्फ मानने पर? नीचे दी हुई तालिका को देखिये:

निर्णय	**जानने और मानने पर आधारित**	**बिना जाने, मानने पर आधारित**
अपने मित्र की फोन कॉल उठाना		अपने मित्र से किसी अच्छी खबर की आशा कर रहा था
अपने मित्र की फोन कॉल न		पहले उसने मुझे बुरी खबर दी थी

उठाना		
अपनी माता जी को फोन करना	मुझे पता है, मेरी माँ मेरे लिये स्नेह का भाव रखती हैं	
एक स्वादिष्ट पिज्ज़ा खाना		मैंने माना था कि यह स्वादिष्ट और बहुत अच्छा होगा

नोट : अन्य गतिविधियों की सूची आप स्वयं बनाये
आपने कितने निर्णय जानने के आधार पर लिये हैं? आपको कौन से निर्णय अधिक सहज लगते हैं जानने पर आधारित या बिना जाने सिर्फ मानने पर आधारित? अभ्यास से निकाले गये अपने निष्कर्ष को लिखिये।

5. जिन वस्त्रों का आप नियमित उपयोग करते हैं उनमें से कुछ जोड़ी कपड़ों के लिये यह पता करके देखिये कि आपने लगभग कितने मूल्य का भुगतान निम्न के लिये किया था:
    a. 'शरीर' की आवश्यकता की पूर्ति के लिये ('शरीर' के स्वास्थ्य के लिये)
    b. दूसरों के ध्यानाकर्षण, सम्मान आदि के लिये ('मैं' की आवश्यकता के लिये)

आपके धन का कितने प्रतिशत स्वास्थ्य के लिये कपड़ों पर खर्च हुआ और कितने प्रतिशत ध्यानाकर्षण के लिये खर्च हुआ? इस अभ्यास से आपने क्या निष्कर्ष निकाला?

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने 'अपनी समझ को जाँचे'और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों)creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति)Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति:, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी हैऔर यह मायने रखती है। ऊपर - कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!
"मुझे अस्तित्व की वास्तविकताओं को जानना है, ताकि इनके साथ व्यवस्था में जी सकूं"
"मानव, 'मैं' और का सह 'शरीर'-अस्तित्व है या सिर्फ है 'शरीर'?"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 6: स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना
Harmony in the Self – Understanding Myself

पुनरावृत्ति
(Recap)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞ मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

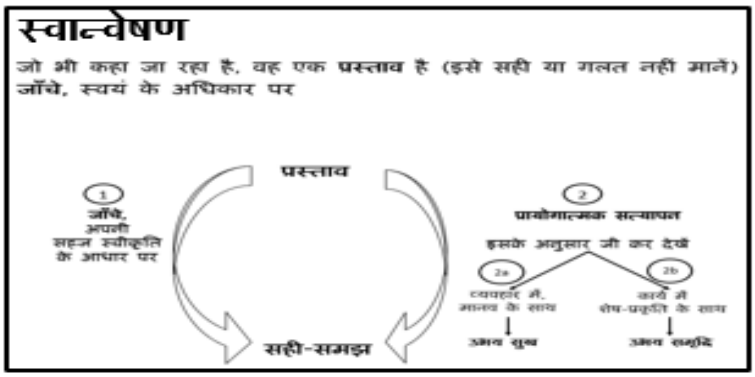

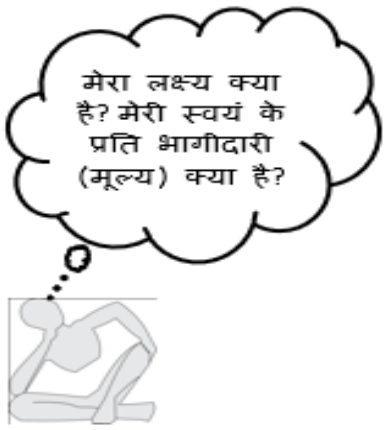

पिछले अध्यायों में हमने मानव में 'मैं' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के बारे में चर्चा की। 'मैं' और 'शरीर' की आवश्यकतायें, क्रियायें एवं निर्वाह का श्रेणीबद्ध तरीके से अध्ययन किया। हमने 'मैं' को चैतन्य इकाई और 'शरीर' को जड़ इकाई के रूप में समझा। हमने यह भी देखा कि चैतन्य इकाई ही 'मैं' और 'शरीर' से संबंधित सभी निर्णय लेती है।

जब 'शरीर' की आवश्यकताओं के साथ-साथ 'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है, तभी मानव में व्यवस्था हो पाती है:

- निरंतर सुख, 'मैं' की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति सही-समझ और सही-भाव से होती है, जो कि चैतन्य क्रियायें हैं।
- सुविधा, 'शरीर' की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति भौतिक-रासायनिक वस्तुओं से होती है, जो कि जड़-प्रकृति हैं।

'मैं' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था का अध्ययन करने के बाद अब हम 'मैं' की क्रियाओं का अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि 'मैं' की सभी क्रियाओं में संगीत या व्यवस्था कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं; अंततः 'मैं' में संगीत की

निरंतरता को कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं, इसकी चर्चा भी करेंगे, जिसके परिणाम स्वरूप 'मैं' में निरंतर सुख की स्थिति होगी।
आइये इसे और गहराई से देखें और 'मैं' में निरीक्षण करने का प्रयत्न करें।

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

(Activities of the self)

आप यह देख सकते हैं कि हर समय हम किसी न किसी क्रिया में लगे रहते ही हैं जैसे भोजन करना, निद्रा, खेलना, पढ़ना इत्यादि। अध्याय-5 में हमने 'शरीर' की क्रियाओं, 'मैं'' की क्रियाओं एवं 'मैं' और 'शरीर' दोनों की सम्मिलित क्रियाओं के बीच के अंतर पर स्पष्टता से चर्चा की थी। 'मैं' की क्रियाओं से आशय हमारी कल्पनाशीलता, हमारी निर्णय लेने की क्रिया, हमारी इच्छा, हमारे विचार, हमारी आशा इत्यादि से है। 'मैं' को सूक्ष्मता से समझना आवश्यक है जिससे कि हम 'मैं' में संगीत को समझने के योग्य हो|

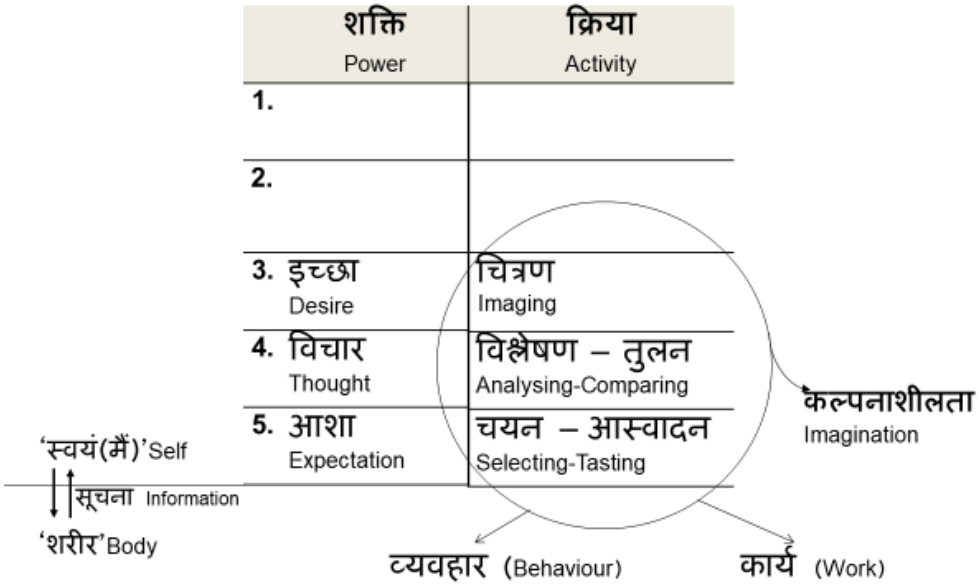

चित्र. 6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

चित्र. 6-1. में 'मैं' की तीन क्रियाओं के समुच्चय (सेट) का उल्लेख किया गया है। यह वे प्रारंभिक क्रियायें हैं, जिनका अध्ययन हम पहले करेंगे। इन क्रियाओं को सिर्फ पढ़ना ही नहीं, बल्कि इन क्रियाओं को ''मैं' में देखना भी आवश्यक है। यहाँ पर जो भी चर्चा की जा रही है उसका प्रयोगात्मक-सत्यापन महत्वपूर्ण है। उसके बाद ही हम अपने जीवन में कोई परिवर्तन ला सकते हैं। आपका सुख या दुख सब कुछ आपके 'मैं' की स्थिति पर निर्भर करता है! तो आइये 'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं का अध्ययन शुरू करते हैं।
इच्छा अर्थात् जो आप होना चाहते हैं। जिसे चित्रण क्रिया नाम भी दिया गया है। चूंकि इच्छा शब्द का प्रयोग हम अक्सर करते रहते हैं इसलिये यहाँ पर इसी के बारे में बात कर रहे हैं। लेकिन जिसे हम वास्तविक तौर पर 'मैं' में देख रहे होते हैं वह तो चित्रण-क्रिया है। 'मैं' की अन्य क्रियाओं के लिये भी ठीक ऐसा ही है।
अतः इच्छा, चित्रण-क्रिया की शक्ति है। स्वयं में चित्रण तो आप करते ही रहते हैं। जब भी आप यह कहते हैं कि कोई इच्छा हो रही है; यदि उस समय आप 'मै' में देखे तो उससे संबंधित कोई न कोई चित्रण 'मैं' में कर रहे

होते हैं। उदाहरण के लिये यदि आप में बड़े घर की इच्छा हो रही है यानी आप एक बड़े घर का स्वामी होना चाहते हैं अर्थात् जब आप यह कहते है कि 'बड़े घर की इच्छा' तो आप उस बड़े घर का स्वामी होना चाहते हैं जिसका चित्रण आपके, 'मैं' में बना है। इच्छा से तात्पर्य है 'जैसा आप होना चाहते हैं' उसका चित्रण।
विचार, विश्लेषण-क्रिया की शक्ति है; अर्थात् "इच्छा की पूर्ति कैसे हो?" इसे 'मैं' में देखने का प्रयास करना। जब आप में यह इच्छा होती है कि आपका भी एक बड़ा घर हो, तब आप उस घर को बनाने का विवरण जुटाने का प्रयास करते हैं। अर्थात् घर कैसा हो इसे 'मैं' में देखने का प्रयास करते हैं। जैसे उस घर में भोजन कक्ष, शयन कक्ष, रसोई कक्ष, बरामदा, स्नान कक्ष इत्यादि होंगे इसे 'मैं' में देखने को विश्लेषण करना कहते हैं। आप उस चित्र के हिस्सों को अलग-अलग करने का प्रयत्न करते हैं, उस चित्रण को 'मैं' में फैला कर और साफ-साफ देखने का प्रयास करते हैं; 'मैं' में बने चित्रण के इस विश्लेषण करने के प्रयास को विचार कहते हैं। अब उस इच्छा की पूर्ति से संबंधित जो बहुत से संभावित विवरणों को आपने 'मैं' में उत्पन्न किया है; उनमें से कुछ को लेते हैं और पुनः फैला कर उन्हें और स्पष्टता से देखने का प्रयास करते हैं; जैसे यदि बरामदे के विकल्प को ही लें तो अब आप उसके लिये भी बहुत सी संभावनायें देख सकते हैं जैसे खुला बरामदा, आंशिक रूप से ढका हुआ बरामदा इत्यादि। आप इन संभावनाओं की तुलना करते हैं और उनमें से कुछ को ले लेते हैं। इनमें से किसको आप लेते हैं और किसको नहीं इसका आधार आप में हो रही तुलना है। अतः विचार, विश्लेषण की वह क्रिया है, जो आप में इच्छा की पूर्ति के लिये, विभिन्न संभावनाओं की तुलना के आधार पर हो रही है।

हम देख सकते हैं कि इच्छा "क्या करना है" या "क्या होना है" के बारे में है; और विचार इस इच्छा की पूर्ति कैसे करना है, इसके बारे में है। अतः विचार "कैसे करना है' से संबंधित है ।

आशा, आस्वादन (स्वाद लेना) के आधार पर चयन-क्रिया की शक्ति है। उदाहरण के लिये जब आप बड़े घर की इच्छा करते हैं तो आपमें उसका एक चित्र बना होता है। आप उस चित्र का विश्लेषण करते हैं तथा उसके विवरणों को एकत्र करने का प्रयत्न करते हैं, अब आप उसके और बारीक विवरणों को भी जुटाने का प्रयत्न करते हैं, जैसे घर की दीवारों का रंग, उनका चिकनापन इत्यादि - यह चयन करने की क्रिया है। यहाँ पर आप यह निर्धारित कर रहे हैं कि घर के ड्राइंग रूम के लिये दीवारों का रंग हरा हो, नीला हो या सफेद हो। रंग का चयन आपके आस्वादन पर आधारित है। यदि आप किसी ऐसे स्थान पर गये थे, जहाँ पर कमरे की दीवारों पर क्रीम रंग देखा था, जो आपको पसंद आ गया था, यही आपके आस्वादन का अंग हो जाता है। अतः जब आप रंगों का चयन करते हैं, तो उसी आस्वादन के आधार पर आप क्रीम रंग का चयन कर लेते हैं। आशा, आपके आस्वादन के आधार पर चयन करने की क्रिया है।

हम इन क्रियाओं को अधिक स्पष्टता से समझने के लिये कुछ और उदाहरण ले सकते हैं। आपने अपने वस्त्रों की शैली और रंग का चयन किया है। आपका यह चयन, आस्वादन पर आधारित है। आप ढीले सूती वस्त्र पहनना पसंद करते हैं- यह आपका चयन है। आपने ऐसे वस्त्रों का चयन किया जिनका रंग नीला है- यह नीला रंग आपका आस्वादन है। आपके मित्र को काले रंग के टाइट सिंथेटिक वस्त्र पहनना पसंद है- वह उनका चयन है जो उनके आस्वादन के आधार पर है। आपको अपने आस्वादन के बारे में पता हो या न हो, लेकिन आपके द्वारा किया गया हर चयन आपके आस्वादन पर ही आधारित होता है। आप अपने बैठने के ढंग को देखने का प्रयत्न करें, आप कुछ-कुछ मिनटों के पश्चात अपनी बैठने की स्थिति और मुद्रा बदलते रहते हैं। यह भी आपका चयन ही है जो आपके आराम से बैठने के आस्वादन पर आधारित है।

चयन-आस्वादन और विश्लेषण-तुलन के मूल में इच्छा है। आरामदायक स्थिति में होना, आपकी इच्छा हो सकती है तो आप उसी के अनुसार 'शरीर' की मुद्रा का चयन करते हैं और 'शरीर' को आराम देते हैं। आपमें विद्वान होने की इच्छा हो सकती है तो आप उसी के अनुसार कॉलेज में चल रहे पाठ्यक्रम का विश्लेषण करते हैं और उनमें से कुछ का चयन कर लेते हैं। मूल में इच्छा अर्थात् जैसा आप होना चाहते हैं; चित्रण के रूप में है| ये मात्र भौतिक चित्रण के रूप में ही नहीं हैं; बल्कि ऐसे चित्रण भी हैं जो भाव और उद्देश्य से संबंधित हैं।

क्या आप यह देख सकते हैं कि आप में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन की क्रियायें चल रही हैं?
आप यह देख सकते हैं कि आपकी इच्छा एक ऐसा व्यक्ति बनने की हो सकती है, जिसके पास बहुत अच्छी नौकरी हो; तो ऐसी नौकरी कैसे मिलेगी, इसके बारे आपमें कई विचार आ सकते हैं, जैसे क्या मैं कैंपस प्लेसमेन्ट के लिये प्रयत्न करूं या मैं सीधे उन कंपनियों में आवेदन करूं जो, मेरे पसंद के क्षेत्र में काम करती हैं या मैं अपने सीनियरों का परामर्श ले लूं, इस प्रकार के अनेक विचार हो सकते हैं। जब आप स्वयं के मापदंडों पर इनकी तुलना करते हैं, तो आप इनमें से कुछ विचारों को छोड़ देते हैं जैसे "मैं अपने सीनियरों का परामर्श ले लूँ" क्योंकि उनसे बात करना सदैव अच्छा नहीं लगता है; या "मैं सीधा आवेदन नहीं करना चाहता हूँ" क्योंकि इसकी वजह से कॉलेज मुझे कैंपस-साक्षात्कार के लिये अयोग्य घोषित कर देगा और इसी प्रकार की अन्य कई बातें। और फिर इसके बाद अपने आस्वादन के आधार पर किसी का चयन कर लेते हैं। जैसे "मैं कैंपस प्लेसमेन्ट के लिये प्रयत्न करूं" क्योंकि यहाँ से नौकरी पाना आसान है इत्यादि। क्या ऐसा आप में भी चल रहा है?

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं
(Activities of the self are continuous)

हम में इच्छा की शक्ति है अर्थात् हम में चित्रण-क्रिया की क्षमता है, इसलिये चित्रण कर पाते हैं। हम में विचार की शक्ति है अर्थात् हम में विश्लेषण-क्रिया की क्षमता है, इसलिये विश्लेषण कर पाते हैं। हम में आशा की शक्ति है अर्थात् हम में चयन-क्रिया की क्षमता है, इसलिये चयन कर पाते हैं। यह शक्तियाँ हम में कभी भी समाप्त नहीं होती हैं, इसीलिये ये क्रियायें निरंतर हैं।
जाँच कर देखें कि ये क्रियायें आप में निरंतर चल रही हैं या नहीं? क्या आप में कोई न कोई इच्छा हर समय रहती ही है, जैसे सुखी होने की इच्छा। क्या इस तरह की इच्छायें सदैव आपमें बनी रहती हैं या कभी ऐसा भी होता है, जब आप में कोई भी इच्छा नहीं होती? क्या आप में कोई न कोई विचार निरंतर चलता रहता है या कोई समय ऐसा भी आता है जब आप विचार करना बंद कर देते हैं? क्या आप में कोई न कोई आशा हर समय रहती है या कभी ऐसा भी होता है जब आप में कोई आशा नहीं रहती? जैसे क्या आप में अपने 'शरीर' को सदैव आराम में रखने की आशा रहती है और आप उसी के अनुसार अपने 'शरीर' की मुद्रा का चयन करते रहते हैं? आप दिन में जब जागे हुये हों, तब 'मैं' में चल रही इन क्रियाओं को देखना प्रारंभ करें और बाद में आप इन्हें रात में सोते समय भी देखने का प्रयास कर सकते हैं।
यदि आप यह नहीं देख पाते हैं कि ये क्रियायें निरंतर हैं तो भी आप इन्हें देखने का प्रयास जारी रखें, इनका अध्ययन जारी रखें, यह जाँचने का प्रयास करें कि क्या ऐसा कोई समय होता है जब आपमें कोई भी इच्छा न हो रही हो, जब कोई विचार नहीं हो रहा हो या कोई आशा नहीं हो। यह देखें कि ये क्रियायें आपमें चल नहीं रही हैं या चल तो रही हैं लेकिन आप इसके बारे में जागरूक नहीं हैं कि वे चल रही हैं।
आप में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन की क्रियायें सदैव चलती रहती हैं; भले ही आप इनके बारे में जागरूक हो या न हो; ये निरंतर हैं।

क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता
(Activities Together Constitute Imagination)

जब आप इन क्रियाओं को एक साथ देखते हैं तो इसे कल्पनाशीलता कहते हैं। हम तुरंत तो 'मैं' में अपनी इच्छा, विचार और आशा को अलग-अलग देखने के योग्य नहीं हो पाते हैं; लेकिन 'मैं' में जो कुछ भी चल रहा है; उसे संयुक्त रूप में आसानी से देख सकते हैं; जिसे कल्पनाशीलता कह रहे हैं। कोई न कोई कल्पनाशीलता तो हर समय हम में चलती ही रहती है।

आप 'मैं' में इसे देख सकते हैं कि कल्पनाशीलता हर समय आपके अंदर चलती रहती है या आप इसे रोक सकते हैं? इसे जानने के लिये 'मैं' में देखना आवश्यक है, तो आपने क्या देखा? क्या आपने 'मैं' में यह देखा कि कोई न कोई कल्पनाशीलता हर समय चलती ही रहती है?
यहाँ तक कि यदि आप पाँच मिनट तक 'मैं' में देखें तो आप पायेंगे कि कुछ 10, 20, 30 कल्पनायें चल रही हैं। आप 'मैं' में पाँच मिनट तक देखने का अभ्यास करें और यह पता करने का प्रयास करें कि आपमें क्या-क्या कल्पनायें चल रही हैं?

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में
(Imagination gets Expressed in Behaviour and Work)

सभी निर्णय हमारी कल्पनाशीलता में ही होते हैं। जैसे दूसरे मानव के साथ व्यवहार से संबंधित निर्णय हमारी कल्पनाशीलता के स्तर पर ही लिये जाते हैं। इसी प्रकार, शेष प्रकृति के साथ जो भी कार्य हम करते हैं, उसके निर्णय भी हमारी कल्पनाशीलता के स्तर पर ही लिये जाते हैं। अतः क्या अब आप यह देख सकते हैं कि सभी निर्णय हमारी कल्पनाशीलता के स्तर पर ही लिये जाते हैं?

आप बाहर व्यवहार-कार्य में कुछ व्यक्त करने या नहीं करने का चयन कर सकते हैं। यह निर्णय भी कल्पनाशीलता के स्तर पर ही लिया जाता है। जब इसे बाहर व्यक्त करने की बारी आती है, तो 'शरीर' का उपयोग यंत्र के रूप में होता है। व्यवहार में, आप अपने मित्र के साथ सम्मान के भाव को, शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने के लिये शरीर का उपयोग करते हैं। शेष प्रकृति के साथ कार्य में भी आप 'शरीर' को शामिल करते हैं, जैसे 'शरीर' के माध्यम से गेहूँ के बीज बोना इत्यादि। आपका व्यवहार या कार्य, आपकी कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसमें 'शरीर' शामिल है।

जब आपकी कल्पनाशीलता आपकी सहज स्वीकृति के साथ संगीत में होती है तो यही स्वयं में संगीत या स्वयं में व्यवस्था अर्थात् स्वयं में सुख की स्थिति की ओर ले जाती है। यदि आपकी कल्पनाशीलता, आपकी सहज स्वीकृति के साथ अंतर्विरोध में होती है, तो यही 'मैं' में अन्तर्विरोध या 'मैं' में अव्यवस्था अर्थात् 'मैं' में दुख की स्थिति की ओर ले जाती है। अतः यह देखना बहुत महत्वपूर्ण है कि आपकी कल्पनाशीलता में क्या चल रहा है अर्थात् अपनी कल्पनाशीलता के बारे में जागरूक होना महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमारे सुख की मूल चाहना इसी पर निर्भर है। हमें इसी को देखना प्रारंभ करना है।

> *हमारे एक मित्र ने इससे संबंधित एक घटना का संदर्भ लेते हुये कहा कि मुझे याद है जब मैंने अध्यापकों के एक समूह के लिये छोटे से कस्बे में चल रही कार्यशाला के प्रतिभागियों से पूछा कि "क्या आप लोग मुझे यह बता सकते हैं कि आपकी क्या इच्छायें हैं?" उनमें से एक प्रतिभागी ने उत्तर दिया कि 'जीते जी अपार सम्पदा और मरने के बाद मोक्ष'। अब ये दोनों इच्छायें तो एक दूसरे की विरोधाभासी हैं। ऐसे में वह व्यक्ति जब अपार संपदा के लिये कार्य कर रहा होगा तो वह चिंतित रहेगा कि उसके मोक्ष प्राप्ति का क्या होगा? और जब वह मोक्ष के लिये कार्य कर रहा होगा तो इस बारे में सोच कर परेशान होगा कि उसकी असीमित संपदा का क्या होगा? वह इस विरोधाभास के साथ दुख की स्थिति में ही रहेगा। क्या आप यह देख पाते हैं?*

जब हम 'मैं' में सहज होते हैं; जब हम 'मैं' में संगीत में होते हैं; जब हम 'मैं' में सुखी होते हैं; तब हमारा व्यवहार और कार्य भी सौहार्दपूर्ण अर्थात् व्यवस्थित हो पाता है। जब हम 'मैं' में असहज होते हैं; जब हम 'मैं' में अव्यवस्थित होते है; जब भ्रम और दुख की स्थिति में होते हैं; तो हमारा व्यवहार और कार्य भी अव्यवस्थित ही होता है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिये हम उस उदाहरण को एक बार और लेते हैं जिसमें कि आप किसी से बदला लेने के बारे में दो घंटे तक सोचते हैं और फिर वह विचार त्याग देते हैं। क्या उस विचार का बाहर कोई क्रियान्वयन हुआ? 'शरीर' के स्तर पर तो कोई क्रियान्वयन नहीं हुआ, व्यवहार के स्तर पर भी कोई क्रियान्वयन नहीं हुआ एवं कार्य के स्तर पर भी कोई क्रियान्वयन नहीं हुआ, हालांकि कल्पनाशीलता के स्तर पर बहुत कुछ हुआ और यही आपके सुख या दुख का स्रोत बना रहा। इन दो घंटों के दौरान जब तक आप बदला लेने के बारे में सोचते रहे, विरोध के बारे में सोचते रहे जो कि आपको सहज स्वीकार्य नहीं है, आप 'मैं' में अन्तर्विरोध की स्थिति में रहे, दुख की स्थिति में रहे। जबकि दूसरे व्यक्ति को तो इसके बारे में कुछ पता भी नहीं चला, क्योंकि आपने बाहर कुछ भी व्यक्त नहीं किया।
इसी तरह जब आप सम्मान के भाव के साथ अपने मित्र के बारे में दो घंटे तक सोचते हैं अर्थात् यह सोचते हैं कि सम्मान के भाव को मित्र के सामने किस प्रकार से व्यक्त किया जाये, तो आप 'मैं' में संगीत में होते हैं क्योंकि सम्मान का भाव आपको सहज स्वीकार्य है। जब आप 'मैं' में संगीत में होते हैं तो ही आप 'मैं' में सुख की स्थिति में होते हैं। निःसंदेह यदि आप अपने मित्र के लिये सम्मान का भाव व्यक्त करते हैं, तो इससे आपका मित्र भी सुखी होता है क्योंकि सम्मान का भाव उसे भी सहज स्वीकार्य है।

आप 'मैं' में चल रही कल्पनाशीलता को देखें और अपने व्यवहार एवं कार्य के रूप में हो रही अभिव्यक्ति के साथ इसके जुड़ाव को भी देखें। यह भी देखें कि आपके व्यवहार से कब उभय सुख होता है? और आपके कार्य से कबउभय समृद्धि होती है?

आप 'मैं' में यह देखें कि आपकी कल्पनाशीलता चल रही है या नहीं? क्या यह निरंतर चल रही है या कोई समय ऐसा भी आता है जब आपकी कल्पनाशीलता नहीं चल रही होती है? क्या आप यह देख पाते हैं कि आपके निर्णय कल्पनाशीलता के स्तर पर ही हो रहे हैं और आपका व्यवहार-कार्य इस कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति मात्र है? क्या आप यह देख पाते हैं कि आप अपने निर्णयों को व्यक्त करने के लिये आवश्यकतानुसार अपने 'शरीर' का उपयोग करते रहते हैं? आप इसके प्रति जागरूक हो भी सकते हैं या नहीं भी, अतः इसे देखना जारी रखें और इसकी जाँच भी करते रहें।

मानव के लिये 'मैं' केंद्र में है और यदि आप 'मैं' में देखें तो इसके केन्द्र में कल्पनाशीलता है ऐसा इसलिये है क्योंकि सुख और दुख कल्पनाशीलता की स्थिति पर निर्भर करते हैं। साथ ही यह कल्पनाशीलता 'मैं' को दूसरे मानव के साथ व्यवहार में एवं शेष प्रकृति के साथ कार्य में बाहरी जगत के साथ भी जोड़ती है। आगे यह 'मैं' में सहज स्वीकृति के साथ भी जुड़ती है। अतः इस दृष्टि से 'मैं' में कल्पनाशीलता केंद्रीय भूमिका में है।

कल्पनाशीलता की स्थिति

(State of Imagination)

प्रथमदृष्टया (पहली बार में) हम कल्पनाशीलता को देखने में कुछ कठिनाई महसूस कर सकते हैं। लेकिन थोड़े से प्रयास के बाद हम उन कल्पनाओं में से कुछ को देख पाते हैं। कई बार थोड़े-थोड़े अंतराल पर हम अपनी कल्पनाशीलता को देख पाने में सफल हो पाते हैं। इनमें से कुछ कल्पनाओं को हम याद रख पाते हैं, कुछ को भूल भी जाते हैं। जब हम उन्हें देखते हैं तो यह पाते हैं कि कुछ कल्पनायें तो परस्पर जुड़ी हुई हैं और कुछ जुड़ी हुई नहीं हैं, बल्कि एक दूसरे के साथ विरोधाभास की स्थिति में हैं।

> *आपको याद होगा कि पहले टेलीविजन पर एक धारावाहिक आता था "मुंगेरीलाल के हसीन सपने"। जिसमें मुंगेरीलाल नाम का एक व्यक्ति दिन में बैठे-बैठे ही दिवा-स्वप्न देखा करता था। इस धारावाहिक के प्रत्येक भाग मे यह दिखाया जाता था कि शुरुआत के एक-दो मिनट तक तो वह अपने कार्यालय के बाहर एक चपरासी है और एक स्टूल पर बैठा है। वही पर बैठे-बैठे अगले बीस-पच्चीस मिनटों के लिये*

वह अपनी कल्पनाशीलता में खो जाता था और आखिरी मिनट में उसे एहसास होता था कि वह तो कार्यालय का चपरासी है और बाहर स्टूल पर बैठा है। इन बीस पच्चीस मिनटों में वह अनेक तरह की मज़ेदार चीज़ों के बारे में कल्पना करता रहता था जैसे कभी अपने को अधिकारी मान कर कल्पना करना या कभी कुछ और।

अब यदि आप 'मैं' अपनी कल्पनाशीलता को देखेंगे तो पायेंगे कि वह मुंगेरीलाल अकेला ही नहीं है जो इस प्रकार की कल्पनायें करता रहता है बल्कि हम सब भी ऐसे ही हैं और एक के बाद एक कल्पना 'मैं' में करते ही रहते हैं, अक्सर उन्हीं में खोये रहते हैं। कई बार हम अपनी कल्पनाओं के बारे में जागरूक होते हैं और कई बार नहीं भी होते हैं। इसी तरह कई बार हम यह भी देख पाते हैं कि यह कल्पनाशीलता जो हम में चल रही है उसका स्रोत क्या है अर्थात् कहाँ से आ रही है और कई बार नहीं भी देख पाते हैं। हम 'मैं' में कल्पनाशीलता को देख पायें या न देख पायें ये हममें से प्रत्येक में चलती ही रहती है।

इस पुस्तक को पढ़ते समय आपकी कल्पनाशीलता में क्या चल रहा है, उसको देखने का प्रयास कर सकते हैं। केवल पाँच मिनट में ही एक के बाद एक, अनेक कल्पनायें चलती रहती हैं। क्या आप इन्हें देख पाते हैं? क्या आप इनके बारे में जागरूक हैं? जब आप पढ़ते हैं तो कितने समय आपका ध्यान पुस्तक में रहता है और कितने समय आप अन्य दूसरी वस्तुओं के बारे में कल्पना करते रहते हैं? क्या आप यह देख पाते हैं कि एक पैराग्राफ को पढ़ते समय, आपको इसे एक से अधिक बार पढ़ना पड़ता है; तब आपको उस पैराग्राफ का आशय स्पष्ट होता है; चाहे वह आपके लिये रुचिकर हो तो भी। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि पढ़ने के बीच में आप अन्य बहुत सी बातों के बारे में कल्पना कर रहे होते हैं। जब आप पढ़ते समय इस पर ध्यान देंगे तो पायेंगे कि आपका ध्यान कहाँ-कहाँ और किन-किन वस्तुओं पर जा रहा है; वास्तव में तो आपका ध्यान ज्यादातर उन्हीं वस्तुओं पर जाता है जिन्हें आपने जाने-अनजाने महत्वपूर्ण मान रखा है। जैसे कई बार ऐसा लगता है कि जो पुस्तक में लिखा है वह महत्वपूर्ण है और कई बार आपको अपना मित्र महत्वपूर्ण लगने लगता है जिसके साथ आप अक्सर सिनेमा देखने जाते हैं।

यही कारण है कि जब हम इस विषय की कक्षायें पढ़ा रहे होते हैं तो महत्वपूर्ण बिंदुओं को कई बार दोहराते हैं। क्योंकि हमें यह पता है कि छात्रों में क्या घटित हो रहा है। उनमें एक कल्पना के बाद दूसरी कल्पना चलती रहती है। जब हम कुछ बोलते हैं या कोई महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखते हैं तो छात्र उसमें से कुछ शब्दों को ग्रहण कर पाते हैं और कुछ को नहीं, क्योंकि उनका ध्यान थोड़े समय तो हमारी बातों पर रहता है, फिर उनमें कोई अन्य कल्पना चलने लगती है और वहाँ से वे किसी और कल्पना में चले जाते हैं। इस तरह कई बार तो वे कक्षा में बैठे-बैठे ही दस-दस मिनटों तक अपनी कल्पनाशीलता में ही खोये रहते हैं और कक्षा में क्या चल रहा है उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता। दस मिनटों के पश्चात जब वे वापस आते हैं तब यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि इस दौरान क्या कहा गया। यदि हमको यह स्पष्ट है कि प्रत्येक छात्र जानना चाहता है, समझना चाहता है और हमें उनकी ध्यान दे पाने की योग्यता के बारे में भी अनुमान है, तो हम इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हैं और उसी के अनुसार ब्लैक बोर्ड पर विषय-वस्तु को लिखे रहने देते हैं और कही गयी बात अर्थात् प्रस्ताव को दस बार, बीस बार या इससे अधिक बार भी दोहराने को तत्पर रहते हैं जिससे कि यदि छात्रों का ध्यान पन्द्रह मिनटों के बाद भी वापस कक्षा में आये तो वे जान सकें कि इससे पहले क्या कहा गया, क्या बातचीत हुई। इस प्रक्रिया से धीरे-धीरे छात्र विषय से जुड़ पाते हैं और इसके महत्व को भी अपने लिये देख पाते हैं, जिससे उनका ध्यान अधिक समय तक कक्षा की चर्चा में रह पाता है और चर्चा तेजी से आगे बढ़ पाती है।
चित्र. 6-2 में कल्पनाशीलता कैसे चलती है, इसका एक उदाहरण दिखाया गया है। जिसमें एक छात्र कक्षा में बैठा हुआ है और उसको अध्यापक ने कुछ कार्य (assignment) दिया है। छात्र दिये गये उस कार्य को अपनी नोटबुक में लिख रहा है। लिखते हुये अचानक उस छात्र को अपने उन मित्रों की याद आती है जो सिनेमा देखने जाने की योजना बना रहे हैं। वह याद करता है कि उसने अंतिम बार अपने

मित्रों के साथ कब सिनेमा देखा था। उसके सामने सिनेमा के हीरो और हीरोइनो के कई दृश्य उभर आते हैं। तभी अचानक डस्टर गिरने की आवाज से उसका ध्यान कक्षा में वापस आ जाता है। ब्लैक बोर्ड, अब तक बीस प्रश्नों से भर चुका होता है। वह अपनी कॉपी देखता है जिसमें अभी तक सिर्फ एक ही प्रश्न लिखा है। वह चौंकता है और प्रश्नों को लिखना शुरु कर देता है। अब उसे लगने लगता है कि वह अध्यापक की गति को नहीं पकड़ पायेगा तो फिर वह सोचने लगता है कि इन प्रश्नों की कॉपी किसी से मिल जाये। वह अपने उन मित्रों के बारे में सोचने लगता है जिनसे कॉपी मिल सकती है। मित्रों पर ध्यान जाते ही उसकी कल्पनाशीलता उन मित्रों के बारे में फिर से चलने लगती है जो कि सिनेमा देखने की योजना बना रहे थे, दोबारा वह फिर सिनेमा की कल्पनाशीलता में वापस पहुँच जाता है। कभी वह छात्र सोचता है कि वह एक वैज्ञानिक बनना चाहता है जिसके पास घर के नीचे बेसमेंट में एक लैब हो। और कभी वह यह भी चाहता है कि उसका बहुत अच्छा परिवार हो। और कभी यह सोचने लगता है कि परीक्षा में अच्छे अंक (ग्रेड) भी आने चाहिये। और इसी प्रकार उसके अंदर एक के बाद एक कई कल्पनायें चलती रहती हैं। इस बिंदु पर आप अपनी इच्छा, विचार और आशा को पहचानने का प्रयत्न कर सकते हैं। एक इच्छा के लिये कई विचार हो सकते हैं जिनमें से किसी एक का चयन फिर उसका और अधिक विश्लेषण, इस तरह ये प्रक्रिया आगे बढ़ती रहती है। इसमें आप चयन और तुलना के आधार को भी पहचानने का प्रयत्न कर सकते हैं।

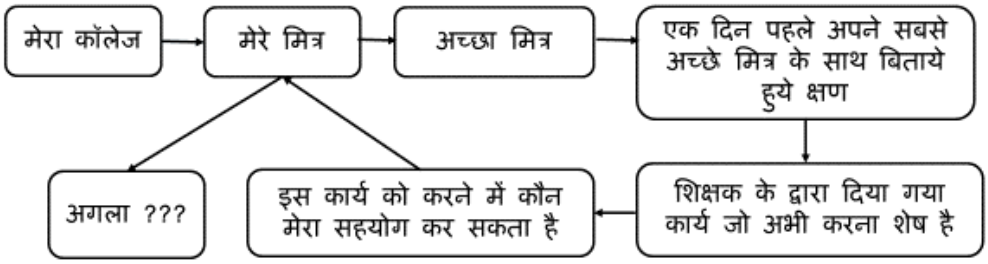

चित्र. 6-2. कल्पनाशीलता का रेखांकन

यदि आप 'मैं' की कल्पनाशीलता को देखने का प्रयत्न करें तो अपने अंदर चल रही क्रियाओं के बारे में कुछ अनुमान लगा पायेंगे। यह भी देख पायेंगे कि आप 'मैं' ही अपनी कल्पनाशीलता की विषय-वस्तु का निर्धारण कर रहे हैं। धीरे-धीरे यह भी स्पष्ट होगा कि आपकी कल्पनाशीलता उन बिंदुओं पर अधिक देर तक चलती है, जिन्हें आपने मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण माना है। जब आप यह अभ्यास करेंगे तो यह भी देखेंगे कि आपकी कई कल्पनायें एक दूसरे के साथ संगीत में हैं, और कई एक दूसरे के विरोध में हैं, और कई आपकी सहज स्वीकृति के विरोध में हैं।

जाँच कर देखिये कि जब आप की कल्पनायें एक दूसरे के विरोध में होती हैं तो आप सहज महसूस करते हैं या असहज? आप पायेंगे कि जब आपकी कल्पनाशीलता आपकी सहज स्वीकृति के अनुसार होती है तो ही आप सुखी होते हैं। ऐसे ही जब कल्पनाशीलता एक दूसरे के साथ संगीत में होती है तब आप सुखी होते हैं। 'मैं' में यह देखना बहुत महत्वपूर्ण है; इससे यह संकेत मिलता है कि आपका सुख और दुख, आपकी कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है! यदि आप अपनी कल्पनाशीलता के प्रति जागरूक नही हैं तो भी वह चलती ही रहती है जिससे आप 'मैं' में सुखी या दुखी महसूस करते रहते हैं, ये सब आप में चलता ही रहता है चाहे आप इस पर ध्यान दें या न दें।

एक बार जब आप अपनी कल्पनाशीलता को देखना प्रारंभ करते हैं और अपनी इच्छा, विचार और आशा के प्रति जागरूक हो पाते हैं तो आप अपनी कल्पनाशीलता की स्थिति को देखने के योग्य हो जाते हैं। चित्र. 6-3 का संदर्भ लीजिये। आपकी कल्पनाशीलता व्यवस्थित अर्थात् संगीतमय हो सकती है या संगीत और अन्तर्विरोध

का मिश्रित रूप भी हो सकती है। यह आपकी सहज स्वीकृति के साथ संगीत में या अंतर्विरोध में भी हो सकती है।

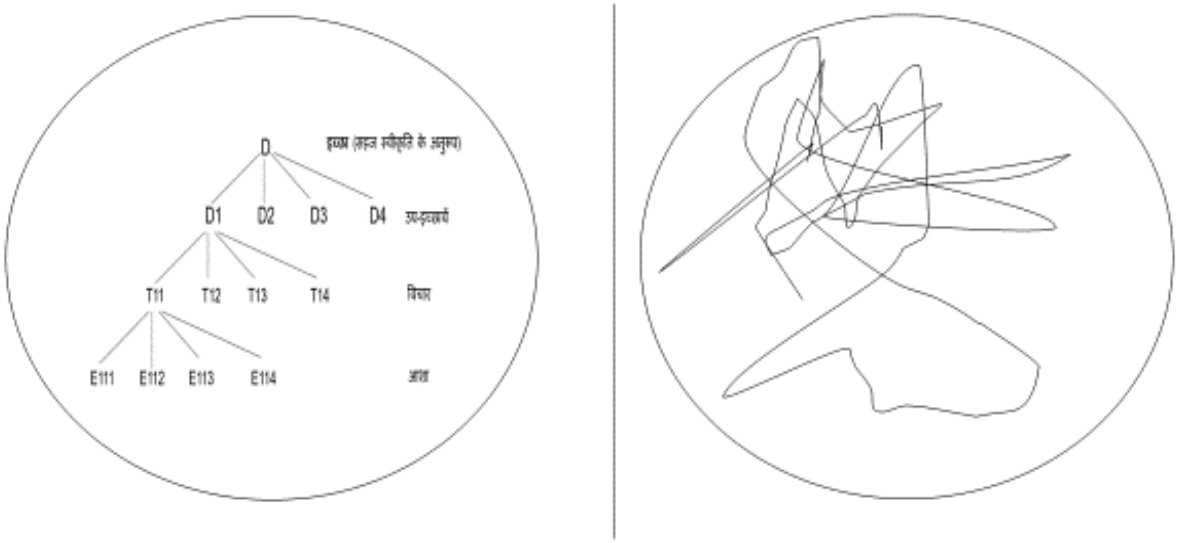

व्यवस्थित कल्पनाशीलता *अव्यवस्थित कल्पनाशीलता*

चित्र. 6-3. कल्पनाशीलता की स्थिति – व्यवस्था में अथवा अव्यवस्था में

आपने क्या पाया? आपकी कल्पनाशीलता व्यवस्थित है या अव्यवस्थित? या ऐसा लग रहा है कि कुछ भी नहीं चल रहा है; या जो चल रहा है, आप उसके प्रति जागरूक ही नही हैं?
यह कल्पनाशीलता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे सभी निर्णय यहीं पर लिये जाते हैं! जो भी हम महसूस करते हैं, जो भी हम सोचते हैं, जो भी हम करते हैं, वह सब यहीं निर्धारित होता है। कल्पनाशीलता की स्थिति से हमें अपने जीवन के बारे में बहुत सटीकता से पता चल पाता है। यदि कल्पनाशीलता सुव्यवस्थित और संगीत में है, तो जीने में भी व्यवस्था होगी, अर्थात् जीना सुखमय होगा। दूसरी तरफ यदि कल्पनाशीलता अव्यवस्थित है तो जीना भी वैसा ही अव्यवस्थित होगा अर्थात् कभी सुख होगा और कभी दुख होगा।

यह जानने का प्रयत्न करें कि आपकी कल्पनाशीलता की वर्तमान स्थिति क्या है, और आपको कौन सी स्थिति सहज स्वीकार्य है? इससे आपको 'मैं' के बारे में कुछ अनुमान लग पायेगा।

कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज स्वीकृति
(Possible sources of Imagination - Preconditioning, Sensation and Natural Acceptance)

कल्पनाशीलता का बीज या जड़, इच्छा है। जैसा कि हमने देखा, छोटी सी इच्छा, विचारों में फैलती है एवं आशा के स्तर तक और विस्तृत होती जाती है। यदि हम अपनी इच्छा के प्रति जागरूक हैं, तो इससे पहले कि कल्पनाशीलता में इसका और अधिक विस्तार हो हम जाँच सकते हैं कि यह हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप है या नहीं।

अब अगला प्रश्न यह है कि हम जिस इच्छा की जाँच करना चाहते हैं, वह आ कहाँ से रही है? यदि आप अपनी इच्छा को चिन्हित करने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं तो अपनी कल्पनाशीलता की विषय-वस्तु को समग्रता में

देखें। वास्तव में हम यह जानना चाहते हैं कि हमारी कल्पनाशीलता किस स्रोत से प्रेरित हो रही है? यदि हम इस इच्छा, विचार और आशा को देखें कि इनका स्रोत या प्रेरणा क्या है? इन्हें कौन निर्धारित कर रहा है? क्या हम स्वयं इन्हें निर्धारित कर रहे हैं या कोई और निर्णय ले रहा है जैसे माता-पिता, परिवार के सदस्य, मित्र, अध्यापक, या सामाजिक वातावरण इत्यादि?

उदाहरण के लिये, आप कक्षा में प्रथम आना चाहते हैं। क्या यह वास्तव में आपकी ही इच्छा है? क्या आपने इसे स्वयं तय किया है या आपके माता-पिता ने; या आपके अध्यापक के या आपके मित्रों के या सामाजिक वातावरण के प्रभाव के द्वारा यह निर्धारित हुआ है? सामान्यतः हम यह प्रश्न पूछते ही नहीं हैं कि इच्छायें आखिर आ कहाँ से रही हैं? ऐसा लगता है कि इनको हम ही तय कर रहे हैं, परंतु जब हम गहराई में जाकर स्वयं से प्रश्न पूछते हैं कि ये इच्छायें कहाँ से आई हैं? तो हम यह जान पाते हैं कि ये हमारे परिवार, अध्यापकों, मित्रों इत्यादि से आती हैं।

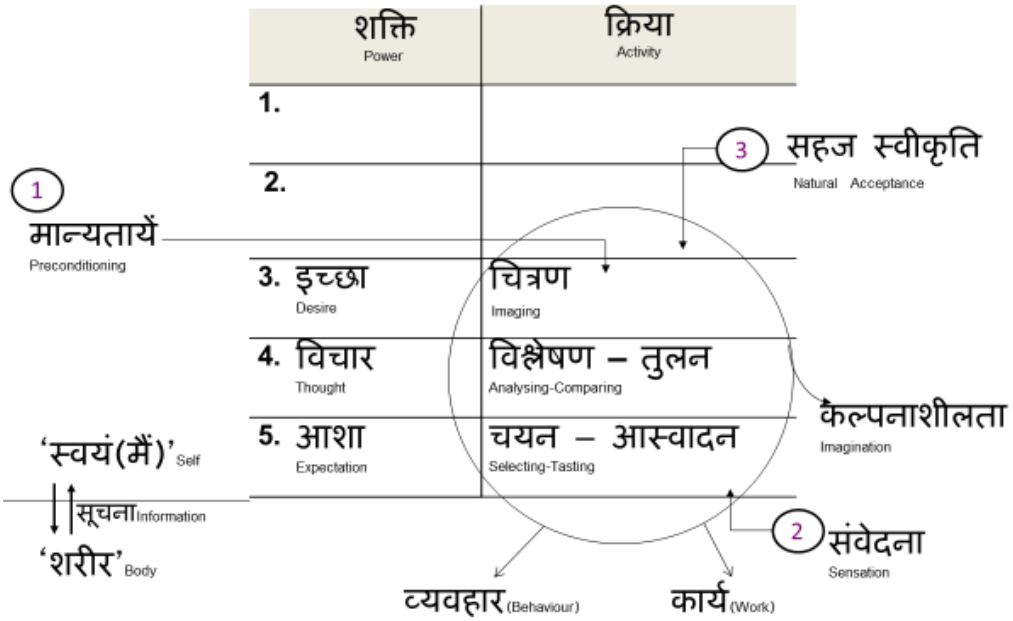

चित्र. 6-4. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत

यदि आप इसे 'मैं' में देखेंगे (संदर्भ चित्र. 6-4.) तो आप पायेंगे कि कल्पनाशीलता निम्न तीन स्रोतों से प्रेरित हो सकती है:

1. मान्यता
2. संवेदना
3. सहज स्वीकृति

कल्पनाशीलता के प्रेरित होने के स्रोत के रूप में मान्यतायें

(Preconditioning as a Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला एक प्रभावशाली स्रोत मान्यता है। मान्यता का अर्थ पूर्वाग्रह, सोच, अवधारणा, रीति-रिवाज, नजरिया, कहावतें इत्यादि से है। इन्हें कोई व्यक्ति स्वयं चुनता है या परिवार, समाज में ये प्रचलित होती हैं और इनसे हमारी कल्पनाशीलता प्रभावित होती रहती हैं। उदाहरण के लिये यदि माता-पिता दस बार यह कहें कि आप को कक्षा में प्रथम आना है तो आपकी इच्छा में यह बात एक मान्यता के रूप में आ जाती है कि कक्षा में प्रथम ही आना है। यदि आपके मित्र भी कहते हैं कि आप को कक्षा में प्रथम आना है और आपके अध्यापक भी यही कहें कि आप को कक्षा में प्रथम आना है तो आपकी कक्षा में प्रथम आने की इच्छा और भी दृढ़ हो जाती है। हमारे समाज में, परिवार में, विद्यालय में, और हमारे चारों तरफ जो भी पूर्वाग्रह, सोच,

अवधारणायें, रीति-रिवाज, दृष्टियाँ, कहावतें इत्यादि हैं, उन्हें बिना स्वयं के द्वारा जाँचें स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति ही मान्यता है।

यदि आप स्वयं से पूछें कि क्या आप कक्षा में प्रथम आना चाहते हैं या कक्षा में जो कुछ भी पढ़ाया गया है वह आपको समझ में आ जाये यह चाहते हैं, तो आपको स्वयं में क्या उत्तर मिलता है? आपकी सहज स्वीकृति क्या है? इन दिये हुये सभी विकल्पों में से आप कक्षा में जो भी पढ़ाया जा रहा है उसे समझना चाहते हैं, क्योंकि यह आपकी सुख और समृद्धि के साथ जुड़ता है और यही आपकी सहज स्वीकृति भी है। यद्यपि आप कक्षा में प्रथम आने की इच्छा भी रखते हैं, क्योंकि कहीं न कहीं इसे आपने अपने सुख से जोड़ना शुरू कर लिया है या माता-पिता, अध्यापक, मित्र या आस-पास के समाज के दबाव में आप ने ऐसा प्रयास करना प्रारंभ कर दिया है। यह आपकी सहज स्वीकृति नहीं हो सकती, लेकिन आपने 'मैं' में जाँचे बिना ही इसे अपनी इच्छा बना लिया है।

इस तरह आप यह देख सकते हैं कि आपकी इच्छाओं का बहुत बड़ा प्रतिशत मान्यताओं के द्वारा प्रेरित हो रहा है। इसमें आपकी सहज स्वीकृति नहीं होती है, लेकिन आप ने इन्हें किसी विशेष दबाव या प्रभाव में अपनी इच्छा बना लिया है और उसके बारे में जागरूक भी नहीं हैं। यदि आप इनके बारे में जागरूक नहीं हैं तो भी ये आपके लिये दुखदायी हो सकती हैं क्योंकि ये आपको गलत दिशा में ले जायेंगी और आप इसे देख भी नहीं पायेंगे। वास्तव में थोड़ी सी जागरूकता से हम यह देख पायेंगे कि हम जिस तरह के कपड़े पहनते हैं, जिस तरह के भोजन का चयन करते हैं, जिस तरह से बात करते हैं, जिस तरह से व्यवहार करते हैं.... इनमें से अधिकांशतः के बारे में निर्णय अभी हम अपनी मान्यताओं से प्रेरित होकर ही लेते हैं।

> *इसी सन्दर्भ में हमारे एक मित्र ने, भारत की मेट्रो सिटी से जुड़ा हुआ एक उदाहरण बताया जहाँ लगभग 15 वर्ष पहले वो गये थे। वहाँ वे अपने एक मित्र के साथ किसी से मिलने उनके घर जा रहे थे। मेट्रो-ट्रेन में उन्होंने देखा कि बहुत से युवा फटी हुई जींस पहने हुये हैं। यह देखकर वे बहुत आश्चर्यचकित हुये कि क्या यही मेट्रो सिटी है जहाँ इतना अधिक आर्थिक संकट है कि लोग फटे हुये कपड़े पहनने को बाध्य हैं? उन्होंने अपने मित्र से पूछा कि क्या इस शहर में लोग इतने अधिक आर्थिक संकट में हैं कि इनको इस तरह के फटे हुये कपड़े पहनने की आवश्यकता पड़ रही है? उनके मित्र भी आश्चर्यचकित हुये और पूछने लगे कि क्या हुआ? मेरे मित्र ने कहा 'देखो यहाँ ज्यादातर लोग फटे हुये कपड़े ही पहने हैं, इनकी जींस नीचे से फटी हुई है'। इस पर उनके मित्र हंसें और उन्होंने जवाब दिया कि क्या आप नहीं जानते, 'अरे यह तो आज-कल का फैशन है'? यह तो मेरे मित्र की आशा के बिल्कुल विपरीत था और वे सोचने लगे कि यदि इन्हें फटे हुये कपड़े ही पहनने हैं तो इनको सिलवाने की क्या आवश्यकता है? लेकिन आप तो जानते ही हैं कि यह फैशन है और इस फैशन की जड़ें चारों तरफ फैली हुई मान्यताओं से जुड़ी हैं, इन्हीं मान्यताओं के कारण आदमी फटे हुये कपड़े तक पहनने को तैयार हो जाते हैं, कभी-कभी तो वे पहले कपड़े सिलवाने के लिये भुगतान करते हैं और फिर उसको फाड़ने के लिये भी भुगतान करते हैं। इसी प्रकार से ऊँची एड़ी का फैशन, छोटी एड़ी का फैशन इत्यादि ये हर चार-छः महीने में बदलते रहते हैं। अतः हमारी मान्यतायें बदलती रहती हैं और उसी अनुसार हम अपने वस्त्र और जूते भी बदलते रहते हैं। क्या यह आपके साथ भी घटित हुआ है? जाँच कर देखें? आप अपने व्यवहारिक अनुभव से कई निष्कर्ष निकाल पायेंगे।*

हमारी मान्यतायें, हमारी इच्छा, विचार और आशा का निर्धारण करती रहती हैं। क्या आप यह देख सकते हैं? प्रचलित मान्यतायें, हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने का एक मुख्य स्रोत हैं।

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के स्रोत के रूप में संवेदना
(Sensation as Another Source of Motivation for Imagination)

हमारी इच्छा और हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत संवेदना है। संवेदना एक तरह की सूचना है जिसे हमारा 'मैं', हमारे 'शरीर' के पाँचों संवेदी तंत्रों, जैसे ध्वनि (कानों के द्वारा), स्पर्श (त्वचा के द्वारा), रूप (आँखों के द्वारा), रस (जीभ के द्वारा), और गंध (नाक के द्वारा) से प्राप्त करता है। उदाहरण के लिये यदि आप सड़क पर जा रहे हैं और आप एक चमकदार कार को सामने से गुजरते हुये देखते हैं तो आपकी कल्पनाशीलता में यह चलने लगता है कि एक दिन मैं भी ऐसी ही कार खरीदूँगा। अब आप, उस कार को खरीदने की इच्छा करने लग जाते हैं, क्योंकि आपको उसका रंग पसंद आ गया है या उसकी बनावट या उसकी गति या कुछ और पसंद आ गया है। चूंकि किसी संवेदना का आपके ऊपर प्रभाव पड़ा और इसलिये आपमें उस कार के लिये इच्छा बन गयी। क्या ऐसा आपमें घटित होता है?

हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने में संवेदना की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है। देखिये कि हममें भी क्या इसी प्रकार से कुछ घटित होता है? हमारी बहुत सी इच्छाओं का निर्धारण संवेदनाओं के आधा पर ही होता है, जिसे हम अपने संवेदी अंगों के माध्यम से आने वाली सूचना के रूप में प्राप्त करते हैं और फिर हम उन्हीं इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रेरित भी हो जाते हैं बिना यह जाँचे की इनसे निरंतर सुख होगा या नहीं। जैसे कि आप कोई विशेष प्रकार का भोजन खाना चाहते हैं और उसका स्वाद आपको रेस्टोरेंट में जाने के लिये बार-बार प्रेरित करता रहता है। आपने कोई संगीत (music) सुना है जिसमें कोई धुन या किसी गायक की मधुर आवाज सुनी है जो आपके विचारों में चलती रही है और आप उस संगीत को बार-बार सुनने के लिये प्रेरित होते रहते हैं। आपका कोई मित्र बहुत मुलायम गर्म कपड़े खरीद कर लाया था, जिनको आपने भी स्पर्श किया था, तब से आपकी इच्छा में भी बार-बार वैसे ही कपड़े खरीदने का विचार आता रहता है। आपका पड़ोसी किसी विशेष प्रकार के इत्र का प्रयोग करता है, जिसकी गंध आपको भी पसंद आती है तो आपकी इच्छा शॉपिंग मॉल में उस परफ्यूम को ढूंढ कर लाने की होने लगती है। आप किसी दूसरे व्यक्ति जैसा दिखना पसंद करने लगते हैं, जैसे आप अपने किसी बहुत अच्छे मित्र जैसा बनना चाहते हैं। अब आप स्वयं ही देख सकते हैं कि आपमें संवेदना पर आधारित इच्छाओं का संग्रह हो रहा है, बिना इनके सत्यापन के और बिना यह जाने कि ये कहाँ से आ रही हैं।
ये दोनों हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के प्रमुख स्रोत हैं; पहला मान्यतायें और दूसरा संवेदनायें।

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाली सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत सहज स्वीकृति
(Natural Acceptance as the Most Authentic Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने का तीसरा स्रोत हमारी सहज स्वीकृति है। कुछ लोग इसे अपनी अंतरात्मा की आवाज या अंतःकरण भी कहते हैं। अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जांच करना तीसरा संभावित स्रोत है। वर्तमान में यह स्रोत, आप में कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के सर्वाधिक प्रभावकारी स्रोत के रूप में हो भी सकता है या नहीं भी। लेकिन यही हमारी इच्छाओं और हमारी कल्पनाशीलता को सही रूप में प्रेरित करने वाला एक प्रामाणिक स्रोत है, जो हमेशा हम सभी में प्राकृतिक रूप से बना ही रहता है, चाहें हम इसका संदर्भ लें या न लें।
जाँचने का प्रयास करें कि आपकी सहज स्वीकृति क्या है:

- दूसरों का सम्मान करना या अपमान करना?
- अपने 'शरीर' की सुरक्षा करना या 'शरीर' को हानि पहुँचाना?
- ऐसा भोजन करना जिससे आपके 'शरीर' का पोषण हों या ऐसा भोजन करना जो आपके 'शरीर' को हानि पहुँचाता हो?

यदि हम अपनी सहज स्वीकृति के बारे में जागरूक हैं और अपनी कल्पनाशीलता के बारे में भी जागरूक हैं, तो हम ऐसा चुनाव कर सकते है, जो हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप हो। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे इस तीसरी संभावना के बारे में और अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।
अभी तक हमने अपनी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीनों संभावित स्रोतों पर चर्चा की है। पहला संभावित स्रोत है **प्रचलित मान्यतायें**, दूसरा **संवेदनायें** और तीसरा अपनी **सहज स्वीकृति** के आधार पर स्व-सत्यापन। क्या आप अपने लिये यह देख पा रहे हैं?

तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता? (Consequences of Imagination from the three Source - Self-organisation or Enslavement?

जाँच करके देखिये कि आपकी जो भी इच्छायें हैं, उनमें से कितने प्रतिशत इच्छायें, मान्यताओं या संवेदनाओं से प्रेरित हैं और कितने प्रतिशत इच्छायें, आपकी सहज स्वीकृति से प्रेरित हैं?

आप देख सकते हैं कि जब तक आपकी इच्छायें मान्यताओं से आ रही हैं तब तक आप निश्चित नहीं हो सकते कि यह आपकी सहज स्वीकृति के साथ संगीत या व्यवस्था में हैं या नहीं; और यह भी निश्चित नही हो सकता कि इन इच्छाओं के साथ आप 'मैं' में संगीत में है या अन्तर्विरोध में। परिणाम स्वरूप आप 'मैं' में सुख की स्थिति में हैं या दुख की स्थिति में, यह भी सुनिश्चित नहीं हो सकता।

इसी तरह से जब संवेदना के आधार पर इच्छा हो तो भी यह सुनिश्चित नहीं हो सकता कि वो इच्छा हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप है या नहीं। अतः आप इस बारे में भी आश्वस्त नहीं हो पाते कि इससे 'मैं' में सुख और संगीत की स्थिति होगी या दुख और अन्तर्विरोध की स्थिति।

अध्याय-4 में, सुख की प्रचलित मान्यताओं के बारे में जो चर्चा हुई थी उसे याद कीजिये, जिसमें रुचिकर संवेदना को सुख का अभिप्राय माना गया था। इस सन्दर्भ में अब आप यह देख सकते हैं कि कुछ समय पश्चात हम ऐसी किसी भी रुचिकर संवेदना के भोग से ऊब जाते हैं और उसमें कुछ बदलाव चाहने लगते हैं। जैसे हम टेलीविजन के चैनलों को बार-बार बदलते रहते हैं, मीठे से नमकीन फिर नमकीन से मीठे व्यंजनों में भी बार-बार बदलाव करते रहते हैं, एक प्रकार के संगीत (music) से दूसरे प्रकार के संगीत (music) में रुचि लेने लगते हैं इत्यादि। अब आप यह देख सकते हैं कि कोई विशेष प्रकार की संवेदना आपके स्वाद के अनुरूप तो हो सकती है, लेकिन हम इसकी निरंतरता नहीं चाहते क्योंकि यह 'मैं' में व्यवस्था (harmony) सुनिश्चित करेगी यह आवश्यक नहीं है।

इसी तरह दूसरों से अच्छे भाव पाकर हम सुखी हो सकते हैं, अब इसका मूल्यांकन भी कर सकते हैं। दूसरों से मिलने वाले भाव का आस्वादन हमें पसंद है, किन्तु यह 'मैं' में व्यवस्था सुनिश्चित करेगा यह आवश्यक नहीं है। इससे 'मैं' में सही-समझ और सही-भाव सुनिश्चित होगा यह भी आवश्यक नहीं है। इस भाव के आस्वादन का सुख बहुत ही अल्पकालिक होता है। आप ऐसे व्यक्तियों का अवलोकन करके देखिये, जिनकी ऐसी मान्यतायें होती हैं। वे हमेशा दूसरों के द्वारा स्वीकार किये जाने की आशा करते रहते हैं। जैसे कोई पति यह चाहता है कि उसकी पत्नी हर समय केवल उसी पर पूरा ध्यान देती रहे। पत्नी यह आशा करती है कि उसका पति प्रत्येक बार पहली घंटी पर ही फोन उठा ले, उसके संदेशों का तुरंत ही जवाब दे और हर बार वह जिनसे भी मिल रहा है उनके बारे में ज़रूर बताये इत्यादि। इस प्रकार की आशायें इस बात का सूचक हैं कि हम दूसरों से मिलने वाले भाव को अपने सुख के स्रोत के रूप में देखते हैं।

जब आपकी इच्छायें केवल सहज स्वीकृति के आधार पर हों, तभी 'मैं' में व्यवस्था सुनिश्चित हो सकती है क्योंकि यही कल्पनाशीलता आपकी सहज स्वीकृति के अनुरूप होती है। 'मैं' में व्यवस्था की स्थिति में होना ही सुख है। 'मैं' के स्तर पर व्यवस्था को सुनिश्चित करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारी सभी इच्छाओं, विचारों और आशाओं, एवं सभी कल्पनाशीलता को अपनी सहज स्वीकृति के अनुरूप कर लिया जाये।
निश्चित आचरण का भी यही अर्थ है। इसमें हम अपनी सहज स्वीकृति को देख पाते हैं। हमारी सहज स्वीकृति, हमारी कल्पनाशीलता के साथ व्यवस्था में होती है, इसलिये 'मैं' में व्यवस्था अर्थात् सुख की स्थिति होती है। हमारा व्यवहार और कार्य भी अब हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप होता है। निश्चित मानवीय आचरण से हमारा तात्पर्य यही है।

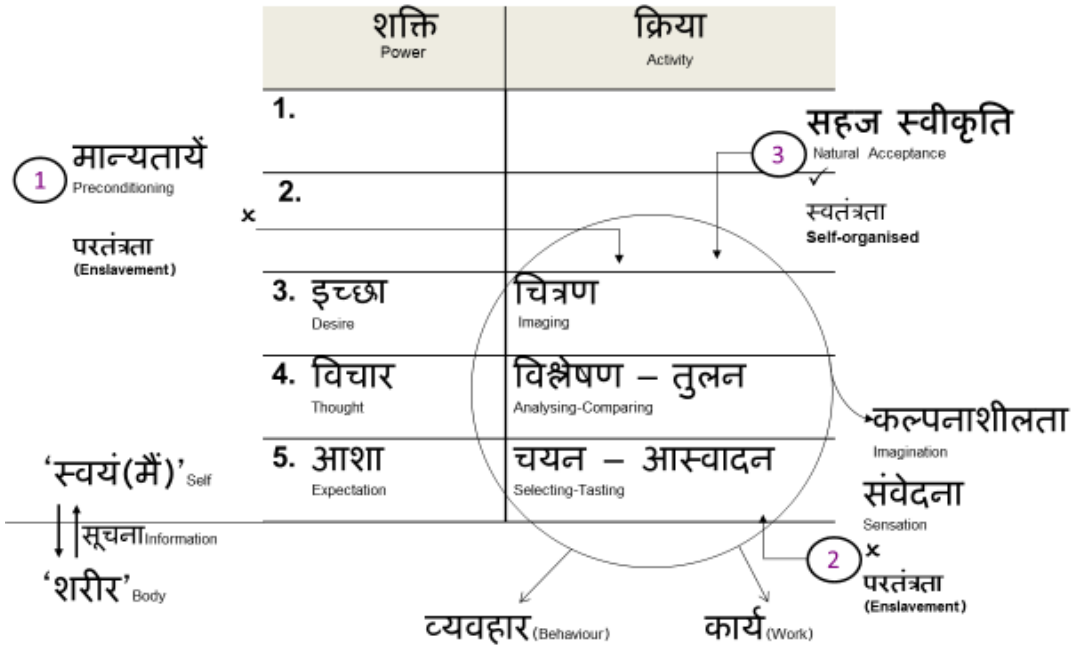

चित्र. 6-5. तीनों स्रोतों पर आधारित कल्पनाशीलता का परिणाम

अब आप स्वयं से ये पूछिये कि आपकी जो इच्छायें, किन्हीं मान्यताओं से प्रेरित हैं, क्या वास्तव में ये आपकी ही इच्छायें हैं या कहीं बाहर से आप में आ गयी हैं। जैसे फटे हुये कपड़े पहनने की इच्छा (यह दिखाने के लिये कि आप आधुनिकतम फैशन के साथ हैं) को कौन निर्धारित कर रहा है? क्या वास्तव में यह आप तय कर रहे हैं? क्योंकि, यदि आपने अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर निर्धारित किया होता, तो क्या आप 'शरीर' की सुरक्षा करने वाले और समाज में भी स्वीकार्य कपड़ों का चयन नहीं करते? अगर हम इसे गहराई में देखें तो ये समाज में प्रचलित मान्यतायें ही हैं, जिनके आधार पर यह निर्धारित हो रहा है कि कोई फटे हुये कपड़े पहने, न कि उनकी सहज स्वीकृति के आधार पर। अतः इसका निर्धारण कोई दूसरा ही कर रहा है, न कि आप स्वयं! इस दृष्टि से, आपका निर्णय दूसरे व्यक्तियों के द्वारा निर्देशित हो रहा है। चित्र. 6-5. का संदर्भ लें। यह परतंत्रता अर्थात् दासता की स्थिति है। जो यह संकेत देती है कि हम अपनी मान्यताओं के द्वारा निर्देशित हो रहे हैं!

इसी प्रकार, स्वयं से पूछिये कि आपकी वो इच्छायें जो संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित हो रही हैं, क्या वास्तव में ये आपकी ही इच्छायें हैं या ये भी कहीं बाहर से आप में आ गयी हैं? संवेदना के आस्वादन से प्रेरित भोजन करने का निर्णय लेना, बिना जाँचे कि यह आपके 'शरीर' का पोषण कर रहा है या नहीं, ऐसा निर्णय कौन ले रहा है? क्या यह वास्तव में आप ही हैं? क्योंकि, यदि आपने इसे निर्धारित किया होता, तो आप ऐसा भोजन चुनते जो आपके 'शरीर' का पोषण भी करता और स्वादिष्ट भी होता। यदि आप ध्यान से देखें तो यह संवेदना का

आस्वादन है, जो आपकी सहज स्वीकृति पर हावी हो रहा है। इस दृष्टि से यह निर्णय 'शरीर' की संवेदना के आस्वादन के द्वारा निर्देशित हो रहा है। यह भी परतंत्रता अर्थात् दासता की ही स्थिति है। जो यह संकेत देती है, कि हम अपनी स्वयं की संवेदनाओं के आधीन हैं!

अब आप स्वयं से पूछें कि आपकी जो इच्छायें सहज स्वीकृति पर आधारित हैं, वह वास्तव में आपकी ही हैं या कहीं बाहर से आयी हैं? जैसे यदि आपने अपने जूतों का चयन यह देखकर किया है कि जूते आपके पैरों की सुरक्षा कर सकें और उनकी बनावट आपके पैरों के अनुकूल हो तो यह आपकी सहज स्वीकृति के अनुसार है। इस प्रकार की इच्छाओं में चयन, दूसरे लोगों या बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता है। जैसे यहाँ पर नुकीले जूतों का आधुनिकतम फैशन, ऊंची एड़ी के जूतों का फैशन या चमकीले जूतों का फैशन इत्यादि आपके निर्णय को प्रभावित नहीं कर रहे हैं। आपका उत्तर यदि सकारात्मक अर्थात् **'हाँ'** है तो सहज स्वीकृति पर आधारित यह इच्छायें, वास्तव में आपकी इच्छायें हैं। इस प्रकार की इच्छायें आपकी मूल चाहना अर्थात् उभय सुख औरउभय समृद्धि के अनुरूप होती हैं। यह केवल आपको ही नहीं बल्कि दूसरों को भी सहज स्वीकार्य होती हैं। यह अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार व्यवस्थित होने की स्थिति है, अर्थात् 'स्वतंत्र' होने की स्थिति है।

स्वतंत्र होने का आशय मनमानी नहीं है। सामान्यतः, स्वतंत्रता का अर्थ यही लिया जाता है कि व्यक्ति की जैसी भी इच्छा हो वैसा करने का अवसर हो। स्वतंत्रता शब्द का दूसरा प्रचलित अर्थ यह भी लिया जाता है कि किसी भी प्रकार के बंधनों से मुक्त होना। जैसा कि अब हम यह देख सकते हैं कि हमारी इच्छायें बड़े पैमाने पर मान्यताओं एवं संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित होती हैं, तो कोई ऐसी इच्छा भी हो सकती है कि पूरी कक्षा को एक दिन छुट्टी कर लेने के लिये दबाव बनाया जाय। क्या आप इस प्रकार की गतिविधि को स्वतंत्रता का सूचक मानते हैं? यहाँ पर स्वतंत्रता शब्द का उपयोग 'स्वयं में व्यवस्था' पूर्वक जीने को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी को स्वीकारने के अर्थ में किया गया है। और इस तरह की अर्थात् अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार इच्छाओं से जुड़ी हुई जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुये मैं सुखी भी होता हूँ। इसका अर्थ 'मैं' में व्यवस्था और बाहर भी व्यवस्था में जीना है। यदि हम अपने सहपाठियों को जो कुछ भी पढ़ाया जा रहा है उसे समझने में सहयोग करें तो यह व्यवस्था के अर्थ में है। कोई व्यक्ति ऐसा तभी कर सकता है जब वह अपनी सहज स्वीकृति के द्वारा निर्देशित हो रहा हो अर्थात् वह सही अर्थ में स्वतंत्र हो।

इस अभ्यास, जिसमें हम 'मैं' में संग्रहित इच्छाओं को जाँचते हैं कि वे मान्यता, संवेदना या सहज स्वीकृति के आधार पर आ रही हैं; से हमें 'मैं' की स्थिति का एक अनुमान लगता है कि हम स्वतंत्र हैं या परतंत्र। दूसरे शब्दों में इससे हमें यह अनुमान मिलता है कि 'मैं' में कितनी व्यवस्था है और कितनी अव्यवस्था है; हम 'मैं' में कितना सुख की स्थिति में हैं और कितना दुख की स्थिति में हैं। इससे "जैसा हम हैं" इसके बारे में एक संतोषजनक अनुमान मिल पायेगा। इससे हमें इसके बारे में भी एक अच्छा अनुमान मिल पायेगा कि स्वतंत्रता की स्थिति के लिये अर्थात् 'मैं' में समग्र व्यवस्था और निरंतर सुख की स्थिति तक पहुँचने के लिये और क्या-क्या करने की आवश्यकता है?

आगे की कक्षा में-
इस अध्याय में हमने 'मैं' की क्रियाओं एवं कल्पनाशीलता को देखने का प्रयास किया है। कल्पनाशीलता मैं में निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। जब हमारी कल्पनाशीलता सहज स्वीकृति के आधार पर चलती है, तब हम सुखी होते है अन्यथा सुख की निरन्तरता नहीं हो पाती। कक्षा 10 में हम स्वयं की व्यवस्था को और विस्तार पूर्वक समझेंगें कि स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के द्वारा किस प्रकार 'मैं' का विकास सम्भव है।

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

- मानव के केंद्र में, 'मैं' है। प्रत्येक निर्णय 'मैं' के द्वारा ही लिया जाता है और यदि आवश्यक होता है तो 'शरीर' को एक यंत्र की तरह उपयोग करके उस निर्णय को परस्परता में अभिव्यक्त किया जाता है।
- 'मैं' अपनी चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन में निरंतर क्रियाशील रहता है।
- 'मैं' में इच्छा-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये चित्रण की क्रिया सदैव चलती रहती है। इसमें विचार-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये तुलन के आधार पर विश्लेषण की क्रिया सदैव चलती रहती है। इसमें आशा-शक्ति निरंतर बनी रहती है, इसीलिये आस्वादन के आधार पर चयन की क्रिया सदैव चलती रहती है।
- ये सभी क्रियायें मिलकर कल्पनाशीलता कहलाती हैं। कल्पनाशीलता, 'मैं' में निरंतर चलती ही रहती है।
- सभी इच्छायें, सभी निर्णय, सभी चयन, कल्पनाशीलता में ही होते हैं। यह मानव के साथ व्यवहार के रूप में और शेष प्रकृति के साथ कार्य के रूप में व्यक्त होते हैं, जिसमें 'शरीर' का यंत्र के रूप में उपयोग होता है। कल्पनाशीलता, व्यवहार और कार्य से जुड़ती है। इस दृष्टि से कल्पनाशीलता (संग्रहित संस्कार) 'मैं' के केंद्र में है।
- सुख या दुख कल्पनाशीलता की विषय-वस्तु अर्थात् संस्कार पर निर्भर करता है। यदि यह हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप हैं, तो 'मैं' में संगीत होगा जो कि सुख की स्थिति है और यदि यह हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है, तो 'मैं' में अन्तर्विरोध होगा जो कि दुख की स्थिति है।
- कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यतायें, संवेदनायें और सहज स्वीकृतियाँ। मान्यताओं का अर्थ परिवार और समाज में प्रचलित धारणायें, प्रतीक, रीति-रिवाज, दृष्टिकोण इत्यादि से हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रभावित कर सकते हैं। संवेदनायें वो सूचनायें हैं जो 'शरीर' के पाँचों संवेदी अंगों के माध्यम से मिलती हैं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के रूप में मिलती हैं। सहज स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन से सही-समझ की तरफ बढ़ते हैं, जो कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला तीसरा स्रोत है।

अभ्यास 1

स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना

स्वयं (मैं, चैतन्य) के द्वारा स्वयं (मैं, चैतन्य) को देखना

जीवन शक्तियों का अन्तःनियोजन /प्रत्यावर्तन

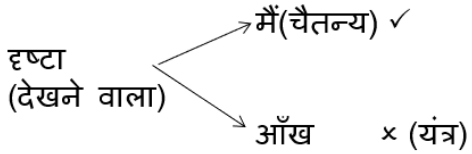

स्वयं के द्वारा स्वयं को देखने के लिए:
क्या मुझे आँख के माध्यम से देखने की आवश्यकता है
अपनी कल्पनाशीलता को देखने के लिए क्या आँख की आवश्यकता है?
नहीं → आँखों को आराम दें → खुला, बंद, आधा खुला आधा बंद रहने दें
क्या मुझे शरीर से कोई काम लेना है?
अपने भाव को देखने के लिए क्या मुझे शरीर से काम लेने की आवश्यकता है?
नहीं → शरीर को आराम दें → शरीर को किसी भी आसन में रखें

चरण 1 स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना (हर क्षण इस अभ्यास को करना है)
मैं(चैतन्य) स्वयं को देख रहा हूँ
स्वयं के प्रति सजग रहना

(एक आसान तरीका है अपनी कल्पनाशीलता के प्रति सजग रहना)

1a) अपनी कल्पनाशीलता को देखें
कल्पनाशीलता में चल रही इच्छा, विचार, आशा को देखें
मैं (स्वयं, चैतन्य) के द्वारा मैं (स्वयं) को देख रहा हूँ
अपने में चल रही कल्पनाशीलता को देख रहा हूँ
(बिना मूल्यांकन किये, बिना प्रतिक्रिया किये...
बिना उसको रोकने, बिना बदलने का प्रयास किये...
जैसा चल रहा है, वैसा ही देखना है... देखने का निर्णय बनाए रखें)
1b) अगर अपनी कल्पनाशीलता को देखने का काम सीधा सीधा नहीं हो पा रहा है, तो प्रारम्भ में विचार को देखने से काम शुरू कर सकते हैं।
विचार दिखने लगे, तो उसके आधार में जो इच्छा है, उसे देखने का काम करें। अंततः पूरी कल्पनाशीलता को देखने का काम करना है।
कल्पनाशीलता में चल रही इच्छा, विचार और आशा को देखने का प्रयास करें।
विशेष रूप से, अपने भाव, अपनी इच्छा पर ध्यान केन्द्रित करें।
मैं अपनी इच्छा (भाव), विचार और आशा को देख रहा हूँ,
विशेष रूप से, अपनी इच्छा (भाव) को देख रहा हूँ।
स्वयं में चल रही कल्पनाशीलता को देखें, जैसा चल रहा है, वैसा ही
(बिना मूल्यांकन किये, बिना प्रतिक्रिया किये...
बिना उसको रोकने का प्रयास किये...
बिना उसको बदलने का प्रयास किये...) .....**हर क्षण**
यह बहुत ही **सरल लेकिन महत्वपूर्ण चरण** है।
अपने निरीक्षण को अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिखें।
चरण 1: एक सरल, लेकिन महत्वपूर्ण चरण
यह सरल है क्योंकि:

- कल्पनाशीलता निरंतर चल ही रही है
- देखने की क्षमता हममें स्वाभाविक रूप में है ही
- मुझे बस देखने का निर्णय लेना है और देखना है

- यह महत्वपूर्ण है क्यूंकि:
  - इस क्षण में मेरा सुख, दुःख मेरे ही भाव, विचार पर निर्भर करता है, मेरी कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है|

उदाहरणार्थ, यदि मुझमें विरोध का भाव विचार चलता है तो मैं दुखी होता हूँ और
यदि मुझमें स्नेह का भाव विचार चलता है तो मैं सुखी होता हूँ|
चरण 1: स्व-निरीक्षण (Self-observation), स्वयं में जागरूकता (Self-awareness)
इस क्षण मुझमें जो कल्पनाशीलता चल रही है, मैं उसे देख रहा हूँ।
इस क्षण मुझमें जो इच्छा (भाव), विचार और आशा चल रही है, मैं उसे देख रहा हूँ।
खासकर, मैं अपने भाव (इच्छा) को देखने का प्रयास कर रहा हूँ।
इस क्षण स्वयं में चल रही कल्पनाशीलता को देखें, जैसा चल रहा है, वैसा ही
(बिना मूल्यांकन किये, बिना प्रतिक्रिया किये...
बिना उसको रोकने का प्रयास किये...
बिना उसको बदलने का प्रयास किये...) .....**हर क्षण**
यदि आपकी कल्पनाशीलता बिना आपकी सजगता के कहीं और चली जाती है, तो परेशान होने की आवश्यकता नहीं है – बस इस बात को ध्यान में रख लें कि आपकी कल्पनाशीलता कहीं और चली गयी है|
यह निर्णय बनाए रखें कि मुझे अपनी कल्पनाशीलता को देखना है| ध्यान वापस आ जाये तो,
इस क्षण कल्पनाशीलता में जो भी चल रहा है उसे देखें... बिना किसी प्रतिक्रिया के|
चरण 1 से सम्बधित समस्याओं के उत्तरों के लिए अनुच्छेद 6.1 देखें|
गृहकार्य चरण 1:

- अपनी कल्पनाशीलता को देखें. इसको निरंतरता में करने की कोशिश करें, हर क्षण।

1. आपका ध्यान कितनी देर अपनी कल्पनाशीलता पर बना रहता है ?
2. आपकी कल्पनाशीलता किसी एक विषय पर ही चलती है या ये एक विषय से दूसरे विषय पर बदलती रहती है ?
3. यदि आपका ध्यान कहीं और चला जाता है , तो वो कहाँ जाता है ? आप किन चीजों पर ध्यान देते हैं ? क्या आप अपने ध्यान की वस्तु को खुद ही, अपनी सजगता से तय करते हैं या ये सजगता के बिना (अपने आप!) ही तय होता रहता है?
4. अपनी कल्पनाशीलता में चल रही इच्छा (भाव), विचार और आशा को अलग अलग करके देखने का प्रयास करें।

अपने निरीक्षण को दिन में कई बार अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिख लें – कम से कम हर चार घंटे पर

चरण 2: भाव का स्व मूल्यांकन

इस क्षण मुझमें जो भाव, विचार चल रहा है, मैं उसका मूल्यांकन कर रहा हूँ।

– यह भाव मुझे सहज स्वीकार्य है या नहीं?
– यह मेरे स्वभाव के अनुरूप है या नहीं, मानवीय स्वभाव के अनुरूप है या नहीं?
– मैं इस भाव की निरंतरता को बनाये रखना चाहता हूँ या नहीं?

उदाहरण के रूप में इसे स्नेह के भाव के सन्दर्भ में जांचें; द्वेष के भाव के सन्दर्भ में भी जांचें
इस क्षण आप में जो भी भाव चल रहा है, उसके प्रति सजग रहें
जो भी भाव चल रहा है उसे देखते रहें... और उसका मूल्यांकन करें
बिना किसी प्रतिक्रिया के
(किसी भी भाव या विचार को बनाए रखने या हटाने के लिए अपनी तरफ से प्रयास ना करें
जिस भाव में आप आराम में रहते हैं, उसे बनाए रखने का प्रयास ना करें
जिस भाव में आप परेशान रहते हैं, उसे रोकने या हटाने का प्रयास ना करें)
सजग रहें, अपने में जो भी भाव चल रहा है, उसे देखें ... और मूल्यांकन करें, बिना किसी प्रतिक्रिया के
चरण 1 और 2 को निरंतरता में करें... **हर क्षण**
अपने निरीक्षण को अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिख लें (कम से कम हर 4 घंटे पर)

चरण 2: उदाहरण

- किसी ने आपको धोखा दिया, आप दो घंटे से उससे बदला लेने की सोचते रहे और अंत में इस विचार को छोड़ दिया।

जाँचें कि इन दो घंटों में आपमें सम्बन्ध का भाव था या विरोध का ?

– यह भाव आपको सहज स्वीकार्य है या नहीं?
– आप इस भाव की निरंतरता को बनाये रखना चाहता हूँ या नहीं?

तो, आप यह देख सकते हैं कि आपमें विरोध का भाव था
यह भाव आपको सहज स्वीकार्य नहीं है,
आप इस भाव की निरंतरता को बनाये नहीं रखना चाहते हैं

- दूसरी ओर कोई व्यक्ति है जिसने आपकी बहुत मदद की है और आप उसके लिए कुछ अच्छा करने का विचार कर रहे हैं।

जाँचें कि, इस दौरान आपमें सम्बन्ध का भाव था या विरोध का?

– यह भाव आपको सहज स्वीकार्य है या नहीं?
– आप इस भाव की निरंतरता को बनाये रखना चाहता हूँ या नहीं?

तो, आप यह देख सकते हैं कि आपमें सम्बन्ध का भाव था और
यह भाव आपको सहज स्वीकार्य है,
आप इस भाव की निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं

चरण 2: गृहकार्य

- अपनी कल्पनाशीलता को देखें।
- कल्पनाशीलता में इच्छा (भाव), विचार और आशा को अलग करके देखने का प्रयास करें।
- जब आपका अपने किसी रिश्तेदार (पति/ पत्नी, परिवार के सदस्य, दोस्त) के साथ कोई अप्रिय व्यवहार हो जाता है, उस घटना का विश्लेषण करें कि

1. इस समय आपकी आशा, अपेक्षा क्या है ?
2. इस समय आपके विचार में क्या चल रहा है ?

3. इन विचार के पीछे के भाव क्या हैं ?

- जब आप घर का कोई ऐसा काम कर रहे होते हैं, जो बार बार करना पड़ता है, उस काम को करने के पीछे आपका भाव क्या रहता है ?

उदाहरणार्थ , जब आप बर्तन धो रहे होते हैं, आप ऐसा महसूस करते हैं कि आप स्वयं की इच्छा से ऐसा कर रहे हैं या आपको ऐसा लगता है कि आपके ऊपर यह काम थोपा गया है और यदि आप यह नहीं कर रहे होते तो कुछ "ज्यादा महत्वपूर्ण" कार्य करते।
इन दोनों स्थितिओं में से, आप कब सुखी होते हैं और कब दुखी होते हैं?
पहली स्थिति में आप दुखी हुए क्योंकि आपमें उस काम के प्रति विरोध का भाव था, जबकि दूसरी स्थिति में आप सुखी हुए क्योंकि आपमें उस कार्य के प्रति स्वीकृति का भाव था।
आप काम कुछ भी कर रहे हों, उसके पीछे जो भाव है अंततः आप उसी से सुखी दुखी होते हैं।

चरण 3: अपनी स्थिति का स्व मूल्यांकन
मैं मूल्यांकन कर रहा हूँ कि मेरे भाव, विचार का, मेरी इस क्षण की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है
- इस भाव के साथ मैं स्वयं में आराम में हूँ या परेशान हूँ?
- मैं स्वयं में संगीत में हूँ या अंतर्विरोध में हूँ?
- मैं सुखी हूँ या दुखी हूँ ?

उदाहरणार्थ अपनी स्थिति का मूल्यांकन करें
- जब आपमें स्नेह का भाव रहता है और
- जब आपमें द्वेष का भाव रहता है

जब भी मुझमें ऐसा भाव रहता है, जो मुझे सहज स्वीकार्य है, मैं जिसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहता हूँ,
उस भाव के साथ मैं आराम में रहता हूँ, संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ।
जिस क्षण भी मुझमें ऐसा भाव आता है, जो मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, मैं जिसकी निरंतरता को बनाये नहीं रखना चाहता हूँ,
उस भाव के साथ मैं परेशान रहता हूँ, अंतर्विरोध में रहता हूँ, दुखी रहता हूँ।

चरण 3: अपनी स्थिति का स्व मूल्यांकन
हम देख सकते हैं कि हमारे में जो भाव रहता है, उसी के आधार पर हमारे सुख- दुःख का निर्णय होता है।
यदि मेरा भाव मुझे सहज स्वीकार्य है, तो मैं संगीत में रहता हूँ, सुखी रहता हूँ और
यदि मेरा भाव मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, तो मैं अंतर्विरोध में रहता हूँ, दुःखी रहता हूँ।
सहज भाव के साथ मैं सुखी रहता हूँ।
असहज भाव के साथ मैं दुखी रहता हूँ।
हमें इस अभ्यास को **हर क्षण** करना है।

चरण 3: उदाहरण
- मान लीजिए कि आप एक वातानूकुलित कमरे में बैठे हैं, 21 डिग्री तापमान में। शारीरिक स्तर पर यह बहुत ही आरामदेह स्थिति है। अब अगर आप किसी ऐसे व्यक्ति के साथ बैठे हैं जिसके प्रति आपमें विरोध का भाव है, तो इस भाव के साथ आप स्वयं में
  - आराम में रहते हैं या परेशान रहते हैं ?
  - संगीत में रहते हैं या अंतर्विरोध में रहते हैं ?
  - सुखी रहते हैं या दुखी रहते हैं ?

यदि प्रारंभ में आप अपनी कल्पनाशीलता को उस क्षण नहीं देख पाते हैं जब घटना घट रही होती है (अभी आपमें यह योग्यता विकसित ना हुई हो)।
इस स्थिति में आप उस घटना के बारे में बाद में विचार करके, विश्लेषण करके, अपने भाव को समझ सकते हैं।
एक बार आप कल्पनाशीलता को सीधे सीधे देखने की योग्यता विकसित कर लेंगें, तब आप अपनी कल्पनाशीलता के पीछे के भाव को उस समय भी देख पाएंगें, जब घटना घट रही होगी।

चरण 4: स्व मूल्यांकन – भाव को कौन तय करता है
चरण 1 में मैंने, इस क्षण अपने में चल रहे भाव को देखने का काम किया, और चरण 2 & 3 में अपने भाव का मूल्यांकन किया;

इससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मैं सहज भाव से सुखी, असहज भाव से दुखी होता हूँ
मेरे भाव के आधार पर ही मेरा सुख दुःख तय होता है।
अब यह प्रश्न है कि – यह भाव, जो मेरे सुख/दुःख का स्रोत है, इसका निर्णय कौन लेता है?
तो मैं स्वयं से यह सवाल पूछ रहा हूँ कि -
"इस भाव का निर्णय कौन लेता है?"
मैं इस बात पर ध्यान दे रहा हूँ कि इस क्षण मुझमें जो भाव, विचार चल रहा है उसका निर्णय कौन लेता है
- बाहर की कोई स्थिति/ परिस्थिति
- कोई दूसरा व्यक्ति
- मैं,स्वयं

मैं ही अपने भाव विचार का निर्णय करता हूँ।
(कोई और व्यक्ति या बाहर की कोई परिस्थिति मात्र उत्प्रेरक का काम कर सकती है)
मुझमें जो भी भाव, विचार चल रहा है उसका निर्णय मैं ही लेता हूँ।
कोई और व्यक्ति या बाहर की कोई परिस्थिति मात्र उत्प्रेरक का काम कर सकती है, मेरा ध्यान उस ओर खींच सकती है
परन्तु, अंततः, मैं ही अपने भाव, विचार का निर्णय लेता हूँ।
अपने भाव, विचार के आधार पर मैं सुखी / दुखी होता हूँ।
इस अर्थ में, मैं ही अपने सुख / दुःख के लिए स्वयं जिम्मेदार हूँ।
मैं अपने सुख / दुःख के लिए 100% जिम्मेदार हूँ।
इस निरीक्षण के आधार पर मैं दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल पाता हूँ-

- मुझे स्वयं में बदलाव की आवश्यकता है; इसलिए, मैं स्वयं के विकास, परिमार्जन के लिए प्रयास करने के लिए तत्पर होता हूँ।
- मैं दूसरों को दोष देना बंद करता हूँ, दूसरे के प्रति शिकायत से मुक्त हो पाता हूँ, (क्योंकि मैं अब देख पाता हूँ कि दूसरा व्यक्ति/ बाहर की परिस्थिति मेरे सुख / दुःख के लिए जिम्मेदार नहीं हैं, मैं स्वयं ही जिम्मेदार हूँ)।

पहले मैं यह सोचता था कि

- दूसरा व्यक्ति या बाहर की परिस्थितियाँ मेरे दुःख के लिए जिम्मेदार हैं, इसीलिए मैं उनका दोष देखता रहता था और उनके बदलने की आशा करता रहता था।
- मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं ही अपने दुःख के लिए जिम्मेदार हूँ, इसीलिए मुझे कभी भी स्वयं को बदलने की, परिमार्जन करने की, आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

मैं दूसरे को बदलते देखना चाहता था, दूसरे मुझे बदलते देखना चाहते थे, कोई भी खुद को बदलने की आवश्यकता नहीं देखता था, इसीलिए किसी में भी कोई भी सार्थक परिवर्तन नहीं हो पाता, कोई विकास नहीं हो पाता था , आज की स्थिति यही है !

चरण 4: उदाहरण

जब कोई व्यक्ति मुझे कुछ अपशब्द कहता है, तब क्या होता है?
आवाज मेरे कानों तक आती है, मैं उसकी तरफ ध्यान देता हूँ, शब्दों को सुनता हूँ, उसके बारे में सोचता हूँ और फिर कुछ निष्कर्ष निकालता हूँ।
अब मुझमें जो भाव बनता है, वो मेरे द्वारा तय किया जाता है या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा?
यदि मुझे पता चलता है कि अपशब्द कहने वाले व्यक्ति को कोई मानसिक बीमारी है और उसे यह समझ भी नहीं है कि वह क्या कह रहा है, तब हमारा भाव क्या होता है?

- संभवतः दया का भाव

जब दूसरा मुझे स्वस्थ दिखता है और वही अपशब्द कहता है तब मेरा भाव क्या होता है?
- संभवतः विरोध का भाव
हम देखते हैं कि शब्द तो एक ही हैं, परन्तु शब्द से जो अर्थ निकाला गया वह बदल गया। बाहर से आने वाला प्रभाव तो एक ही है, लेकिन मैंने जैसा अर्थ निकाला उसके अनुरूप मेरा भाव बदल गया।
दूसरे शब्दों में, मुझमें कौन सा भाव चलेगा, इसका निर्णय मैं ही लेता हूँ।

- मैं अपनी सही समझ के आधार पर अपने भाव का निर्णय कर सकता हूँ, किसी दूसरे के व्यवहार पर प्रतिक्रिया के आधार पर तय करने के बजाए|

चरण 4: गृहकार्य

अगले 24 घंटों में आपके साथ घटने वाली सारी घटनाओं तथा दूसरे व्यक्तियों के साथ होने वाले आदान-प्रदान में अपने भाव का मूल्यांकन करें और अपने आप से पूछें कि इन भाव का निर्णय कौन ले रहा है?
- कोई और
- बाहर की कोई परिस्थिति
- मैं स्वयं

आपके सुख / दुःख के लिए कौन जिम्मेदार है ?
- कोई और
- बाहर की कोई परिस्थिति
- मैं स्वयं

अपने निरीक्षण को अपनी अभ्यास पुस्तिका में लिख लें (कम से कम हर 4 घंटे पर)

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'मैं' का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है? यह हमारे दैनिक जीवन में किस प्रकार सहायक है?
2. 'मैं' की क्रियाओं को एक चित्र की सहायता से समझाइये। एक उदाहरण की सहायता से लिखिये कि ये किस प्रकार आपस में जुड़ी हुई हैं?
3. कल्पनाशीलता क्या है? क्या यह निरंतर चलती रहती है या यह एक सामयिक क्रिया है? क्या आप इसे रोक सकते हैं? अपने उत्तर को उदाहरण की सहायता से स्पष्ट कीजिये।
4. ''मैं' में संगीत' को कुछ उदाहरणों की सहायता से समझाइये।
5. 'मैं' की कल्पनाशीलता के विभिन्न स्रोतों की सूची बनाइये। कुछ उदाहरणों के माध्यम से इनको स्पष्ट भी करें।
6. व्यवहार और कार्य कैसे निर्धारित होता है? क्या इनका निर्धारण 'शरीर' करता है या यह 'मैं' के द्वारा होता है? 'मैं' की कौन सी क्रियायें व्यवहार और कार्य से सीधे जुड़ी होती हैं?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये, कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें)

1. पन्द्रह मिनट तक अपनी कल्पनाशीलता पर ध्यान दें। हर एक मिनट के बाद आपने जो भी कल्पनाशीलता में देखा उनको सूची बद्ध कर लें। इस सूची के आधार पर या सीधे-सीधे कल्पनाशीलता को देखने के आधार पर इनको क्रमबद्ध करें जैसा कि नीचे दिया गया है।

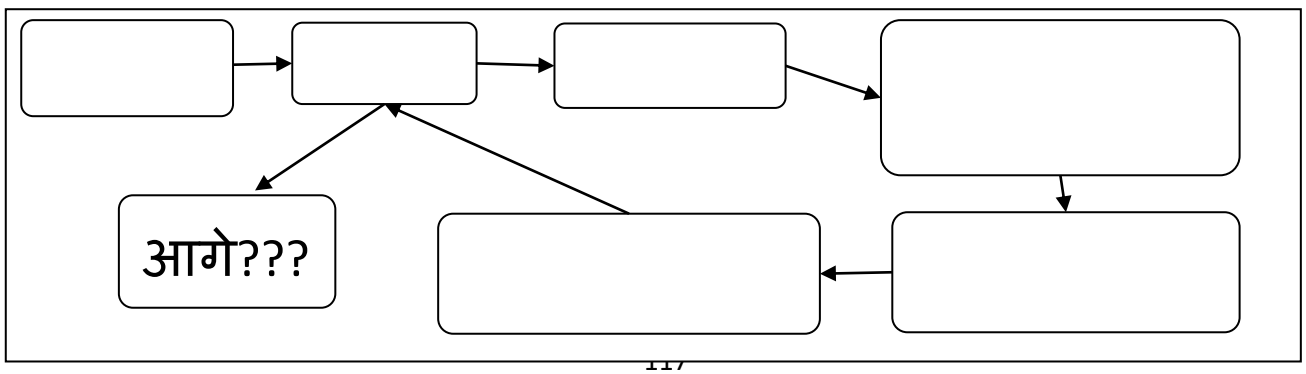

आगे बढ़ने पर हम इनका विस्तृत अध्ययन करेंगे। यहाँ पर हमने आपको केवल यह ध्यान दिलाने हेतु प्रस्तुत किया है|

अब आप अपनी टिप्पणियों को लिखें:

a) क्या आप अपनी कल्पनाशीलता को कभी-कभी या हर समय देख पाते हैं?
b) यदि आप अपनी कल्पनाशीलता को केवल कभी-कभी ही देख पा रहे हैं, तो आपको इसका क्या कारण लगता है?
c) क्या आपकी सभी कल्पनाशीलतायें आपस में पूरी तरह से जुड़ी हुई हैं (एक कल्पना तार्किक रूप से दूसरी कल्पना की ओर ले जाती है) या एक विषय से दूसरे विषय में अचानक परिवर्तन होता है या एक कल्पना और दूसरी कल्पना के बीच कुछ अंतराल (gap) होता है? कल्पनाशीलता की इस स्थिति का क्या कारण है?
d) इस अभ्यास से आपके क्या निष्कर्ष हैं?

2. उन क्षणों को याद करें, जब आपका 'शरीर' स्वस्थ था; जब आपका 'शरीर' बीमार था; जब आपका 'शरीर' आराम कर रहा था; जब आपका 'शरीर' तरोताजा था; जब आपका 'शरीर' थका हुआ था इत्यादि (अर्थात् आपका 'शरीर' विभिन्न स्थितियों में था)। अपनी टिप्पणियों को लिखें:
   a. क्या कल्पनाशीलता की क्रियायें काल में निरंतर हैं और आपके 'शरीर' की स्थिति पर निर्भर नहीं करती? (निःसंदेह, हम आपकी कल्पना की विषय-वस्तु के बारे में नहीं पूछ रहे हैं, सिर्फ क्रिया के बारे में पूछ रहे हैं।)
   b. क्या आप हमेशा अपने व्यवहार और कार्य को तय करते हैं या आपका 'शरीर' इसे तय करता है? क्या आपके 'शरीर' की स्थिति का आपके व्यवहार या कार्य पर कोई प्रभाव पड़ता है?

इस अभ्यास से आपने, अपने बारे में क्या समझा?

3. अपनी इच्छाओं की सूची को लें, जिसे आपने पिछले अध्यायों में बनाया था। यदि आवश्यक हो तो इसे संशोधित कर लें। प्रत्येक इच्छा को प्रेरित करने वाले प्राथमिक स्रोत (संवेदना, मान्यता या सहज स्वीकृतियों) की पहचान करें। यदि किसी इच्छा में प्रेरित करने वाले एक से अधिक स्रोत है, तो इसे दो या दो से अधिक उप-इच्छाओं में विभाजित करें; जैसे अच्छे-कपड़ों की इच्छा आपकी सहज स्वीकृति से प्रेरित हो सकती है ('शरीर' को अत्यधिक गर्मी या ठंड से बचाने के लिये) या सामाजिक मान्यताओं से भी प्रेरित हो सकती हैं (नवीनतम फैशन के कपड़े के लिये)। ऐसी स्थिति में, इच्छा को दो उप-इच्छाओं में विभाजित करें। हो सकता है कि आप पहले से ही घर में पहनने वाले कपडे(अपने 'शरीर' की सुरक्षा, आराम के लिये) और बाहर पहनने वाले कपड़े (फैशन के लिये) के लिये ऐसा कर ही रहे हों।

इच्छा	**मान्यता से प्रेरित**	**संवेदना से प्रेरित**	**सहज स्वीकृति से प्रेरित**
अच्छा स्वास्थ्य	अच्छा दिखने के लिये		
अच्छा स्वास्थ्य		इसलिये कि जो भी मुझे पसंद है खा सकूँ	
अच्छा स्वास्थ्य			इसलिये कि पढ़ते

			समय आलस या नींद न आये
मेरे मित्रों में मेरे लिये स्वीकृति का भाव हो			
भौतिक रूप से मैं अपने मित्रों के साथ रहूँ			
पोषण के लिये भोजन	पोषण		
स्वाद के लिये भोजन		स्वाद	
बहुत सारा धन – 'शरीर' की आवश्यकता के लिये			
बहुत सारा धन–समाज में सम्मान के लिये			
अपनी सहज स्वीकृति को समझना			

यह सूची सिर्फ एक नमूना है। कृपया अपनी सूची स्वयं बनाइये|

अब, अपनी टिप्पणियों को लिखें:

a. आपकी इच्छाओं का कितना प्रतिशत (लगभग) आपकी सहज स्वीकृति से प्रेरित है? इससे आपको अंदाजा होगा कि आप कितने प्रतिशत स्वतंत्र या स्वायत्त हैं। ध्यान रखें कि सहज स्वीकृति मूल लक्ष्यों के बारे में होती है और यह समय, स्थान या व्यक्ति के साथ नहीं बदलती है।
b. आपकी इच्छाओं का कितना प्रतिशत (लगभग) संवेदना या मान्यता से प्रेरित है? अब आप यह अंदाजा लगा सकते हैं कि आप कितने प्रतिशत परतंत्र हैं।
c. पूरी तरह से स्वतंत्र या स्वायत्त होने के लिये क्या प्रयास आवश्यक हैं (यदि यह आपका लक्ष्य है तो)?

4. मानव की मूल इच्छा (desire) निरंतर सुख है। इसके लिये, कई उप-इच्छायें हैं। प्रत्येक इच्छा या उप-इच्छा के लिये, कई विचार हैं। प्रत्येक विचार के लिये कई आशायें हो सकती हैं। यह सब मिलकर कल्पनाशीलता कहलाती है। इस अभ्यास में, हम विशेष रूप से इच्छाओं/ उप-इच्छाओं और संबंधित विचारों और आशाओं की पहचान करने की कोशिश कर रहे हैं (चित्र. 6 QS-4)। पता लगायें कि उप-इच्छाओं, विचारों और आशाओं के बीच संगीत है या नहीं।

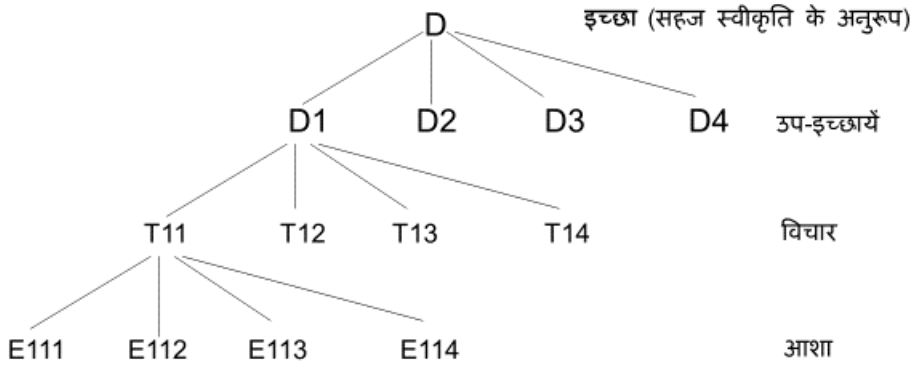

चित्र. 6 Qs-4 कल्पनाशीलता की स्थिति – निश्चित और व्यवस्थित

अपनी कुछ आदतें, कुछ चीजें जो आपको पसंद हैं; कुछ चीजें, कुछ आदतें जो आप नापसंद करते हैं, आप इनका चुनाव कैसे करते हैं और कुछ 'आपके जीवन के नियम' जिनके आधार पर आप जीते हैं, इन सबको लिखिये - ये सभी आपकी संचित कल्पनाशीलता और संस्कार का भाग हैं। प्रत्येक प्रविष्टि के लिये यदि आप "क्यों" पूछें और उससे जो उत्तर मिले आप उस उत्तर के साथ चलें; जैसे अगर आपको मिठाई खाना पसंद है और आप खुद से पूछते हैं कि "मिठाई क्यों?"; आपका जवाब हो सकता है "क्योंकि मुझे मिठाई का स्वाद पसंद है" बजाय इसके कि "मिठाई" लिखें। इसी तरह सभी के लिये यह एक सूची बनाइये। यह सूची "जैसा आप हैं" को परिभाषित करेगा। ध्यान दें कि इच्छायें, आपके संस्कार का एक हिस्सा हैं जो आपकी संचित इच्छाओं, विचारों और आशाओं की स्वीकृति हैं। अपनी सहज स्वीकृति की सूची को याद करें। आपके संस्कार (स्वीकृति) का कितना प्रतिशत आपकी सहज स्वीकृति से मेल खा रहा है? इस अभ्यास से आपने क्या निष्कर्ष निकाला, उसको लिखिये।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'मैं' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है।जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। निसंदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति:, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी हैऔर यह मायने रखती है। ऊपर कुछ -!संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें

"स्वयं (चैतन्य), मानव का महत्वपूर्ण अंग है"

1. 'मैं' की क्रियायें
2. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत
3. स्व-विकास: संस्कार (t+1) = संस्कार (t) + वातावरण (t) + अध्ययन (t)
4. सुख = 'मैं' में संगीत / व्यवस्था

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को 'मैं' के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय 7: 'शरीर' के साथ 'मैं' की व्यवस्था - स्वास्थ्य और संयम को समझना

Harmony of the self with the Body - Understanding Self-regulation and Health

अभी तक हमनें देखा कि मानव, मैं और शरीर का सहअस्तित्व है, मैं चैतन्य इकाई हूँ और शरीर एक जड़ इकाई है कक्षा १० में हम देखेंगें कि शरीर किस प्रकार मैं का साधन है और मैं ही देखने वाला अर्थात् दृष्टा, निर्णय लेने वाला अर्थात् कर्ता और सुख दुःख भोगने वाला अर्थात् भोक्ता हूँ। मैं शरीर को एक यंत्र की तरह संचालित करता हूँ शरीर के स्वास्थ्य का ध्यान रखना मैं की जिम्मेदारी है जो संयम के भाव के साथ सुनिश्चित होता है।

अध्याय 8: परिवार में व्यवस्था-मानव मानव संबंध में मूल्य

Harmony in the Family- Understanding the Values in Human-Human Relationships

पुनरावृत्ति

(Recap)

पिछले तीन अध्यायों में हमने स्व-अन्वेषण के माध्यम से मानव में व्यवस्था का अध्ययन किया। इस अध्ययन में हमने मानव को स्वयं ; और शरीर (मैं) इन दो वास्तविकताओं के सह-अस्तित्व के रूप में समझने का प्रयास किया। मैं चैतन्य क्षेत्र है और शरीर जड़ क्षेत्र है। हमने इन दोनों की आवश्यकताओं एवं क्रियाओं में भिन्नता पर चर्चा भी की और साथसाथ यह भी देखा कि- कैसे 'मैं' दृष्टा, कर्ता, और भोक्ता (भोगने वाला) है एवं इस प्रक्रिया में 'मैं'' ,शरीर' का किस प्रकार यंत्र के रूप में उपयोग करता है। आगे हमने 'मैं' की क्रियाओं के बारे में एवं इन सभी क्रियाओं में व्यवस्था सुनिश्चित करने के कार्यक्रम के बारे में विस्तार से अध्ययन किया। जिससे 'मैं' में निरंतर व्यवस्था को सुनिश्चित करने का मार्ग स्पष्ट होता है। इसके पश्चात हमने यह भी देखा कि शरीर के लिये भी जिम्मेदार तो 'मैं' ही है।

निरंतर सुख सुनिश्चित करने के कार्यक्रम के रूप में समझ -सही , को सुनिश्चित करना अर्थात् मानव, परिवार, समाज एवं प्रकृति/ अस्तित्व में व्यवस्था को समझना एवं इन सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीना है। सही समझ के आधार पर मानव को अपने '(मैं) स्वयं' एवं दूसरे के 'मैं' के बारे में स्पष्टता हो पाती है जो कि संबंध को समझने का एक आवश्यक भाग है, इसके आधार पर हम परिवार में व्यवस्था को समझने की तरफ बढ़ सकेंगे। इस अध्याय में हम इसी का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार

(Family as the Basic Unit of Human Interaction)

प्रत्येक मानव किसी न किसी परिवार में जन्म लेता है एवं किसी न किसी परिवार का भाग होता है, जिसमें माता-पिता, दादा-दादी, बच्चे, युवा, चाचा-चाची, भतीजे एवं अनेक रिश्तेदार और मित्र होते हैं। यह परिवार ही है जिसमें हम बचपन से विकसित होते हैं एवं वृद्धावस्था में अथवा बीमार होने पर हमारी देखभाल होती है। परिवार में ही हम दूसरे सदस्यों के साथ परस्परता में कैसे जीना है यह सीखना शुरू करते हैं। आपस में साझा करना, एक दूसरे की देखभाल करना इत्यादि परिवार में ही सीखना शुरू होता है। परिवार में ही हम संबंध के बारे में जागरूक होना प्रारंभ करते हैं। जिस क्षण हम "माँ" शब्द सुनते हैं, उसी क्षण हममें बहुत से भाव आ जाते हैं। इसी प्रकार से प्रत्येक संबंध के नाम के साथ एक भाव जुड़ा हुआ होता है और जैसे-जैसे हम परस्परता में जुड़ते हैं यह भाव और प्रगाढ़ होता चला जाता है। हमारे संबंधपूर्वक जीने की योग्यता का विकास परिवार में ही शुरू होता है। हमारे जीवन के प्राथमिक कुछ वर्ष, जिन्हें हम अपने जीवन के निर्माणाधीन वर्ष कहते हैं, परिवार में ही बीतता है। परिवार वह जगह है जहाँ पर जीते हुये हम परिवार के बड़े-बुजुर्गों, भाई-बहनों, पड़ोसियों और मित्रों के द्वारा, अपने संस्कारों का महत्वपूर्ण भाग ग्रहण करते हैं। परिवार हमारी समझ के सत्यापन के लिये भी एक उपयुक्त स्थान है।

परिवार, मानव संगठन की मूल इकाई है। यह व्यवस्था एवं संबंध में जीने के लिये एक अभ्यास स्थली भी है।

परिवार में व्यवस्था का आधार - संबंध में भाव
(Feeling of Relationship as the Basis for Harmony in the Family)

परिवार में व्यवस्था का प्राथमिक रूप, एक सदस्य का दूसरे सदस्य के साथ संबंध में निर्वाह है। संबंध में निर्वाह के लिये हमें संबंध को समझना आवश्यक है।

संबंध को समझना
(Understanding Relationship)

अब हम संबंध के चार महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे:

- संबंध है- एक और दूसरे '(मैं1)स्वयं' के '(मैं2)स्वयं' बीच
- संबंध में भाव हैं- एक में दूसरे '(मैं1)स्वयं' के लिये '(मैं2)स्वयं'
- इन भावों को पहचाना जा सकता है – ये निश्चित हैं
- इन भावों के निर्वाह और इनके सहीमूल्यांकन- से उभय सुख होता है

आइये अब इन चारों पहलुओं का एक-एक करके विस्तार से अध्ययन करते हैं।

1. संबंध है- एक और दूसरे '(मैं1)स्वयं' के '(मैं2)स्वयं' बीच
(Relationship is – between one Self (I1) and another Self (I2))

जब हम संबंध की बात करते हैं तो इससे जुड़ी हुई दो महत्वपूर्ण बातों का अवलोकन करना आवश्यक है। पहला यह कि संबंध है ही, वास्तव में हम संबंध में जुड़े हुये ही रहते हैं। हम पहले से ही एक दूसरे से संबंधित हैं ही- चाहे हम इसे पहचान पायें या न पहचान पायें। हमें संबंध निर्मित करने अर्थात् बनाने की आवश्कयता नहीं हैबल्कि सिर्फ , इसे समझने की आवश्यकता है।

हम माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन के साथ एक परिवार के रूप में जीते ही हैं। हमारे साथ पडोसी, रिश्तेदार एवं मित्र भी होते हैं। हम उन लोगों के साथ भी जुड़े हुये ही हैं, जो हमारे लिये आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, प्रोसेसिंग (processing) पैकिंग, मार्केटिंग, आपूर्ति, एवं मरम्मत जैसे कार्य करते हैं। हम इन सभी पर निर्भर हैं, क्योंकि वे हमें आवश्यक वस्तुयें और सेवायें प्रदान करते हैं। अनेक लोग ऐसे भी हैं, जो हमारे ऊपर निर्भर हैं, अर्थात् जो उत्पाद या सेवा हम प्रदान करते हैं वे उन पर निर्भर होते हैं। यह देखना बहुत महत्वपूर्ण होगा कि हम जो भी छोटी से छोटी वस्तु उपयोग करते हैं, वह कितने लोगों से संबंधित है अर्थात् कितने लोगों के माध्यम से हम तक पहुँच पाती है। जैसे दूध का एक गिलास जो हमें सुबहक्या ;सुबह चाहिये होता है- यह मात्र दूध वाले उस व्यक्ति से ही संबंधित है जिसने हमारे लिये दूध के पैकेट की आपूर्ति की है? नहीबल्कि जो दूध की पैकिंग और वितरण करने में लगे हैं, जो डेयरी में काम करते हैं, जो चारा उगाते हैंउसकी ; कटाई करते हैं और पशुओं को खिलाते हैं इत्यादि सभी लोग इस प्रक्रिया में शामिल हैं। इन सभी के सहयोग से ही हमको दूध उपलब्ध हो पाता है। अतः हम इन सभी से संबंधित हैं ही। आप पायेंगे कि यह सूची बहुत लंबी है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि हम दूसरों के साथ संबंध में जुड़े ही हैं।
जब हम संबंध को पहचान पाते हैं और देख पाते हैं की संबंध है हीतो ; हम इसे स्वीकार भी पाते हैं और इसका निर्वाह करने के बारे में भी सोच पाते हैं। हमने यह प्रश्न अनेकों बार पूछा है कि संबंधपूर्वक जीना सहज स्वीकार्य है या विरोधपूर्वक, और प्रत्येक बार हम यह देख पाये कि संबंधपूर्वक जीना ही हमें सहज स्वीकार्य होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संबंध पहले से है ही; यह मानव के होने का और संपूर्ण अस्तित्व का अभिन्न अंग है। हमें संबंध के निर्वाह के लिये सिर्फ इसे समझने की आवश्यकता है।

जब हम संबंध को नहीं समझ पाते हैं संबंध तो तब भी होता ही है, बस हम इसे देख नहीं पाते इसलिये इसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप हम संबंध के निर्वाह को सुनिश्चित करने के बारे में सोच भी नहीं पाते। संबंध में ठीकठीक निर्वाह- न होने के कारणहम होने वाले दुःख को भोगने के लिये बाध्य होते हैं। , यही वह मुख्य समस्या है, जिसका सामना आज हम सभी को अपने जीने में करना पड़ रहा है।
दूसरा, अवलोकन यह है कि संबंध एक '(मैं1)स्वयं' और दूसरे '(मैं2)स्वयं' के बीच है। निःसंदेह एक मानव का दूसरे मानव से संबंध है ही। मानव को समझने के साथ ही अब हम आसानी से देख सकते हैं कि मानव में 'मैं' ही है, जो संबंध को पहचानता है न कि उसका ।'शरीर' 'मैं' ही है जिसमें संबंध के भाव होते हैंमें। 'शरीर' न कि , ये भाव दूसरे के 'मैं' के द्वारा ही पहचाने जाते हैं, न कि उसके 'शरीर' के द्वारा। इस दृष्टि से संबंध एक '(मैं1)स्वयं' और दूसरे '(मैं2)स्वयं' के बीच है।
यह 'मैं' ही है जो 'संबंध' को समझ पाता है, देख पाता है, स्वीकार पाता है और निर्वाह कर पाता है। संबंध के निर्वाह की इस प्रक्रिया में दोनों के 'मैं 'अपनेअपने शरीर- का यंत्र के रूप में प्रयोग करते हैं।
यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हम सभी संबंध पूर्वक जीना ही चाहते हैं, किन्तु मानव के बारे में सही- समझन होने के कारणठीक निर्वाह नहीं कर पाते।-हम संबंध का ठीक , जब तक हम मानव को सिर्फ शरीर के रूप में देखते हैंतब तक संबंध , को सही रूप में समझ पाना और इसका ठीकठीक निर्वाह कर पाना संभव - नहीं है। मानव, 'मैं' और 'शरीर' का सहअस्तित्व- है। मानव के बारे में यही स्पष्टता संबंध को समझने एवं निर्वाह करने के लिये आवश्यक है।

2. संबंध में भाव हैं- एक मैं का दूसरे मैं के लिए
(There are feelings in relationship – in one Self (I1) for the other Self (I2))

मानव संबंध में सबसे महत्वपूर्ण समस्या भावों को लेकर है। हम यह देख सकते हैं कि भाव, 'मैं' में होते हैं न की 'शरीर' में। अर्थात् यह 'मैं' ही है जिसमें भाव होते हैं और जो भाव को पहचानता भी है। संबंध को समझने के लिये 'मैं' को समझना एवं 'मैं में भावों' को समझना आवश्यक है।

संबंध में सम्मान एवं स्नेह जैसे भाव, भौतिकसुविधाओं के- आदान प्रदान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लियेयदि , आपकी माँ घर पर सादा भोजन भी बनाती हैंतो , आप खाकर खुश होते हैं जबकि ऐसा ही सादा भोजन आपके छात्रावास में बने तो आप इतने खुश नहीं हो पाते और कई बार तो आप इसकी शिकायत भी दर्ज कराते हैं। ऐसी भिन्नता का कारण आपकी माँ में आपके लिये होने वाले स्नेह और ममता का भाव हैजो कि , भोजनालय के कर्मचारियों में आप नहीं पाते हैं।
वर्तमान में संबंध में महसूस होने वाली प्रमुख समस्यायें 'मैं' को न समझ पाने के कारण ही हैं। हम संबंध को शरीर के आधार पर ही मानने का प्रयास करते हैं एवं संबंध का निर्वाह भी हम शरीर के आधार ही करने का प्रयत्न करते हैं, जो कि सफल नहीं होता है। यदि हम 'मैं' को नहीं समझ पाते हैं तो हम में भावों 'स्वयं' को भी नहीं समझ सकतेजिसके परिणामस्वरूप ; हम संबंध में भाव के निर्वाह को सुनिश्चित करने में सफल नहीं हो पाते हैं और अंततः भौतिकसुविधाओं के- माध्यम से ही संबंधो का निर्वाह करने का प्रयत्न करते रहते हैं।
मानवमानव संबंध- के केंद्र में भाव है। भौतिकसुविधा- की कोई भी मात्रा भाव के निर्वाह को सुनिश्चित नहीं कर सकती, अर्थात् किसी भी मात्रा में कोई भी भौतिकसुविधा- संबंध के निर्वाह को सुनिश्चित नहीं कर सकती।

3. इन भावों को पहचाना जा सकता है - ये निश्चित हैं
(These feelings can be recognized – they are definite)

तीसरा महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि इन भावों को पहचाना जा सकता है, क्योंकि ये निश्चित हैं। संबंधों में 9 भाव हैं। इन भावों को समझा जा सकता है, समझकर `स्वयं (मैं)` सुनिश्चित किया जा सकता है और इन्हें दूसरों के साथ

व्यक्त भी किया जा सकता है। इस प्रकार से संबंध में उभय तृप्ति को सुनिश्चित किया जा सकता है, क्योंकि ये भाव दूसरे को भी सहज –स्वीकार्य होते हैं।

संबंधों में सहज स्वीकार्य भाव (मूल्य) : नौ भाव

1. विश्वास (आधार मूल्य)
2. सम्मान
3. स्नेह
4. ममता
5. वात्सल्य
6. श्रद्धा
7. गौरव
8. कृतज्ञता
9. प्रेम (पूर्ण मूल्य)

आइये सर्वप्रथम यह जाँचते हैं कि ये भाव हमें सहज स्वीकार्य हैं या नहीं? उदाहरण के लिये हम स्वयं से यह पूछ सकते हैं कि निम्न में से हमें क्या सहज स्वीकार्य है?

- विश्वास का भाव या अविश्वास का भाव
- सम्मान का भाव या अपमान का भाव
- .....

यह तो हम सहज ही देख सकते हैं कि हमें कौन से भाव सहज स्वीकार्य हैं। इसके बाद हम यह भी जाँच कर पायेंगे कि क्या ये भाव केवल हमें ही सहज स्वीकार्य हैं या दूसरे को भी यही भाव सहज स्वीकार्य हैं। जिसे अंततः प्रत्येक के लिये भी देख पायेंगे।

आप देखेंगे कि ये भाव आपको सहज स्वीकार्य हैं, अतः जब आप में ये भाव सुनिश्चित होते हैं तब आप सुखी हो पाते हैं। जैसे जब आप में सम्मान का भाव होता है तो आप सहज होते हैं, 'मैं' में व्यवस्था में होते हैं- क्योंकि सम्मान का भाव ही आपको सहज स्वीकार्य है। और जब आप 'मैं' में व्यवस्था में होते हैं, तो आप सुख की स्थिति में होते हैं।

दूसरी तरफ यदि आप में दूसरों के लिये अपमान का भाव है तो आप 'मैं' में असहज होते हैं, 'मैं' में अन्तर्विरोध की स्थिति में होते हैं क्योंकि यह अपमान का भाव आपको सहज स्वीकार्य नहीं होता है, `स्वयं मैं` में इस अपमान के भाव के कारण ही आपमें अन्तर्विरोध होता है जिससे आप दुख की स्थिति में रहने को बाध्य होते हैं। चाहे आप इस अपमान के भाव को दूसरे के साथ व्यक्त न भी करें तो भी यह दुःख आपमें बना ही रहता है। क्या आप यह देख सकते हैं कि इसी तरह के अन्तर्विरोध से 'मैं' में अव्यवस्था होती हैजिससे आप असहज , होते हैं और दुखी होते हैं? अब आप यह भी देख पायेगे कि संबंधों में ठीक- ठीक निर्वाह न हो पाने की जो शिकायतें हैं, इनका मुख्य कारण इन सहज स्वीकार्य भावों का अभाव ही है।

5. इन भावों के निर्वाह और इनके सही मूल्यांकन से उभय- सुख होता है।
(Fulfilment of feelings in relationship and their evaluation leads to mutual happiness)

जब 'मैं' में ये सहज- स्वीकार्य भाव होते हैं , तब हम इसे दूसरे के साथ व्यक्त कर पाते हैं और जब दोनों इन भावों का सही मूल्यांकन कर पाते हैं, तब उभय- सुख हो पाता है, अर्थात् दोनों सुखी हो पाते हैं।
महत्वपूर्ण बात यह है कि ये भाव हमें सहज- स्वीकार्य होते हैं, अतः इन भावों के निर्वाह से हम सुखी होते हैं। चूंकि ये भाव दूसरे को भी सहज- स्वीकार्य होते हैं, अतः जब हम इन भावों को दूसरे के साथ व्यक्त करते हैं तो दूसरा भी सुखी हो पाता है। संबंध में मूल्यांकन महत्वपूर्ण है यह जाँचने के लिये कि ये सहज स्वीकार्य भाव - हममें हैं या नहीं, हमारे ये भाव दूसरे के प्रति अभिव्यक्त हुये या नहीं, ये भाव दूसरे तक पहुँच पाये या नहीं और अंततोगत्वा यह देखने के लिये भी कि परिणाम स्वरूप उभय सुख हुआ कि नहीं।

> उदाहरण के लिये यदि 'मैं' में सम्मान का भाव है तो इससे 'मैं 'में व्यवस्था होती है, परिणाम स्वरूप 'मैं ' में सुख होता है। 'मैं 'में सम्मान का यह भाव मुझे सुखी करता है और जब मैं सम्मान के इस भाव को आपके साथ व्यक्त करता हूँ तो यह आपके सुख में भी सहायक होता है। इस प्रकार इससे उभय- सुख निश्चित हो पाता है। इसी तरह अन्य भाव जैसे विश्वास, स्नेह, ममता, कृतज्ञता इत्यादि के लिये भी जाँच करके देखा जा सकता है।

परिवार में व्यवस्था के लिये संबंध में उपरोक्त चार मुद्दों को सुनिश्चित करना होता है। जब हम इन चार पहलुओं को समझ लेते हैं, तो हम संबंध को समझ पाते हैं, संबंध को स्वीकार पाते हैं और 'मैं 'में इन भाव को सुनिश्चित कर पाते हैं , जिससे संबंधों का निर्वाह हो पाता है। अतः सहीसमझ- होना या संबंध के बारे में स्पटष्ता होना ही संबंध के निर्वाह का आधार है।

वर्तमान स्थिति का अवलोकन
(Appraisal of the Current Status)

वर्तमान में हमारे पास पहले से कहीं अधिक सुविधाये हैं, इसके उपरांत भी जनसंख्या के एक बड़े भाग को खाने के लिये पर्याप्त भोजन, शरीर को ढकने के लिये पर्याप्त वस्त्र नहीं मिल पा रहे हैं। क्या यह उत्पादन की समस्या है या वितरण की? निश्चित रूप से यह उत्पादन की समस्या तो नहीं है, बल्कि वितरण की समस्या है; और वितरण की समस्या वास्तव में संबंधों में स्वीकृति न होने की समस्या है। क्योंकि उत्पादन तो आवश्यकता से कई गुना हो रहा है। आप देख ही सकते हैं कि यदि आपके परिवार में बच्चों, बुजुर्गों इत्यादि के लिये स्वीकृति का भाव होता है तो आप बिना किसी शर्त उनके साथ वस्तुओं को साझा करते ही हैं। क्योंकि परिवार के बाहर संबंधों में स्वीकार्यता का भाव नहीं है अतः आवश्यकता से अधिक सुविधा उपलब्ध होने के बावजूद भी, हम इसका वितरण सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं। अभी तो संबंधों की स्वीकार्यता होने की जगह एक निश्चित दायरे के बाहर के व्यक्तियों के लिये विरोध का भाव हो गया है। इसलिये किसी न किसी कारण को आधार बनाकर हम अपने स्रोतों का बहुत बड़ा भाग सामूहिक रूप से युद्ध की तैयारी में लगा रहे हैं, न कि इन्हें औरों के साथ साझा करने में।
वर्तमान में वास्तविक समस्या यह है कि हम मानव को 'शरीर' मानते हैं और शरीर के आधार पर ही संबंधों को देखने का प्रयत्न करते हैं। इसलिये हम संबंध को सही-सही समझ नहीं पाते और परिणाम स्वरूप संबंध में निर्वाह की हमारी चाहना होने के बावजूद भी हम संबंध का ठीक-ठीक निर्वाह करने में असफल हो जाते हैं। यही कारण है कि संबंधों के निर्वाह से संबंधित बहुत सी शिकायतें हममें बनी रहती हैं। हम संबंधों के निर्वाह की कमी के बारे में बहुत सी बातें करते रहते हैं; सोचते रहते हैं लेकिन शायद ही इसकी वास्तविक समस्या को ठीक-ठीक समझ पाते हैं। अधिकांश समय हम संबंधों के निर्वाह में होने वाली कमियों को ही ढूंढते रहते हैं और उसे किसी न किसी सुविधा से पूरा करने का प्रयत्न भी करते रहते हैं, किन्तु संबंध के निर्वाह में सफल नहीं हो पाते। इसे हमने अध्याय-3 में अध्ययन किया था कि हमारे परिवार में जो दुख है, वह अधिकतर संबंधों में ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है या सुविधाओं की कमी के कारण और हम यह देख पाये थे कि हमारे परिवार में अधिकांश दुख संबंधों के ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है जबकि हम अपना अधिकांश समय और प्रयास सुविधाओं को जुटाने में ही लगा रहे हैं।

वर्तमान में संबंधों की समस्या एक या एक से अधिक सहज स्वीकार्य भावों के अभाव के कारण है और हम इस अभाव को सुविधाओं से भरने का प्रयत्न करते हैं या दूसरे से ये भाव पा कर 'मैं' में इन भावों की कमी को भरने का प्रयत्न करते रहते हैं। बजाय इसके कि इन भावों को समझकर 'मैं' में सुनिश्चित किया जाये और इन्हें दूसरों के साथ साझा किया जाये जिससे संबंध में ठीक-ठीक निर्वाह सफल हो सके।

अब हम उस उदाहरण को याद कर सकते हैं, जिसमें किसी से बदला लेने के बारे में दो घंटे सोचते हैं और दो घंटे बाद बदला लेने का वह विचार छोड़ देते हैं। इन दो घंटों के दौरान आप दुखी बने रहते है जबकि दूसरे व्यक्ति को इसके बारे में पता भी नहीं चलता क्योंकि आपने इस भाव को व्यक्त ही नहीं किया, लेकिन आप निश्चित तौर पर दुखी बने ही रहते हैं। यदि आप इस दुख को देखें तो इसका मूल कारण आप में दूसरे के प्रति विरोध का भाव है। चूंकि विरोध का यह भाव आपको सहज स्वीकार्य नहीं है इसलिये आप 'मैं' में असहज होते है। बजाय इसके कि आप में संबंध का भाव हो (जैसे की स्नेह), विरोध का भाव (जैसे कि ईर्ष्या) होता है, जो कि आपको सहज स्वीकार्य नहीं होता और इसी कारण आपमें अन्तर्विरोध की स्थिति बनती है और अंततः आप 'मैं' में दुखी बने रहते हैं।

संबंधों की अधिकांश समस्याओं को हल करने के लिये 'मैं' में इन सहज स्वीकार्य भावों के अभाव को दूर करने के लिये सही प्रयास करने की आवश्यकता है। क्योंकि हम 'मैं' को नहीं समझ पाते हैं, इसलिये इन सहज स्वीकार्य भावों को भी नहीं समझ पाते हैं, जिसके कारण न तो हम 'मैं' में इन भावों को सुनिश्चित कर पाते हैं और न ही दूसरों के साथ इन्हें व्यक्त कर पाते हैं, जिसके कारण संबंध के निर्वाह में बाधा आती है। वास्तव में हम यह स्वीकार ही नहीं कर पाते हैं कि संबंधों में समस्या भावों के निर्वाह न हो पाने के कारण है। संबंध में इन भावों को सुनिश्चित करने के बजाय हम भावों के अभाव की समस्या को तिक सुविधा से पूरा करने का प्रयत्न करते रहते हैं और यह सोचते हैं कि यदि हमारे पास और अधिक सुविधायें हो जाये तो हम संबंधों की इस समस्या को सुलझा सकेंगे। जबकि सुविधा की कमी वास्तविक कारण नहीं होता है, शिकायत तो भाव की कमी के कारण होती है, न कि मात्र सुविधा के कारण। क्योंकि हम संबंध को समझ नहीं पाते हैं, इसलिये संबंधों में भावों को सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं और अंततः संबंधों के निर्वाह को भी सुनिश्चित करने में असफल रहते हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित प्रकरण को देखिये-

एक दंपत्ति अपने आपसी संबंध में निर्वाह की स्थिति को साझा कर रहे थे। पति ने कहा कि सामान्यतः हम दोनों पति-पत्नी के दिन की शुरुआत झगड़े से ही होती है; मेरी पत्नी सुबह-सुबह मेरे साथ घूमने जाना चाहती है और मैं अपने मित्रों के साथ बैडमिंटन खेलने जाना चाहता हूँ; इसी बात पर झगड़ा शुरू हो जाता है। अब यदि देखें तो लगता है कि उनकी समस्या बैडमिंटन खेलने और सुबह-सुबह टहलने की गतिविधि के कारण है परन्तु वास्तव में ध्यान से देखें तो समस्या बैडमिंटन खेलने और सुबह-सुबह टहलने को लेकर नहीं है बल्कि आपस में एक दूसरे के लिये स्नेह के भाव की कमी के कारण हैं।

जब दो लोगों में स्नेह का भाव होता है तो वे एक दूसरे की अपेक्षाओं की पूर्ति को वरीयता दे पाते हैं या कम से कम मिलकर ऐसा कार्यक्रम बनाने का प्रयास करते हैं जिससे दोनों की अपेक्षायें पूरी हो सके और यदि स्नेह के भाव का अभाव है तो हमारा पूरा प्रयास सिर्फ अपनी अपेक्षाओं को पूरा करवाने का ही रहता है और दूसरे की अपेक्षा के बारे में तो हम सोच भी नहीं पाते। जैसे जब पति-पत्नी में एक दूसरे के लिये स्नेह का भाव होता है तो पत्नी, पति के पसंद का भोजन बनाने का प्रयास करती है और पति ऑफिस जाते समय पत्नी के पसंद के कपड़े पहनने का प्रयास करता है और दोनों को ही ऐसा करना अपने में मजबूरी जैसा नहीं लगता और न ही वे ऐसा करके दुखी होते हैं, बल्कि वे ऐसा करते समय सुखी बने रहते हैं। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उनमें एक दूसरे के लिये स्नेह का भाव है। अतः जब एक दूसरे के लिये स्नेह का भाव होता है तो हम एक दूसरे के पसंद को वरीयता देकर सुखी होते हैं या कम से कम ऐसा कार्यक्रम बनाने का प्रयास करते हैं कि दोनों की अपेक्षा पूरी हो सके किन्तु जब स्नेह का भाव नहीं हो और दूसरे के पसंद को अपनी पसंद की तुलना में वरीयता देनी पड़े तो इसमें बहुत घुटन होती है।

इसलिये हम यह कह रहे है कि उन दोनों पति-पत्नी में समस्या बैडमिंटन खेलने और सुबह-सुबह टहलने को लेकर नहीं है बल्कि आपस में स्नेह के भाव की कमी के कारण है। अब यदि दोनों में एक दूसरे के लिये स्नेह का भाव हो जाये तो फिर वे या तो दूसरे की अपेक्षा को वरीयता दे पायेंगे या कम से कम दोनों की अपेक्षायें पूरी हो सके, इसके लिये मिलकर कार्यक्रम बना पायेंगे। जैसे एक कार्यक्रम यह भी हो सकता है कि पति अपने मित्रों के साथ बैडमिंटन खेल ले और पत्नी उस बैडमिंटन कोर्ट के चारो ओर टहल ले। अतः समस्या भाव के अभाव की है। यदि भाव होता है तो दोनों संयुक्त कार्यक्रम बनाने और निर्वाह करने का प्रयास कर पाते हैं।

सामान्यतः हम भाव के अभाव को सुविधाओं से भरने का प्रयत्न करते हैं , जैसे हम बढ़िया रात्रि भोज, विशिष्ट उपहार, रमणीय दर्शनीय स्थल पर भ्रमण, जन्मदिन/ विवाह की वर्षगांठ आदि मना कर भाव के अभाव को भरने का असफल प्रयास करते रहते हैं। क्या वास्तव में इस तरह की गतिविधियां भाव के अभाव को भर सकती हैं? यदि कमी भाव की है तो क्या इसे सुविधाओं से पूरा किया जा सकता है?

हमने यह देखा कि संबंधों के निर्वाह को सही भाव के माध्यम से ही सुनिश्चित किया जा सकता है। भाव के अभाव को सिर्फ सुविधाओं से पूरा नहीं किया जा सकता, चाहे इसके लिये हम कितनी भी सुविधायें क्यों न लगा दें। यद्यपि हमारे पास सुविधायें तो बहुतायत में है, लेकिन हमने भावों को ठीक-ठीक नहीं समझा है; इसे 'मैं' में सुनिश्चित नहीं कर पायें हैं यही हमारी वास्तविक समस्या है। अब भी हम इन भावों को समझने के लिये तत्पर नहीं हो पाते हैं और इन्हें 'मैं' में सुनिश्चित करने का प्रयास भी नहीं करते, बल्कि दूसरों से भाव पा कर इसे पूरा करने की आशा बनाये रहते हैं। यदि दूसरा व्यक्ति हमारे लिये सही भाव व्यक्त कर पाता है तो हम खुश होते हैं और जब वह सही भाव नहीं व्यक्त कर पाता है तो हम दुखी हो जाते हैं। उदाहरण के लिये यदि मैं सम्मान के भाव की आशा रखता हूँ और दूसरा मेरा सम्मान कर पाता है तो मैं सुखी होता हूँ और जब वह सम्मान व्यक्त नहीं कर पाता तो मैं दुखी हो जाता हूँ। प्रायः ऐसा ही होता है; वास्तव में आज कल हमारे अधिकांश कार्यक्रम इसी तरह के दूसरे से भाव पाने के अर्थ में ही बने हुये हैं।

जाँच करके देखिये कि क्या आप 'मैं' में सम्मान के भाव को समझ कर सुनिश्चित करने और दूसरे से साझा करने के बारे में सोचते हैं या दूसरों से सम्मान का भाव पाने के बारे में ही सोचते हैं? यदि आप दूसरों से सम्मान का भाव पाने के बारे में ही सोचते हैं और या दूसरों को इस भाव की पूर्ति के लिये बाध्य करते हैं, तो भी दूसरा इस भाव की पूर्ति निरंतरता में सुनिश्चित नहीं कर सकता। क्योंकि यदि दूसरा भी संबंध को नहीं समझा है, 'मैं' को नहीं समझा है, भावों को नहीं समझा है, और 'मैं' में इस भाव को सुनिश्चित नहीं कर पाया है तो, उस व्यक्ति में सम्मान का भाव ही नहीं होगा। और जब दूसरे में सम्मान का भाव ही नहीं होगा तो, वह इसे निरंतरता में व्यक्त भी नहीं कर सकता। परिणाम स्वरूप दूसरों से सम्मान पाने की आपकी यह आशा निरंतरता में पूरी नहीं हो सकती। इसलिये नहीं कि वह आपका सम्मान नहीं करना चाहता बल्कि इसलिये कि उसके 'मैं' में सम्मान का भाव ही नहीं है। जब दूसरों से सम्मान का भाव नहीं मिल पाता तो हम अनेक तरह से प्रयास करते हैं ताकि सम्मान के भाव को पाया जा सके। जैसे हम आधुनिक फैशन वाले वस्त्र पहनते हैं, बहुत बड़ा घर बनाते हैं इत्यादि पर क्या इन सबके आधार पर हम दूसरे से निरंतरता में भाव पाने में सफल हो पाते हैं? कई बार इसमें कुछ अस्थाई सफलता मिलती हुई प्रतीत हो सकती है, लेकिन वास्तव में ये निरंतरता में सफल नहीं हो पाती है। उस उदाहरण का संदर्भ लीजिये, जिसमें हमने पूछा था कि जब आप किसी पार्टी में एक विशेष तरह का परिधान पहन कर जाते हैं तो इससे दूसरों में आपके प्रति सम्मान का भाव उत्पन्न होता है या ईर्ष्या का? अधिकांशत: ईर्ष्या का भाव ही उत्पन्न होता है। कभी-कभी सम्मान का भाव भी उत्पन्न होता है, विशेषकर उन व्यक्तियों में जो आपके पुराने व्यवहार से आश्वस्त हैं न कि आपके इस विशेष परिधान की वजह से। यदि दूसरे में आपके लिये पहले से ही संबंध की स्वीकृति है और दूसरा आपके साथ सहज है तो उसमें आपके लिये सम्मान का भाव भी होगा और वह व्यक्त भी करेगा चाहे आप विशेष तरह का परिधान पहने या कोई सामान्य परिधान। लेकिन जब दूसरे में आपके लिये संबंध की स्वीकृति नहीं होती है तो उसमें आपके इस विशेष परिधान

के कारण ईर्ष्या का भाव आता है क्योंकि दूसरा भी तो इस पार्टी में आप ही की तरह औरों से सम्मान पाने के प्रयास में लगा है, जिसके लिये उसने भी विशेष तरह का परिधान पहना है; अतः आप दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंदी बन जाते हैं। हम अपने अधिकांश प्रयत्न, समय एवं धन विशेष प्रकार के परिधान पहनने में लगा देते हैं जबकि प्रतिफल के रूप में सम्मान के बजाय ईर्ष्या का भाव मिलता है।

वास्तव में हो यह रहा है कि मानव में दूसरे के प्रति सम्मान का भाव व्यक्त करने की योग्यता का अभाव है क्योंकि उसने यह भाव 'मैं' में सुनिश्चित ही नहीं किया है। ऐसा इसलिये कि वह इन भावो को समझ कर 'मैं' में सुनिश्चित करने के बजाय दूसरे से पाने के गलत प्रयासों में ही लगा रहता है। आप दूसरे से ये भाव इसलिये पाना चाहते हैं क्योंकि आप में ये भाव है ही नहीं क्योंकि न तो आपने संबंध को ही समझा है और न ही संबंधों में भावों को ही और यही समस्या दूसरे के साथ भी है क्योंकि उसने भी संबंध में भाव को नहीं समझा है, न ही 'मैं' इन भावों को सुनिश्चित किया है, इसलिये उसमें भी इन भावों को व्यक्त करने की योग्यता नहीं है। अंततः स्थिति यह बनती है कि ज्यादातर लोग एक दूसरे से सम्मान के भाव की भीख मांगते रहते हैं और दोनों का ही कटोरा खाली रहता है। हम दूसरे से सम्मान की भीख मांगते हैं, लेकिन दूसरा ये भाव दे नहीं पाता है क्योंकि दूसरे का कटोरा खाली है। और हम भी दूसरों को सम्मान का भाव नहीं दे पाते हैं क्योंकि हमारा भी भाव का कटोरा खाली है। अब यह देख सकते हैं कि संबंधों में ठीक-ठीक निर्वाह न कर पाने की समस्या इन तीन कारणों से हैं-

1. संबंधों में जो भाव हमें सहज स्वीकार्य है, हम उसके निर्वाह को सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं और इनके अभाव को सुविधाओं से पूरा करने का प्रयत्न करते हैं, जो कि सफल नहीं होता।
2. हम स्वयं में इन सहज स्वीकार्य भावों को सुनिश्चित नहीं कर पाते हैं क्योंकि हममें 'मैं' की समझ नहीं है। इसलिये,
3. हम यह नहीं समझ पाते हैं कि संबंध एक 'मैं' और दूसरे 'मैं' के बीच है।

अतः संबंधों में प्रमुख समस्या भाव की है; न कि सिर्फ सुविधा की।

अधिकांश समस्यायें जैसे शासन, शोषण, मिलावट, विवाह-विच्छेद, परिवारों का टूटना इत्यादि को संबंधों में समझ की कमी एवं संबंधों में भाव की कमी के कुछ लक्षणों के रूप में देखा जा सकता है।

ये समस्यायें, मानव को समझने की, 'मैं' को समझने की, संबंध को समझने की, 'मैं' में सही-भाव को सुनिश्चित करने की, संबंधों में इन भावों को दूसरे के साथ साझा करने की, इन्हें मूल्यांकित करने की और उभय सुख को सुनिश्चित करने की आवश्यकता को चिन्हित करती हैं।

आगे का मार्ग

(The Way Ahead)

इस पृष्ठभूमि के साथ आइये देखें कि संबंधों के निर्वाह को सुनिश्चित करने के लिये क्या-क्या करने की आवश्यकता है। इसके लिये मौलिक बात तो इन भावों को समझना है, क्योंकि जब हम इन भावों को समझ पाते हैं, तभी इन्हें स्वयं में सुनिश्चित कर पाते हैं। संबंध के निर्वाह के लिये इन भावों को समझना और 'मैं' में सुनिश्चित करना आवश्यक है। अतः जब हम समझ पाते हैं तो हममें सहज स्वीकार्य भाव हो पाते हैं। जब ये भाव हम में सुनिश्चित हो पाते हैं तो:-

1. हम 'मैं' में सहज हो पाते हैं, 'मैं' में व्यवस्था भी सुनिश्चित कर पाते हैं क्योंकि ये भाव ही हमें सहज स्वीकार्य होते हैं। यह बिल्कुल निश्चित है कि जिस क्षण हम संबंधों में भाव को समझ पाते हैं, उसी क्षण हम में ये भाव सुनिश्चित हो जाते हैं, जिससे हम स्वयं में भी व्यवस्थित हो पाते हैं।
2. हम इन भावों को दूसरे के साथ साझा कर पाते हैं जो कि इन भावों को समझ पाने का एक सहज प्रतिफल है। जैसे यदि हममें दूसरे के लिये सम्मान का भाव है तो हम सम्मान के भाव को उसके प्रति व्यक्त कर पाते हैं। इसी प्रकार से स्नेह का भाव, ममता का भाव, वात्सल्य का भाव भी व्यक्त हो पाता है।

3. उभय सुख सुनिश्चित होता है। चूंकि ये भाव हमको सहज स्वीकार्य हैं, इससे हममें सुख सुनिश्चित होता है और जब हम इन्हें दूसरे के प्रति व्यक्त करते हैं तो वह भी सुखी होता है क्योंकि उसे भी यही भाव सहज स्वीकार्य हैं; अतः उभय सुख सुनिश्चित हो पाता है।

इस विषय को क्लास में पढ़ाते समय, संबंध पर चर्चा के दौरान, एक छात्र को आशा की किरण दिखने पर उसने अपने UHV विषय के शिक्षक से अपने पिता जी के साथ संबंधों की कड़वाहट के बारे में चर्चा की और बताया कि उसके और उसके पिता जी के बीच पिछले ढाई वर्ष से बातचीत नहीं हो पायी है। इस दौरान दोनों के बीच आवश्यक बातचीत, उनकी माता जी के माध्यम से ही हो पाती थी। छात्र ने जानना चाहा कि वह अपने पिता जी के साथ संबंध को ठीक करने के लिये क्या प्रयास कर सकता है? शिक्षक ने उत्तर दिया कि जब आपमें किसी काम को करने की दृढ़ इच्छा होती है तो, आप उस काम को करने के लिये अलग-अलग तरह से तब तक प्रयासरत रहते हैं जब तक कि आप उस कार्य को पूर्ण करने में सफल न हो जायें। अतः यदि आपको पिता जी से बातचीत करना वास्तव में महत्वपूर्ण लगता है तो आप इसके लिये कई तरह से प्रयास करेंगे और किसी न किसी प्रकार से आपको सफलता अवश्य मिलेगी बस आपको इसके लिये साहस करने और अपनी जिम्मेदारी पर प्रयास शुरू करने की जरूरत है।

उस छात्र ने विचारपूर्ण मुद्रा में शिक्षक की ओर देखा और स्वीकृति में अपना सिर इस प्रकार हिला दिया जैसे कि उसने इस संदर्भ में कुछ न कुछ करने का निर्णय ले लिया हो। ढाई वर्षों से दोनों एक ही घर में रह रहे हैं परन्तु एक दूसरे से बातचीत नहीं हो पा रही है आपस में एक दूसरे के लिये आवश्यक सुविधाओं को तो साझा कर रहे हैं जैसे कॉलेज की फीस, भोजन इत्यादि लेकिन संबंध में आवश्यक भावों को साझा नहीं कर पा रहे हैं; ऐसा लगता है जैसे कहीं न कहीं भावों का बाँध बना कर, उसे अपने ही भीतर रोक दिया हो। वैसे भी आजकल सुविधा को वरीयता देकर और भावों की अनदेखी करके जीने का अभ्यास ही होता जा रहा है, देखें तो सामान्यतः परिवारों में इसी तरह की स्थिति बनती जा रही है। विचारणीय मुद्दा यह है कि इस तरह की स्थितियों में जहाँ भाव का आदान प्रदान ही आपस में बंद हो, तब दोनों ही दुखी होते रहते हैं, चाहे घर कितना ही सुविधाओं से भरा हुआ क्यों न हो। इस परिवार में भी ऐसा ही था; भाव की समझ और महत्व स्पष्ट न होने के कारण दोनों ही संबंधों के दुःख को भोगने के लिये विवश थे।

एक बार जब ध्यान इस बात पर चला जाता है कि समस्या तो भाव से जुड़ी हुई है तब हम इन भावों को समझने के लिये तत्पर होते हैं एवं भावों के आदान प्रदान की अपनी जिम्मेदारी भी स्वीकारते हैं न कि सिर्फ दूसरे की पहल का इंतजार करते हैं कि वह करेगा या हर बार मैं ही क्यों करूँ इत्यादि।

छात्र को अपने शिक्षक द्वारा कहे गये वे शब्द कि "यदि आपको पिता जी से बातचीत करना वास्तव में महत्वपूर्ण लगता है तो आप इसके लिये कई तरह से प्रयास करेंगे और किसी न किसी प्रकार से आपको सफलता अवश्य मिलेगी, बस आपको इसके लिये साहस करने और अपनी जिम्मेदारी पर प्रयास शुरू करने की जरूरत है" बार-बार याद आते थे और वह सोचता रहता था कि क्या किया जाये? एक दिन उसने इस संदर्भ में कुछ प्रयोग करने का निर्णय लिया।

वह नव वर्ष का समय था, उस छात्र ने सोचा कि टूटे हुये संबंधों को ठीक करने का यही उचित समय है। उसने एक सुंदर फूल लिया और अपने पिता जी के सामने फूल भेंट करने की मुद्रा में पिता जी के समक्ष खड़ा हो गया। पिता जी उस समय ऑफिस जाने के लिये तैयार हो रहे थे। उन्होंने थोड़ी नाराजगी भरी आवाज में जोर से कहा 'ये क्या है'; छात्र ने शालीनता से उत्तर दिया कि 'फूल है'; पिता जी ने कहा 'यह तो मैं देख ही रहा हूँ लेकिन यह तुम मुझे क्यों दे रहे हो; क्या मतलब है तुम्हारा?'

छात्र ने कहा 'पिता जी फूल तो मात्र एक माध्यम है, इस बात पर आपका ध्यान दिलाने का कि हम दोनों के बीच लगभग ढाई वर्षों से बातचीत नहीं हो रही है। क्या आप इसे ऐसे ही चलाना चाहते हैं या ठीक करने के लिये भी कुछ करना है?'। पिता जी बोले 'बता क्या कहना चाहता है?'; छात्र बोला 'अभी तो आपको ऑफिस जाने के लिये देरी हो रही है आप ऑफिस हो आइये, जब शाम को आप वापस आयेंगे तब बात कर लेंगे क्योंकि कहने सुनने को बहुत कुछ है'।

आपको क्या लगता है? आपस में भाव का आदान प्रदान न हो पाने के कारण क्या सिर्फ बेटा ही दुखी होगा या पिता जी भी दुखी होंगे? निःसंदेह दोनों ही दुखी होंगे। तब पिता जी ने कहा 'आज ऑफिस थोड़ी देरी से चले जायेंगे पहले बात ही कर लेते हैं'; दोनों में जब बातचीत शुरू हुई तो लगभग दो घंटे तक चली। इस दौरान चर्चा इस बात पर भी हुई कि दोनों के बीच बातचीत कैसे बंद हुई और क्या-क्या गलतियाँ हुईं इत्यादि।

दोनों में यह समस्या कब से शुरू हुई यदि इस बात को देखें तो इसकी शुरुआत तब से दिखाई देती है जब एक बार उस छात्र के माता-पिता कहीं बाहर गये थे और छात्र ने इस अवसर का लाभ उठाकर अपने मित्रों को घर पर कार्ड(ताश) खेलने की लिये बुला लिया था। उसी दौरान उसके माता-पिता वापस घर आ गये और अपने बेटे को इस तरह ताश खेलते देख काफी नाराज हुये थे क्योंकि आज भी कई परिवारों में ताश खेलने को अच्छा नहीं माना जाता। छात्र के पिता जी इतने नाराज हुये कि उन्होंने अपने बेटे को उसके मित्रों के सामने सिर्फ डांटा ही नहीं बल्कि उसकी पिटाई भी कर दी। वह छात्र अपने मित्रों के सामने हुई इस पिटाई से बहुत अपमानित महसूस कर रहा था, परन्तु उसने इसका जिक्र किसी से भी नहीं किया लेकिन अंदर ही अंदर अपमान के उस भाव को चलाता रहा।

कुछ दिनों, बाद एक बार जब वह छात्र कॉलेज से वापस अपने घर पहुँचा तो उसने देखा कि उसके पिताजी अपने मित्रों के साथ कार्ड खेल रहे थे। अन्दर ही अन्दर चल रहे अपमान के कारण वह छात्र पहले से ही प्रतिक्रिया में था; उसी प्रतिक्रिया के तहत उसने अपने पिताजी को उनके मित्रों के सामने ही बोल दिया कि 'वही ताश का खेल अब अच्छा हो गया क्योंकि आप लोग खेल रहे हैं, अब कहाँ गये आपके वे उपदेश जो आपने मेरे मित्रों के सामने दिये थे जब मैं अपने मित्रों के साथ खेल रहा था' इत्यादि। पिता जी अपने मित्रों के सामने अपने ही बेटे के द्वारा कहे गये इन कड़वे शब्दों से काफी आहत हुये और उन्होंने गुस्से में आकर अपने बेटे की फिर से पिटाई कर दी। वैसे भी गलती चाहे बेटा करे या पिता, पिटाई तो बेटे को ही खानी पड़ती है। इस घटना के बाद पिता और पुत्र के बीच के संबंध काफी खट्टे हो गये और उन्होंने आपस में बात करना बंद कर दिया।

इस घटना के लगभग ढाई वर्ष बाद, आज दोनों में सीधे-सीधे बात हो रही थी; लेकिन स्थिति अब अलग थी क्योंकि बेटे ने संबंध का, संबंधों में भाव का और उनके निर्वाह का अध्ययन कर लिया था इसलिये अब वह उन्हीं घटनाओं को अलग प्रकार से देख पा रहा था और ठीक तरह से व्यक्त भी कर पा रहा था; इसका आराम उसके पिता जी भी महसूस कर पा रहे थे और उन पुरानी घटनाओं को ठीक से समझने एवं व्यक्त करने का प्रयास भी कर रहे थे।

पिता जी ने कहा कि मैं उस दिन आवेश में आ गया था इसलिये ऐसा हुआ। वास्तव में मुझे तुम्हें तुम्हारे दोस्तों के सामने कुछ न कह कर उस घटना के बार में अलग से बात करनी चाहिये थी। तब बेटे ने भी कहा कि अब मैं आपके दुःख को महसूस कर पा रहा हूँ। वास्तव में उस घटना से जितना दुःख मुझे हुआ था आपको को भी उतना ही बल्कि उससे कहीं अधिक दुःख हुआ होगा जब मैंने आपका अपमान आपके मित्रों के सामने किया था। उस समय मैं अपने अन्दर चल रहे अपमान और विरोध के भाव के कारण बहुत प्रतिक्रिया से भरा था। मैं उस स्थिति को और बेहतर ढंग से हल कर सकता था यदि मुझे संबंध में भावों के बारे में यह समझ पहले ही मिल गयी होती।

इस चर्चा के दौरान दोनों की ही आँखें नम हुईं; दोनों ने जो अपने भीतर इन सहज स्वीकार्य भावों को अनजाने में बाँध बना कर रोक रखा था अब वह बाँध टूट चूका था और अब दोनों ही सहज रूप से ये भाव एक दूसरे के प्रति व्यक्त कर पा रहे थे, जिसका सुख दोनों ही महसूस कर रहे थे; दोनों रो भले ही रहे थे किन्तु बहुत हल्का भी महसूस कर पा रहे थे।

क्या आप इस घटना में यह देख पा रहे हैं कि यह संबंधों और भावों की समझ ही थी, जिससे यह परिवर्तन शुरू हो पाया?

अतः संबंध एवं संबंध में निहित भावों को समझना महत्वपूर्ण है। आइये अब हम भावों को और इनके निर्वाह को समझना शुरू करते हैं।

संबंध के निर्वाह को सुनिश्चित करने का कार्यक्रम इस प्रकार है:

पहला संबंध को समझना; संबंध को स्वीकार करना; संबंध में भावों को पहचानना; इन भावों को समझना और 'मैं' में सुनिश्चित करना। वास्तव में जिस क्षण हम इन भावों को समझते हैं, ये भाव हममें सुनिश्चित हो जाते हैं। इन भावों को सुनिश्चित करने के लिये, हमें कुछ अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती, सिवाय इसके कि इनको समझ लिया जाये।

दूसरा, इन भावों को दूसरे के प्रति व्यक्त करना; चूंकि यही भाव दूसरे को भी सहज स्वीकार्य होते हैं, अतः इससे दूसरा भी सुखी हो पाता है। इस प्रकार इससे उभय सुख सुनिश्चित हो पाता है; और संबंधों का ठीक-ठीक निर्वाह भी हो पाता है।

इस प्रकार, संबंधों की समझ और उनके प्रति स्वीकार्यता से; संबंधों में भावों को समझने एवं मैं में सुनिश्चित करने के साथ-साथ इन भावों को व्यक्त करने और इनके सही मूल्यांकन से उभय सुख हो पाता है।

अंततः हम यह देख सकते हैं कि संबंधों के निर्वाह के लिये इन 9 भावों को समझना और इनको 'मैं' में सुनिश्चित करना आवश्यक है। अब हम इनमें से प्रत्येक भाव को एक-एक करके अध्ययन करने का प्रयत्न करेंगे, जो कि विश्वास के भाव से शुरू होगा।

(**टिप्पणी:** यह विशेष रूप से एक विस्तृत अध्याय है जिसमें संबंधों के मूलभूत मूल्यों पर विस्तार पूर्वक चर्चा की गई है। पाठकों को समझने में सहायता के लिये हम 'महत्वपूर्ण बिन्दु' एवं 'अपनी समझ को जाँचे' शीर्षक को प्रत्येक मुख्य भाग के अंत में दे रहे हैं)

संबंधों के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु
(Salient Points regarding Relationship)

- *संबंध और व्यवस्था में जीने के लिये 'परिवार' मानवीय संगठन की मूल इकाई है।*
- *संबंधो में सही-सही निर्वाह के लिये संबंध को समझना आवश्यक है। संबंध को बिना समझे सिर्फ मानना के आधार पर इसका ठीक-ठीक निर्वाह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता।*
- *संबंध पहले से हैं ही। संबंध एक स्वयं(मैं1) और दूसरे स्वयं(मैं2) के बीच होता है। हम संबंधों में जुड़े हुये ही रहते हैं चाहे हम इन्हें पहचान पायें या न पहचान पायें। जब हम संबंधों को पहचान पाते हैं तो इनको स्वीकार भी पाते हैं और इनके निर्वाह के बारे में सोच भी पाते हैं। जब हम संबंध को नहीं समझते तब भी संबंध तो रहता ही हैं बस हम इन्हें देख नहीं पाते और न ही स्वीकार पाते हैं, अतः हम संबंधों के निर्वाह में सफल नहीं हो पाते।*
- *परिवार में ज्यादातर दुख संबंधों में ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है; सुविधाओं की कमी के कारण कम है। संबंधों में मूल समस्या भावों के अभाव के कारण अधिक हैं, न कि सुविधाओं की कमी के कारण। कोई भी सुविधा, भाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती।*
- *संबंधों का आधार भाव हैं- एक स्वयं(मै1) में दूसरे स्वयं(मैं2) के लिये। भाव 'मैं' में होते हैं न कि 'शरीर' में। संबंधो के निर्वाह में भाव ही मौलिक हैं।*
- *ये भाव निश्चित होते हैं। अतः इन्हें समझ सकते हैं। संबंधों में कुल नौ सहज स्वीकार्य भाव हैं। विश्वास (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम (पूर्ण मूल्य) तक।*
- *जब हम 'मैं' में इन सहज स्वीकार्य भावों को सुनिश्चित कर पाते हैं; दूसरे से साझा कर पाते हैं; और इन भावों का सही-सही मूल्यांकन कर पाते हैं तब उभय सुख सुनिश्चित होता है।*

अपनी समझ को जाँचे
(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. क्या संबंध को समझे बिना संबंध में ठीक-ठीक निर्वाह कर पाना संभव है? संबंधों को समझने और जीने के लिये परिवार एक मौलिक स्थान कैसे है, इसकी व्याख्या कीजिये।
2. 'संबंध है - एक स्वयं(मैं1) और दूसरे स्वयं(मैं2) के बीच' इस वक्तव्य का परीक्षण कीजिये।
3. 'संबंध में ठीक-ठीक निर्वाह के लिये 'मैं' में भावों का होना मौलिक है' इस वक्तव्य का मूल्यांकन करें।
4. मानव-मानव संबंध में कौन-कौन से भाव हैं? क्या ये भाव आपको सहज स्वीकार्य हैं? आप क्या समझते हैं क्या ये भाव दूसरे को भी सहज स्वीकार्य होते हैं?
5. जब हम संबंध को मात्र सुविधाओं के आदान–प्रदान के आधार पर पहचानने का प्रयत्न करते हैं तो इसके क्या परिणाम होते हैं?

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self-Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. आपके लिये परिवार का क्या अर्थ है? अपने परिवार या बड़े परिवार के लोगों की सूची बनायें; आप परिवार के सदस्यों को क्या कहते हैं? आप इन्हें किस संबंधसूचक शब्द से पुकारते हैं जैसे कि पिता-माता, भाई-बहन, चाचा-चाची, मामा-मामी इत्यादि?
    a. इनमें से प्रत्येक सदस्य से आप क्या आशा रखते हैं?
    b. इनमें से प्रत्येक सदस्य के प्रति आपका क्या उत्तरदायित्व है?
    c. इनमें से प्रत्येक सदस्य के साथ संबंध में जीने की आपकी क्या स्थिति है?
    d. इस अभ्यास से आप क्या निष्कर्ष निकल पाये?
2. परिवार में कम से कम दस संबंधों की सूची बनाइये जैसे कि माता-पिता, माता-पुत्री, माता-पुत्र, पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-भाई, भाई-बहन, चाचा-चाची, मामा-मामी इत्यादि। प्रत्येक के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं को लिखिये:
    a. सर्वप्रथम प्रत्येक संबंध में व्यवस्था की स्थिति का मूल्यांकन कीजिये। यदि आपके माता-पिता एक दूसरे के साथ पूरी तरह से व्यवस्था में जी पाते हैं तो माता-पिता के सामने 100% लिख दीजिये। और यदि आप अपने चाचा या अपने मामा के साथ 50% समय व्यवस्था में जी पाते हैं तो चाचा या मामा के सामने 50% लिख दीजिये।
    b. संबंधों में व्यवस्था या अव्यवस्था होने के आप क्या कारण देख पाते हैं?
    c. आप इन संबंधों में व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिये क्या योगदान दे सकते हैं (यदि आपको लगता है कि इनमें कुछ कमी है)?
    d. इस अभ्यास से आप क्या निष्कर्ष निकल पाये?
3. ऐसे संबंधो को लीजिये जिनमें आपकी सबसे ज्यादा असंतुष्टि या शिकायतें हैं; यदि आप अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के साथ व्यवस्था में हैं तो आप इस अभ्यास को छोड़ भी सकते हैं या फिर आप इस अभ्यास को अपने मित्रों या अपने बड़े परिवार के सदस्यों के साथ कर सकते हैं।
    a. अपनी असंतुष्टि, शिकायतें एवं वह सब कुछ जो कि आप इन सदस्यों में नहीं चाहते, इनकी सूची बनाइये।
    b. पारिवारिक सदस्यों के बारे में उनके कुछ अच्छे गुणों की सूची बनाइये जो आप उनमें चाहते हैं।
    c. इन सूचियों में उन बिन्दुओं को ज्ञात कीजिये, जिनके लिये आपको सुविधाओं की आवश्यकता हो और उन बिंदुओं को भी ज्ञात कीजिये, जिनमें भाव के अर्थ में कुछ करने की आवश्यकता हो।
    d. इस अभ्यास से आपने क्या निष्कर्ष निकाला?

मानव-मानव संबंधों मे आधार मूल्य- विश्वास
(Trust as the Foundation Value)

पुनरावृत्ति
(Recap)

अभी तक हमने संबंध के चार महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन किया:

- संबंध है- एक और दूसरे '(मैं1)स्वयं' के '(मैं2)स्वयं' बीच
- संबंध में भाव हैं- एक में दूसरे '(मैं1)स्वयं' के लिये '(मैं2)स्वयं'
- इन भावों को पहचाना जा सकता है – ये निश्चित हैं
- इन भावों के निर्वाह और इनके सहीमूल्यांकन- से उभय सुख होता है।

और संबंध के निर्वाह को सुनिश्चित करने का कार्यक्रम पर भी चर्चा की जो इस प्रकार है:
पहला संबंध को समझनासंबंध ;संबंध को स्वीकार करना ; में भावों को पहचानना; इन भावों को समझना और 'मैं 'में सुनिश्चित करना। वास्तव में जिस क्षण हम इन भावों को समझते हैं, ये भाव हममें सुनिश्चित हो जाते हैं। इन भावों को सुनिश्चित करने के लियेहमें , कुछ अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती, सिवाय इसके कि इनको समझ लिया जाये। आईए इन भावों को समझने की दृष्टि से इस अध्याय मे हम संबंधों मे आधार मूल्य विश्वास पर चर्चा करते हैं। -

विश्वास- आधार मूल्य
(Trust as the Foundation Value)

हम यह देख सकते हैं कि संबंधों में निर्वाह के लिये इन नौ भावों की समझ और अभिव्यक्ति आवश्यक है। अतः आइये विश्वास के भाव को समझने से आरम्भ करते हैं। विश्वास का आशय है "आश्वस्त होना"।
विश्वास का आशय है आश्वस्त होना अर्थात् दूसरा मेरे सुख और समृद्धि के अर्थ में है, ऐसा स्पष्ट होना।
जब आप में इस बात की स्पष्टता होती है कि दूसरा आपको सुखी और समृद्ध करना चाहता है तो क्या आप उसके प्रति आश्वस्त महसूस करते हैं? चूंकि हमारी मूल चाहना, सुख और समृद्धि की निरंतरता है, अतः जब भी हम इस बारे में स्पष्ट हो पाते हैं कि दूसरा हमें सुखी और समृद्ध करना चाहता है, तब हम उसके प्रति आश्वस्त हो पाते हैं, यही विश्वास के भाव का आशय है। दूसरी तरफ यदि हम में थोड़ा सा भी संशय हो कि दूसरा हमें दुखी और दरिद्र करना चाहता है तो हम उसके प्रति आश्वस्त नहीं हो पाते हैं। हम संशय, आशंका या भय में बने रहते हैं और हममें दूसरे के प्रति अविश्वास का भाव बनता है।
क्या आपको विश्वास की यह परिभाषा सहज स्वीकार्य है? आप इसका उत्तर देने में शीघ्रता न करें, आइये पहले इसका और अध्ययन करते हैं।
आइये हम दो व्यक्तियों के बीच विश्वास का मूल्यांकन करने के लिये इन आठ कथनों का परीक्षण करते हैं। चूंकि आप यह पुस्तक पढ़ रहे हैं अतः आप स्वयं को पहला व्यक्ति और जो आपके आस-पास हो उसे दूसरा व्यक्ति माने जैसे कि आपके माता-पिता, भाई-बहन इत्यादि।
आइये पहले चार कथनों के समूह का मूल्यांकन करते हैं:
1a. मैं स्वयं को सुखी करना चाहता हूँ।
2a. मैं दूसरे को सुखी करना चाहता हूँ।
3a. दूसरा स्वयं को सुखी करना चाहता है।
4a. दूसरा मुझे सुखी करना चाहता है।
ये चारों कथन हमारी सहज स्वीकृति अर्थात् हमारी चाहना के बारे में हैं।
कथन 1a. मैं स्वयं को सुखी करना चाहता हूँ।

क्या यह कथन आपके लिये सही है? क्या यह आपको सहज स्वीकार्य है? आपकी सहज स्वीकृति क्या है स्वयं को सुखी करना या दुखी?
प्रेक्षण 1a.- हाँ, मैं स्वयं को सुखी करना चाहता हूँ। वास्तव में, मैं यह देख पाता हूँ कि मेरी प्रत्येक गतिविधि स्वयं को सुखी करने के अर्थ में ही है। अतः उत्तर हाँ है। इसलिये चित्र. 8-1. में, हमने 1a. के सामने सही का चिन्ह लगाया है।
कथन 2a. मैं दूसरे को सुखी करना चाहता हूँ।
आपको क्या सहज स्वीकार्य है- दूसरे को सुखी करना या दुखी? आपका सहज और स्वाभाविक उत्तर दूसरे को सुखी करना ही होगा। जबकि आपमें एक दूसरा विचार भी हो सकता है कि चलो ठीक है, हम यह प्रयास केवल उनके लिये करेंगे जो हमारे लिये अच्छे हैं; आप अजनबियों के लिये बहुत अधिक नहीं सोच पा रहे होंगे। यह भी हो सकता है कि आप कुछ लोगों से बदला लेना चाहते हों। इस पर कुछ और विचार कीजिये। अपनी सहज स्वीकृति को देखें (अपनी योग्यता या करने को नहीं) और स्वयं से पूछिये कि यदि आप के पास सुखी और दुखी करने के दोनों ही विकल्प उपलब्ध हों तो आप दूसरों को सुखी करना चाहेंगे या दुखी? अंततः दिये हुये विकल्पों में आपका उत्तर होगा कि आपको दूसरों को सुखी करना ही सहज स्वीकार्य है।
प्रेक्षण 2a. हाँ, मैं दूसरे को सुखी करना चाहता हूँ। यदि मेरे पास यह विकल्प है तो मैं दूसरे को सुखी ही करना चाहूँगा। अतः उत्तर हाँ में है।
कथन 3a. दूसरा स्वयं को सुखी करना चाहता/ चाहती है।
आप यह भी सोच सकते हैं कि "मुझे कैसे पता चलेगा कि दूसरे व्यक्ति की चाहना क्या है?" परंतु जब हम अपनी सहज स्वीकृति के बारे में अनुमान लगाना शुरू करते हैं तो हम यह भी पता लगा पाते हैं कि दूसरे की सहज स्वीकृति क्या है। यदि आप यह देख सकते हैं कि दूसरा भी आपके ही जैसा है, उसकी सहज स्वीकृति भी आपके जैसी ही है और आप अपनी सहज स्वीकृति के बारे में स्पष्ट हैं तो आप दूसरे की सहज स्वीकृति का भी अनुमान लगा पाते हैं। लेकिन आप इसे माने नहीं बल्कि स्वयं में जाँच जारी रखिये।
प्रेक्षण 3a.- हाँ, यही सही है। जैसे मैं सुखी होना चाहता हूँ, वैसे ही दूसरा भी सुखी होना चाहता है; अतः यह दूसरे के लिये भी सही है इसलिये उत्तर हाँ में है।
कथन 4a. दूसरा मुझे सुखी करना चाहता है।
प्रेक्षण 4a. इसके बारे में मैं निश्चितता से नहीं कह सकता हूँ। अतः हम चित्र. 8-1. में 4a. के सामने प्रश्नवाचक चिन्ह लगा रहे हैं। वास्तविक समस्या यहीं पर है और यही वह जगह है, जहाँ से संशय शुरू होता है अर्थात् अविश्वास उत्पन्न होता है।

आप की सहज स्वीकृति के बारे में	आपके करने (योग्यता) के बारे में
1a. मैं स्वयं को सुखी करना चाहता हूँ। √	1b. मैं स्वयं को हमेशा सुखी करता हूँ। ?
2a. मैं दूसरे को सुखी करना चाहता हूँ। √	2b. मैं दूसरे को हमेशा सुखी करता हूँ। ?
3a. दूसरा स्वयं को सुखी करना चाहता है। √	3b. दूसरा स्वयं को हमेशा सुखी करता है। ?
4a. दूसरा मुझे सुखी करना चाहता है। ?	4b. दूसरा मुझे हमेशा सुखी करता है। ??
चाहना – सहज स्वीकृति जैसा होना आपको सहज स्वीकार है	योग्यता जैसे आप हैं (∑ इ. वि. आ.)

चित्र. 8-1. दो व्यक्तियों के बीच विश्वास का मूल्यांकन

कृपया यह ध्यान में रखिये कि ये सभी प्रश्न हमारी सहज स्वीकृति, हमारी चाहना के बारे में हैं। ये हमारी योग्यता या करने के बारे में नहीं हैं। हम अपनी योग्यता की स्थिति के बारे में बाद में देखेंगे और तब और अधिक स्पष्टता के लिये कथन 4a. पर पुनः आयेंगे।
आइये अब उन कथनों को देखें जो हमारी योग्यता अर्थात् करना से संबंधित हैं।
1b. मैं स्वयं को हमेशा सुखी करता हूँ।

2b. मैं दूसरे को हमेशा सुखी करता हूँ।
3b. दूसरा स्वयं को हमेशा सुखी करता है।
4b. दूसरा मुझे हमेशा सुखी करता है।
कथन 1b. मैं स्वयं को हमेशा सुखी करता हूँ।
यहाँ पर कौन सा चिन्ह लगायें, प्रश्नवाचक या सही का? क्या आप स्वयं को हमेशा सुखी कर पाते हैं?
प्रेक्षण 1b. हमेशा तो नहीं कर पाते हैं। अतः यहाँ पर प्रश्नवाचक चिन्ह होगा।
आप देख सकते हैं कि जहाँ तक आपकी सहज स्वीकृति, आपकी चाहना का प्रश्न है तो आप स्वयं को सुखी ही करना चाहते हैं अर्थात् हमेशा सुखी करना चाहते हैं; लेकिन जब बात अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार जीने की अर्थात् योग्यता अथवा करने की आती है, तो मुश्किल शुरू हो जाती है क्योंकि कभी तो आप स्वयं को सुखी कर पाते हैं और कभी नहीं कर पाते हैं। चूंकि हम पूरी तरह से यह नहीं कह सकते कि हाँ, मैं हमेशा स्वयं को सुखी कर पाता हूँ। अतः इस कथन पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया गया है। जबकि हम इस बात को निश्चितता से कह सकते हैं कि हम हमेशा स्वयं को सुखी ही करना चाहते हैं क्योंकि हमारी चाहना यही है, यही हमारी सहज स्वीकृति है।

कथन 2b. मैं दूसरे को हमेशा सुखी करता हूँ।
प्रेक्षण 2b. कभी कर पाता हूँ कभी नहीं। अतः यहाँ पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगेगा।
कथन 3b.- दूसरा स्वयं को हमेशा सुखी करता है।
प्रेक्षण 3b. इसमें भी निश्चितता नहीं दिखती अतः यहाँ पर भी प्रश्नवाचक चिन्ह ही लगेगा।
कथन 4b. दूसरा मुझे हमेशा सुखी करता है।
प्रेक्षण 4b. अब, यहाँ पर तो बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह है, दोहरा प्रश्नवाचक चिन्ह है!
अधिकांश कार्यशालायें जो हमने आयोजित की हैं उनमें जहाँ तक चाहना अर्थात् सहज स्वीकृति के बारे में दिये गये कथनों का प्रश्न है उनमें से 1a, 2a व 3a पर सही का चिन्ह आता है लेकिन 4a. पर प्रश्नवाचक चिन्ह आता है। और जब हम योग्यता को अर्थात् करना को देखते हैं तो वहाँ सभी कथनों 1b, 2b, 3b और 4b पर प्रश्नवाचक चिन्ह ही आते हैं बल्कि 4b. पर तो बड़ा प्रश्नवाचक चिन्ह आता है। यह किस बात का संकेत है?

चाहना और योग्यता में भेद

(Distinguishing between Intention and Competence)

(संबंधों में होने वाली सामान्य गलतियाँ चाहना और योग्यता के बीच होने वाले भ्रम के कारण हैं)
अब यदि आप आने वाले इन उत्तरों के समूह का विश्लेषण करें तो कई चीजें स्पष्ट हो पायेंगी। अब पूरी स्थिति को एक साथ देखते हैं अर्थात् अपनी चाहना (सहज स्वीकृति) और अपनी योग्यता (करना) के बारे में पूछे गये कथनों के आने वाले उत्तरों को देखते हैं। आप पायेंगे कि जब आप स्वयं का मूल्यांकन करते हैं तो आप अपनी चाहना (सहज स्वीकृति) को देखते हैं और सोचते हैं कि आप अच्छे व्यक्ति हैं क्योंकि आपकी चाहना सुखी होकर सुखी करने की है।

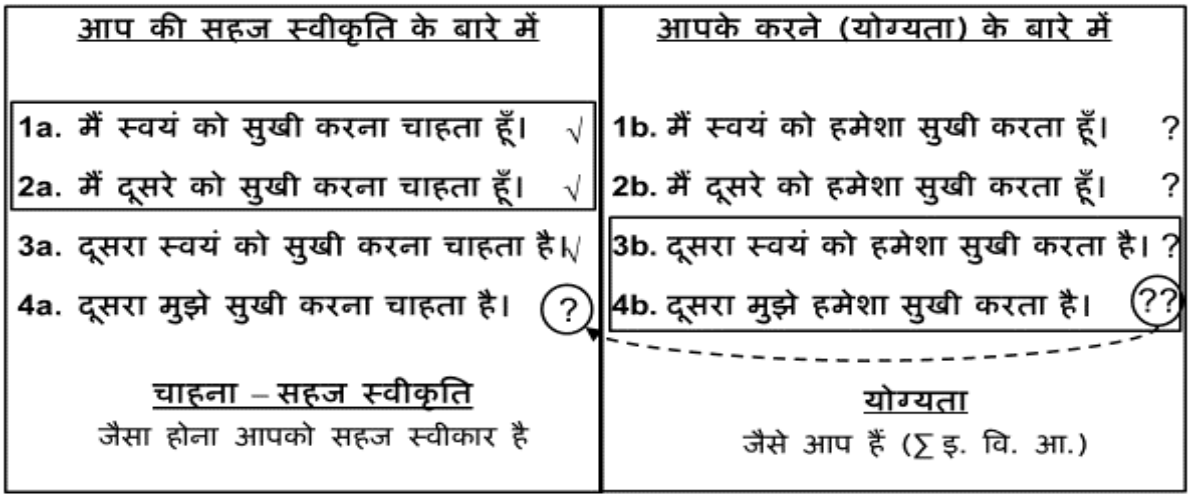

चित्र. 8-2. चाहना पर शंका

चित्र. 8-2. का संदर्भ लीजिये क्या आप देख सकते हैं कि आप स्वयं का मूल्यांकन अपनी चाहना के आधार पर करते हैं? दूसरी तरफ जब आप दूसरों का मूल्यांकन करते हैं, तो उनकी योग्यता को देखते हैं, और आप पाते है कि वह आपको हमेशा सुखी नहीं करता है; अधिकांश समय या कई बार वह आपको दुखी कर ही देता है, अतः आप यह सोचते हैं कि

दूसरा आपको दुखी करना ही चाहता है। जिससे आपको दूसरे की चाहना पर संदेह होने लगता है; वास्तव में देखते तो आप उसकी योग्यता हैं और निष्कर्ष उसकी चाहना के बारे में बनाने लगते हैं, अर्थात् इस संशय को आप उसकी योग्यता तक सीमित नहीं रख पाते बल्कि उसी को आधार बनाकर उसकी चाहना के बारे में निष्कर्ष निकालना प्रारंभ कर देते हैं। जबकि वास्तव में कमी उसकी योग्यता की होती है लेकिन संशय आप उसकी चाहना पर करने लगते हैं।

एक उदाहरण से इसे समझते हैं, जैसे यदि आपसे कभी काँच का गिलास टूट जाता है तो आप क्या कहते है? यही कहते हैं न कि "मेरे से गिलास टूट गया" लेकिन वही गिलास जब किसी दूसरे से टूटता है तब आप क्या कहते हैं? कहते हैं कि "उसने गिलास तोड़ दिया"। एक ही तरह की घटना के लिये दो अलग-अलग तरह की भाषा क्यों है और दोनों के पीछे निष्कर्ष क्या है आइये इसे समझते हैं। जब आप यह कहते हैं कि "मेरे से गिलास टूट गया" तो इसका आशय यह होता है कि आपकी चाहना गिलास तोड़ने का नहीं थी बल्कि गलती से टूट गया और जब कहते हैं कि "उसने गिलास तोड़ दिया" तब इसका आशय यह होता है कि उसकी चाहना ही गिलास तोड़ने की थी उसने जान बूझकर गलती की।

वास्तव में होता यह है कि जब आप से गिलास टूटता है, तब आप अपनी चाहना को देख पाते हैं इसलिये आपको स्पष्ट रहता है कि आपकी चाहना गिलास तोड़ने की नहीं थी बल्कि परिस्थितिवश अर्थात् योग्यता के अभाव में आपका ध्यान कहीं और होने के कारण आप से गिलास टूट गया इसलिये आपको अपनी चाहना पर शंका नहीं होती और आप कहते हैं कि "मेरे से गिलास टूट गया" लेकिन जब वही गिलास किसी और से टूटता है तो, आप दूसरे के करने को अर्थात् उसकी योग्यता को देखते हैं और उसी आधार पर निष्कर्ष उसकी चाहना के बारे में बना लेते हैं, इसलिये आपको उसकी चाहना में ही कमी दिखाई देने लगती है यही शंका आपके भाषा में व्यक्त होती है कि उसने गिलास तोड़ दिया अर्थात् उसकी चाहना ही गिलास तोड़ने की थी।

घटना तो एक ही तरह की हो रही है लेकिन उस घटना को आप अलग-अलग तरह से देख रहें हैं इसलिये निष्कर्ष भी अलग-अलग बना रहे हैं अर्थात् अपने लिये कुछ और निष्कर्ष एवं दूसरे के लिये कुछ और निष्कर्ष।

क्या आप यह देख सकते हैं कि जहाँ तक आप के करने का प्रश्न है अर्थात् आपकी योग्यता का प्रश्न है, चाहे आप कोई गलती सौ बार करें आप अपनी चाहना पर संशय नहीं करते हैं। आपको लगता रहता है कि हर बार गलती किसी न किसी स्थिति-परिस्थितिवश ही हुई। आपको अपने में यह स्पष्टता रहती है कि आपकी चाहना तो सही ही है। अतः आप इस बात पर ही बल देते रहते हैं कि आप एक अच्छे इन्सान हैं, जिसके कारण अधिकांशतः हम अपनी योग्यता में सुधार के लिये कोई प्रयास ही नहीं करते।

दूसरी तरफ, अन्य व्यक्तियों के लिये आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वह जानबूझकर गलतियाँ करता है और आप में उनकी चाहना पर हमेशा संशय बना रहता है। आप उनकी योग्यता की कमी को उनकी चाहना की कमी मान लेते हैं। जब आप उनकी चाहना पर शंका करते हैं तो आपमें अविश्वास का भाव आता है, यहाँ तक कि कई बार ये विरोध के भाव के रूप में बदल भी जाता है। जब भी आपमें विरोध का भाव होता है तो आप झल्लाने, क्रोधित होने इत्यादि के रूप में बाहर अभिव्यक्त होते रहते हैं। आप यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि दूसरे की चाहना ही गलत है। ऐसा करके आप इस मान्यता को और मजबूत करते रहते हैं कि दूसरा व्यक्ति ही खराब है वह कभी सुधर ही नहीं सकता और इस प्रकार आप उसकी योग्यता को बढ़ाने में सहयोग करने का कोई भी प्रयास नहीं करते।

जाँच करके देखिये कि क्या आपके जीने में भी ऐसा ही घटित तो नहीं हो रहा है? यह भी जाँच करके देखिये कि आपके संबंधों में समस्या का प्रमुख स्रोत कहीं दूसरे की चाहना पर शंका करना ही तो नहीं है? यह भी देखिये कि क्या इस शंका के कारण आप में विरोध, झल्लाहट या क्रोध इत्यादि के भाव तो नहीं आते या कभी-कभी आप हफ्तों तक दूसरे से बोलना तो बंद नहीं कर देते अथवा आप संबंध विच्छेद भी तो नहीं कर लेते। आप पलट कर अपने जीने को देखिये कि क्या चाहना और योग्यता के बीच भ्रम के कारण ही आपने भी अपने मित्रों या रिश्तेदारों के साथ कोई संबंध तो नहीं खो दिया है।

अब यदि आप यह देख पाते हैं कि दूसरे व्यक्ति की चाहना भी ठीक वैसी ही हैं जैसी आपकी, और जो भी कमी है, वह उसकी योग्यता में है तो आपका जीना पूर्णतः भिन्न प्रकार से होता है।

उदाहरण के लिये, एक बार एक शैक्षणिक संस्थान में छात्रों के लिये इस विषय की कार्यशाला का संचालन किया जा रहा था जिसमें बहुत से छात्र भाग ले रहे थे। उन्हीं में सुरेश नाम का एक छात्र भी था। कार्यशाला में विश्वास के भाव पर चर्चा के उपरांत एक दिन सुरेश ने अपना एक अनुभव साझा किया।

उसने कहा कि पिछली शाम जब मैं छात्रावास के भोजनालय में जा रहा था तब मैंने देखा कि मेरा एक मित्र भी भोजनालय की तरफ दौड़ जा रहा है। मैंने उसे नमस्कार किया लेकिन उसने उसका कोई उत्तर नहीं दिया यहाँ तक कि मेरी तरफ देखा भी नहीं। यह मुझे अच्छा नहीं लगा और मैं इस बात से काफी आहत हुआ कि उसने मुझे नजर अंदाज कर दिया। तभी मेरे में दूसरा विचार आया कि हो सकता है कि वह किसी समस्या में हो

संभवतः वह अपनी योग्यता की कमी के कारण किसी समस्या में उलझा हो और इसलिये मेरी ओर ध्यान नहीं दे पाया हो परन्तु उसकी चाहना ऐसा करने की नहीं रही होगी। मेरे साथ उसने जो किया अर्थात् उसने मेरे अभिवादन का उत्तर नहीं दिया, इस आधार पर मेरा उसकी चाहना पर संदेह करना ठीक नहीं होगा बल्कि मुझे उससे बात करके स्थिति को स्पष्ट कर लेना चाहिये।

अगले दिन जब हम पुनः मिले तो मैंने उससे पूछा कि कल क्या हुआ था? मैंने उसे यह याद दिलाया कि कल शाम जब वह भोजनालय की तरफ जा रहा था तो मैंने उसे नमस्कार किया था जिसका उसने कोई उत्तर नहीं दिया था यहाँ तक की मेरी ओर देखा भी नहीं। तब उसने बताया कि कल शाम जब वह भोजन के बाद लौटकर अपने कमरे में आया था तो उसने पाया कि वह अपना बटुआ भोजनालय में ही भूल आया था इसलिये वह जल्दी में अपना बटुआ लेने भोजनालय की तरफ वापस भागा जा रहा था। वह इतनी जल्दी में था कि मुझ पर ध्यान ही नहीं दे पाया और यह भी नहीं देख पाया कि मैंने उसे नमस्कार किया है। सुरेश ने आगे बताया कि यदि मैं इस कार्यशाला में नहीं आया होता, मुझे चाहना और योग्यता के बीच अंतर न स्पष्ट हुआ होता तो मैं अपने मित्र की चाहना पर शंका कर लेता और मुझे बहुत बुरा लगता, मैं यह सोचता रहता कि उसने मुझे नजरंदाज किया और मेरी अनदेखी की जिसके कारण शायद मैं उससे बात चीत भी बंद कर देता। उस स्थित में मैं उससे चर्चा करके यह भी स्पष्ट नहीं कर पाता कि वास्तव में क्या हुआ था। और इस प्रकार मैं अपने एक अच्छे मित्र को गंवा चुका होता। इस प्रकार की सामान्य घटनायें भी संबंधों के टूटने का या बहुत सी समस्याओं को उत्पन्न करने का या संबंधों में तनाव का कारण हो सकती हैं।

यह एक सामान्य गलती है जो हम वर्तमान में संबंधों में करते ही रहते हैं। कमी दूसरे की योग्यता में होती है परन्तु हम निष्कर्ष यह निकालते हैं कि दूसरे की चाहना ही ठीक नहीं है; हम उसकी चाहना पर शंका करते हैं, जिससे हममें विरोध का भाव आता है। विरोध का यही भाव बाहर कुंठा, झल्लाहट या क्रोध इत्यादि के रूप में व्यक्त होता है। आप जिन व्यक्तियों के साथ में जुड़े हुये हैं, उनके साथ अपने दैनिक व्यवहार में इसे देख सकते हैं। क्या ऐसा ही तो नहीं घटित हो रहा है? एक छोटी सी घटना भी संबंधों में बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न कर देती है। हम संबंधों में एक दूसरे के सुख में सहयोगी होने की चाहना होने के बावजूद भी, एक दूसरे को अपने दुःख के कारण के रूप में देखने लगते है जो संबंधों में एक दूसरे के प्रति व्यवहार में होने वाली घटनाओं के गलत मुल्यांकन से शुरू होकर; विरोध, क्रोध और कटु वचनों के रूप में बाहर व्यक्त होता है जो एक दूसरे को काफी आहत कर देता है। कई बार यह हमारे स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के रूप में अलग-अलग प्रकार से दिखता है जैसे बार-बार किसी की चाहना पर शंका करने से हममें जो विरोध या क्रोध का भाव आता है, उसका प्रभाव हमारे हृदय गति और फेफड़ों पर पड़ता है जिसको हम बढ़े हुये रक्तचाप और बढ़ी हुई साँसों की गति के रूप में देख सकते हैं।

हमारे एक साथी कार्यशाला में अक्सर एक घटना का उदाहरण देते हैं कि एक बार उनके अंकल जी को हार्ट अटैक आया। जब अंकल जी अस्पताल से घर वापस आ गये तो वे उनको देखने गये और उनसे पूछा कि अंकल जी आप तो बहुत स्वस्थ थे परन्तु ये हार्ट अटैक कैसे हुआ? क्योंकि अंकल जी हमारे बहुत नजदीकी थे और हम एक दूसरे से काफी खुले हुये थे अतः उन्होंने कहा कि आप अपनी आंटी जी को तो जानते ही हो, कई बार वे ऐसी बात कह देती हैं जो बर्दाश्त के बाहर होती है। उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ किसी घटना पर उन्होंने मेरे और मेरे एक घनिष्ठ मित्र को लेकर काफी कटु शब्द कहे जो मुझे बर्दाश्त नहीं हो पाये और मैं उनको लेकर बहुत देर तक अपने में ही सोच-विचार कर परेशान होता रहा और यह हार्ट अटैक की घटना हो गयी।

इस पर उन्होंने अंकल जी से पूछा कि आपको क्या लगता है आप किस बात को लेकर आहत हुये आंटी जी ने जो शब्द आपसे कहे उनसे या उनके द्वारा कहे गये शब्दों के आधार पर आपने जो उनकी चाहना पर संदेह किया कि वह आपको आहत ही करना चाहती हैं उससे। अंकल जी ने कहा कि "तुम्हारी आंटी जी मुझे दुखी क्यों करना चाहेगी भला! कहीं न कहीं मैं उनके द्वारा बोले गये शब्दों के कारण ही आहत हुआ हूँ"। तब उन्होंने कहा "ठीक है मैं आपसे एक और प्रश्न पूछ लेता हूँ; यदि वही शब्द किसी और व्यक्ति ने कहे होते जिसके बारे में आपका यह निष्कर्ष होता कि वह मानसिक रूप से बीमार है, तब भी क्या आप ऐसे ही आहत होते?" अंकल जी कहा 'नहीं' तब नहीं होता फिर उन्होंने कहा कि "ठीक है अब मैं पहला प्रश्न ही आपसे पुनः पूछता हूँ कि क्या आप आंटी जी के द्वारा बोले गये शब्दों से आहत हुये या आंटी जी ने जो कुछ भी आपसे कहा उसके आधार पर आपने उनकी चाहना पर संशय किया, जिससे आपमें उनके प्रति विरोध का भाव आ गया और यही आपके आहत होने का कारण बना"? अंकल जी कुछ मिनट तक चुप रहे और फिर वे बोले "हाँ! जो तुम कहना चाह रहे हो वही सही लगता है"।

सामान्यतः देखें तो ऐसा ही होता दिखाई देता है। अंकल जी और आंटी जी उत्तर भारत के एक शहर के बहुत ही सम्मानित परिवार से हैं। उनके विवाह को भी लगभग 50 वर्ष हो चुके हैं परन्तु इसके उपरांत भी उन्हें एक दूसरे

की चाहना के प्रति संदेह बना ही हुआ है और इस तरह की छोटी-छोटी घटनाओं से उनके संबंध की नींव हिल जाती है और वे एक दूसरे पर अविश्वास कर बैठते हैं। चाहना पर संदेह के कारण उनमें विरोध का भाव आता है, जिससे वे आहत होते हैं और कभी-कभी तो इस हद तक आहत हो जाते हैं कि हार्ट अटैक की नौबत भी आ जाती है।

यदि आप पति-पत्नी के बीच की बातचीत को देखें तो सामान्यतः कुछ ऐसा ही घटित होता हुआ दिखता है; अधिकांश समय वे आपस में ऐसे बात करते हैं जैसे लड़ रहे हो या किसी युद्ध के मैदान में हों। ऐसी स्थिति का मुख्य कारण यह है कि एक दूसरे की चाहना पर शंका बनी रहती है, अतः विरोध का भाव होता है, जिसकी वजह से वे बहुत अधिक झल्लाहट और क्रोध में रहते हैं। आप अपने मित्रों, अपने संबंधियों तथा सहकर्मियों के साथ अपनी दैनिक बातचीत का परीक्षण करना प्रारंभ कीजिये कि क्या आपके साथ भी ऐसा ही तो नहीं हो रहा है?

अब जब हमें चाहना और योग्यता का अंतर स्पष्टता हो चुका है, आइये हम इस निम्नलिखित प्रश्न को देखते हैं:

यदि आपको दूसरे की चाहना (सहज स्वीकृति) पर निरंतरता में, बिना किसी शर्त विश्वास है परन्तु उसकी योग्यता में कमी है तो आप क्या करेंगे?

a. उसकी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे
b. झल्लायेंगे
c. क्रोधित होंगे
d. आपमें विरोध का भाव होगा

निश्चित रूप से उत्तर (a) ही होगा, यदि चाहना पर विश्वास है तो ऐसा ही प्रयास करेंगे क्योंकि जब हमको दूसरे की चाहना पर विश्वास होता है तो हम यह देख पाते हैं कि दूसरे व्यक्ति की योग्यता में कमी है, अतः हम उसकी योग्यता को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। दूसरी तरफ यदि हमें उस व्यक्ति की चाहना पर ही शंका होती है, तो हम विकल्प b, c, और d का चुनाव करते हैं। अर्थात् हम झल्लायेंगे, क्रोधित होंगे या हममें विरोध का भाव होगा। दूसरे की चाहना पर शंका करने से इसी प्रकार की प्रतिक्रियायें होती हैं।

a. उसकी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे } चाहना पर विश्वास → अनुक्रिया (response)
b. झल्लायेंगे
c. क्रोधित हो जायेंगे } चाहना पर शंका → प्रतिक्रिया (reaction)
d. आपमें विरोध का भाव होगा

दूसरे की तरफ से उसी तरह की प्रतिक्रिया वाला व्यवहार होने के बावजूद भी आप अपने व्यवहार में प्रतिक्रिया करेंगे या अनुक्रिया करेंगे यह आपके मानने पर निर्भर करता है। यदि आपको दूसरे की चाहना पर विश्वास है तो आपके व्यवहार में अनुक्रिया होगी अर्थात् आपका व्यवहार दूसरे की योग्यता को बेहतर करने के अर्थ में होगा। दूसरी तरफ यदि आपको दूसरे की चाहना पर शंका है तो आप झल्लायेंगे, क्रोधित होंगे या आप में विरोध का भाव होगा।

अब इन संकेतों के साथ आप यह जाँच कर देखिये कि आपको कितने लोगों की चाहना (सहज स्वीकृति) पर निरंतरता में बिना किसी शर्त के विश्वास का भाव है। इसे जाँचने के लिये उन संबंधियों के नाम चिह्नित करते हुए उनकी एक सूची बनायें जिन पर आप कभी भी झल्लाते नहीं हैं, कभी क्रोधित नहीं होते और जिनके लिये आपमें एक क्षण के लिये भी विरोध का भाव नहीं आता, बावजूद इसके कि वे बार-बार वही गलती दोहराते रहते हैं।

सामान्यतः हम अपने लिये इसी तरह का उत्तर पाते हैं कि ऐसा कोई भी संबंध नहीं है जिसमें दूसरे की चाहना के प्रति निरंतर विश्वास का भाव हो यहाँ तक कि पति-पत्नी, पिता-पुत्र या मित्र-मित्र संबंध इत्यादि में भी, जो कि एक बहुत ही गंभीर विषय है। यह सीधा-सीधा चाहना पर विश्वास की कमी का संकेत है। साथ ही हम यह भी देख पाते हैं कि इन मुद्दों के समाधान के लिये कोई उचित प्रयास भी नहीं हो रहा है। शायद ही कोई संबंध को समझने और संबंध में जीने की अपनी योग्यता विकसित करने के अर्थ में प्रयास कर रहा हो। हम देखते हैं कि लोग ऐसे काम भी करते रहते हैं जिन्हें करने का उनका आशय नहीं रहता है जैसे लोग क्रोधित होना नहीं चाहते (सहज स्वीकृति/ चाहना) लेकिन क्रोधित हो ही जाते हैं (योग्यता की कमी)।

आप वास्तव में कितने लोगों की चाहना पर बिना किसी शर्त के विश्वास कर पाते हैं यह बहुत ही मौलिक प्रश्न है। यह इस बात का संकेत भी है कि आपने संबंधों को कितना समझ लिया है और आपमें संबंध में निर्वाह के लिये कितनी स्वीकृति है। इससे आपमें यह भी स्पष्टता आयेगी कि वास्तव में आप कितने लोगों के साथ निरंतरता में संबंध को स्वीकार पाते हैं (जिस क्षण आपमें दूसरे की चाहना पर थोड़ी भी शंका होता है तो आपमें दूसरे के लिये संबंध के भाव की जगह विरोध का भाव होता है, अतः उन लोगों का नाम इस सूची में नहीं होगा)। अब, यहाँ से आप संबंध के बारे में अपनी समझ विकसित करने का कार्य शुरू कर सकते हैं और अपनी ओर से परस्पर-पूरकता के अर्थ में जीना भी शुरू कर सकते हैं।

निःसंदेह, यहाँ पर आप में अनेक प्रश्न और संशय होंगे क्योंकि यह निष्कर्ष उस मान्यता के ठीक विपरीत है जो कि आजकल समाज में प्रचलन में है। सामान्यतः हम चाहना और योग्यता के बीच में अंतर नहीं कर पाते हैं इसलिये चाहना (सहज स्वीकृति) पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते हैं। परिणामस्वरूप विश्वास शब्द, केवल योग्यता के स्तर (योग्यता की कमी) के सूचक के रूप में ही लिया जाता है। विश्वास के बारे में जो हमारा मानना है उसमें संबंध की स्वीकृति का भाव लगभग पूर्ण रूप में अनुपस्थित ही नहीं रहता बल्कि उसकी जगह विरोध का भाव होता है जिसके साथ हम अनेक मान्यताओं को बलवती करते रहते हैं, जैसे कि:

- अपरिचित व्यक्तियों पर विश्वास नहीं कर सकते- अपरिचित व्यक्तियों सहित प्रत्येक मानव में सहज स्वीकृति एक ही जैसी होती है जबकि योग्यता कम या ज्यादा हो सकती है। अपरिचित व्यक्ति की योग्यता का आंकलन करने के लिये हमें समय की आवश्यकता हो सकती है परन्तु उसकी सहज स्वीकृति के आंकलन के लिये नहीं।
- विश्वास बहुत लंबे समय में विकसित होता है- योग्यता के लिये तो यह सही है लेकिन क्या यह सहज स्वीकृति (चाहना) पर विश्वास के लिये भी सही है?
- किसी पर भी आँख बंद करके विश्वास न करें – हमें चाहना (सहज स्वीकृति) पर विश्वास करने की आवश्यकता तो है लेकिन किसी के साथ भी संबंध के निर्वाह का कार्यक्रम बनाने से पहले उसकी योग्यता का मूल्यांकन करना आवश्यक होगा; आगे हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

कभी भी घटनाओं पर आधारित भाव निश्चित नहीं होते, वे सशर्त होते हैं और उनमें निरंतरता नहीं होती। घटनाओं को अपने संबंधों का आधार बनाना एक बड़ी गलती है जो आज कल हम करते रहते हैं। यदि हम अपने भावों और संबंधों को घटनाओं के आधार पर तय करने का प्रयास करते हैं तो इनमें सफलता नहीं मिलती क्योंकि ये घटनायें हमारी परस्पर योग्यता पर आधारित होती हैं। हमारी योग्यता के साथ-साथ दूसरे की योग्यता में भी कमी हो सकती है इसलिये इस पर आधारित संबंधों के निर्वाह में भी निरंतरता नहीं हो पाती है।

दूसरी तरफ जब आप अपनी सहज स्वीकृति को देख पाते हैं, तो आप दूसरे की सहज स्वीकृति के बारे में भी निष्कर्ष निकाल पाते हैं। आप सुखी होना चाहते हैं और दूसरे को भी सुखी करना चाहते हैं, परंतु आप में योग्यता की कमी हो सकती है। दूसरे की सहज स्वीकृति भी यही है, और उसमें भी आप ही की तरह योग्यता की कमी हो सकती है। जब हममें यह स्पष्टता होती है तो हमारे में दूसरे की चाहना पर निरंतरता में विश्वास हो होता है, जिससे संबंध में भी निरंतरता हो पाती है। इसी का अब हम और विस्तार से अध्ययन करना चाहते हैं।

अध्याय-6 में हमने यह चर्चा की थी कि हमारी चाहना अर्थात् हमारी सहज स्वीकृति या जैसा होना हमें सहज स्वीकार्य है वह एक ही जैसी है। दूसरी तरफ हमारी योग्यता है अर्थात् जैसा हम हैं; यह हमारी इच्छा, विचार और आशा का संग्रह है अर्थात् हमारी सम्पूर्ण कल्पनाशीलता। चूंकि हमारी इच्छायें, मान्यताओं, संवेदनाओं के साथ-साथ सहज स्वीकृति से भी आती हैं, अतः यह आवश्यक नहीं है कि हमारी इच्छा और चाहना एक ही जैसा हो। इच्छाओं का कुछ भाग जो हमारी सहज स्वीकृति से आता है वह हमारी चाहना हो सकती है, शेष इच्छायें हमारी चाहना हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकती। (अध्याय-6 के चित्र. 6-6. का संदर्भ लीजिये) उदाहरण के लिये:

- हमारी सहज स्वीकृति (चाहना) सुखी होने और दूसरों को सुखी करने की है। परंतु हमारी इच्छा प्रतिशोध लेने की भी हो सकती है!
- हम दूसरों के व्यवहार से आहत होते रहते हैं और दूसरों को भी अपने व्यवहार से आहत करते रहते हैं जबकि हमारी सहज स्वीकृति ऐसी नहीं है फिर भी यह हमारी इच्छाओं के एक भाग के रूप में बना रहता है!

अतः योग्यता में हमारी सभी इच्छायें, विचार एवं आशायें सम्मिलित हैं जो कि तीनों स्रोतों से अर्थात् मान्यता, संवेदना और सहज स्वीकृति से आती हैं। दूसरी तरफ हमारी चाहना (सहज स्वीकृति) का होना है जो कि सदैव एक जैसी बनी रहती है- सुखी होना और दूसरों को सुखी करने की।

चाहना पर विश्वास

(Trust on Intention)

दूसरे की चाहना मेरे सुख, समृद्धि के अर्थ में है, यह स्पष्टता ही चाहना पर विश्वास है।

इस अध्ययन की पृष्ठभूमि के साथ आइये इन चारों कथनों (संदर्भ चित्र. 8-3.) को पुनः देखते हैं और ज्ञात करते हैं कि कथन 4a. में प्रश्नवाचक चिन्ह लगाना है या सही का चिन्ह लगाना उचित होगा।

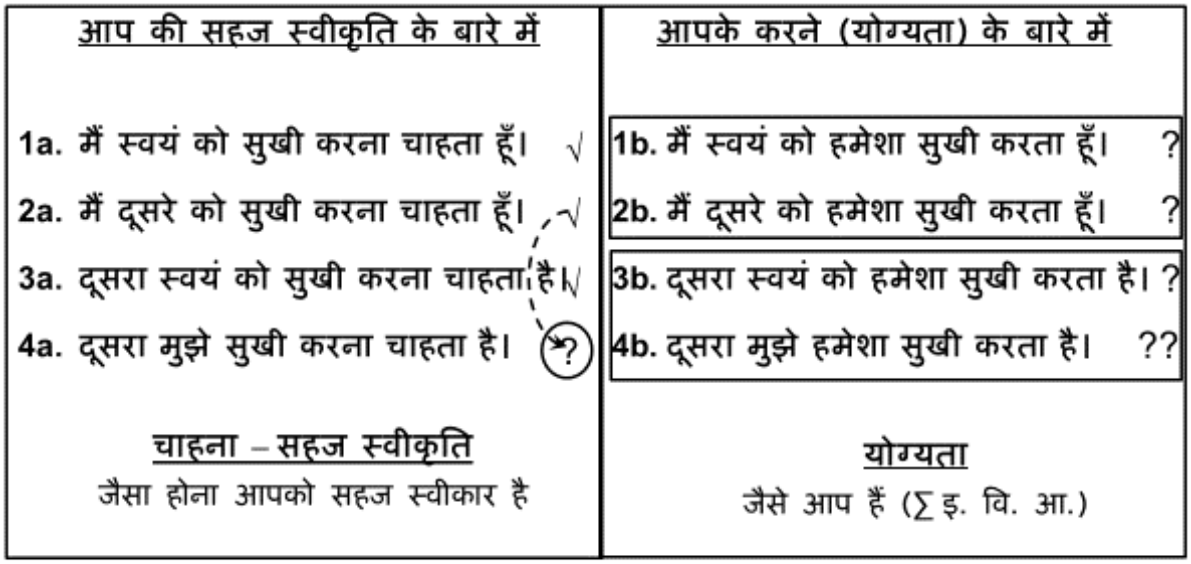

चित्र. 8-3. चाहना पर विश्वास

कथन 4a. दूसरा मुझे सुखी करना चाहता है।

आप क्या सोचते हैं? दूसरों की सहज स्वीकृति क्या है- स्वयं सुखी होने और दूसरे को सुखी करने के अर्थ में है या स्वयं सुखी होने और दूसरे को दुखी करने के अर्थ में है?

प्रेक्षण 4a. जहाँ तक चाहना या सहज स्वीकृति का प्रश्न है, दूसरा स्वयं भी सुखी होना चाहता है एवं औरों को भी सुखी ही करना चाहता है। अर्थात् हम सभी की सहज स्वीकृति एक ही जैसी है।

यह एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष है। जहाँ तक दूसरे की सहज स्वीकृति की बात है, प्रत्येक व्यक्ति सुखी होना चाहता है और दूसरों को भी सुखी ही करना चाहता है। इसी सहज स्वीकृति को हम चाहना के रूप में संदर्भित कर रहे हैं। जब दूसरे की योग्यता की बात आती है तो उसमें स्वयं को सुखी करने एवं दूसरों को सुखी करने की योग्यता हो भी सकती है अथवा नहीं भी। अतः दूसरे में मुझे सुखी करने की चाहना तो दिखाई देती है लेकिन उसकी योग्यता में कमी हो सकती है- हमें स्वयं में इस स्पष्टता की आवश्यकता है।

दूसरे की सहज स्वीकृति के बारे में स्पष्टता के लिये, वास्तव में आपको स्वयं में ही जाँच-परख करने की आवश्यकता है कि आपकी सहज स्वीकृति क्या है। कथन 1a. और 2a. में यही बात लिखी गयी है जिसका आप स्वयं में जाँच कर सकते हैं कि आप स्वयं सुखी होना और दूसरों को भी सुखी करना चाहते हैं या नहीं। आप यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि आपकी सहज स्वीकृति क्या है। जब आप यह देख पाते हैं कि आप स्वयं भी सुखी होना चाहते हैं और दूसरों को भी सुखी करना चाहते हैं- यही आपकी सहज स्वीकृति है; तो दोनों कथन 1a. और 2a. आपके लिये सही होते हैं।

इस स्पष्टता के साथ कि दूसरा मेरे ही जैसा है, हम यह निष्कर्ष भी निकाल पाते हैं कि वह भी मेरी ही तरह सुखी होना चाहता है और दूसरों को भी सुखी करना चाहता है। हम सीधे तौर पर इसे दूसरों से सत्यापित भी करवा सकते हैं और स्वयं में निरीक्षण करके अपनी सहज स्वीकृति को देखने के आधार पर दूसरों की सहज स्वीकृति के बारे में निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं। बल्कि इस प्रकार प्रत्येक मानव की सहज स्वीकृति के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जिस तरह मेरी सहज स्वीकृति सुखी होने और सुखी करने की है वैसे ही दूसरे की सहज स्वीकृति भी यही है अर्थात् सभी की सहज स्वीकृति यही है ऐसा निष्कर्ष निकाल पाते हैं। इस संदर्भ में यदि इन चारों कथनों को एक बार अपनी तरफ से और दूसरी बार दूसरे के तरफ से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि कथन 3a. मूलतः कथन 1a. का ही प्रतिबिंब है और कथन 4a. मूलतः कथन 2a. का प्रतिबिंब है। इसलिये हम यह देख सकते हैं कि यदि कथन 2a. सही है तो कथन 4a. भी सही होगा। अतः दूसरों की सहज स्वीकृति भी मेरी सहज स्वीकृति के जैसी ही है -सुखी होना और दूसरों को भी सुखी करना।

यह एक प्रमुख निष्कर्ष है जो कि महत्त्वपूर्ण है। यदि मैं अपना आंकलन अपनी सहज स्वीकृति (चाहना) के आधार पर करता हूँ और दूसरे का आंकलन भी उसकी सहज स्वीकृति (चाहना) के आधार पर करता हूँ, तब मुझे प्रत्येक मानव की चाहना के प्रति विश्वास हो पाता है क्योंकि वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति सुखी होना ही चाहता है और दूसरे को भी सुखी करना ही चाहता है। चाहना पर विश्वास, मानव की समझ और मानव में सहज स्वीकृति की स्पष्टता पर निर्भर है; प्रत्येक मानव में यह चाहना निश्चित है, निरंतरता में बिना किसी शर्त के।

प्रत्येक व्यक्ति की चाहना के प्रति आप में विश्वास का भाव है; इसे देख पाने की योग्यता आप में है या नहीं इसकी जाँच करिये।

जब हम अपनी और दूसरों की चाहना पर विश्वास के साथ अपनी और दूसरों की योग्यता का आंकलन कर पाते हैं, तब उसी घटना के मायने भी हमारे लिये बदल जाते हैं। अब हम जैसा अपने लिये देख पाते हैं कि गिलास गलती से टूट गया वैसे ही दूसरों के लिये भी देख पाते हैं कि उससे भी गिलास गलती से ही टूटा होगा। हम यह देख पाते हैं कि ऐसा न तो हम चाहते थे और न ही दूसरा चाहता था, बल्कि योग्यता की कमी के कारण या किसी परिस्थिति वश गिलास टूट गया। अब मैं यह भी देख पाता हूँ कि अगर मैं एक बार भी कोई गलती करता हूँ तो मुझे अपनी चाहना के प्रति स्पष्टता रहती है एवं इस बारे में भी स्पष्ट रहती है कि गलती मेरी योग्यता की कमी के कारण हुई चाहना तो ठीक ही है, इसलिये मैं अपनी योग्यता को बढ़ाने का प्रयास करता हूँ अतः मैं समझने और सीखने के लिये तैयार रहता हूँ। इसके साथ अब मैं यह भी देख पाता हूँ कि यदि वही घटना दूसरे के द्वारा घटित होती, यहाँ तक कि दूसरा वही गलती सौ बार भी दोहराता तो भी मेरे में उसकी चाहना के प्रति वैसे ही स्पष्टता बनी रहती साथ ही इस बारे में भी स्पष्टता रहती कि गलती उसकी योग्यता की कमी के कारण हुई है, चाहना तो उसकी भी ठीक ही है; अतः मैं संबंध के भाव के साथ उसकी योग्यता को बढ़ाने में सहयोग करने के लिये तत्पर रह पाता हूँ।

यह महत्वपूर्ण है कि मैं संबंध के भाव के साथ उसकी योग्यता को बढ़ाने में सहयोग करने के लिये तत्पर रहता हूँ। जब मैं चाहना पर विश्वास के भाव के साथ यही प्रयास करता हूँ तो यह देख पता हूँ कि उसे समझने में कठिनाई हो सकती है और मुझे समझाने में कठिनाई हो सकती है। जब मैं समझाने का प्रयास करता हूँ और वह नहीं समझ पाता है तो मैं उसके समझने की चाहना पर शंका नहीं करता। मैं यह देख पाता हूँ कि योग्यता की कमी के कारण उसे समझने में कठिनाई हो रही है और यह भी हो सकता है कि मैं अपनी योग्यता की कमी के कारण उसे ठीक से समझा नहीं पा रहा हूँ। यदि मैं यह सब देख पाता हूँ तो अपनी योग्यता के साथ-साथ दूसरे की योग्यता को भी बढ़ाने का प्रयास करता हूँ। इसलिये यदि मैं समझाने के प्रयास में सफल नहीं भी हो पाता हूँ तब भी मेरे में विरोध, झल्लाहट या क्रोध का भाव नहीं आता।

इस पृष्ठभूमि के साथ हम यह देख पाते हैं कि विश्वास, संबंधों का आधार मूल्य है। जब मेरे में दूसरे की चाहना के प्रति विश्वास होता है, तभी मैं दूसरे के साथ संबंध को महसूस कर पाता हूँ। जहाँ तक संबंधों में स्वीकृति की बात है, चाहना पर विश्वास के आधार पर यह मेरे में निरंतर बनी ही रहती है, बिना किसी शर्त के, निश्चितता के साथ निरंतरता में। यदि मेरे में दूसरों की चाहना के प्रति विश्वास है तो मैं दूसरों के साथ संबंध को निरंतरता और निश्चितता में देख पाता हूँ इसलिये दूसरों को संबंधी के रूप में निरंतरता और निश्चितता के साथ स्वीकार भी कर पाता हूँ।

जब बात दूसरों के साथ कार्यक्रम बनाने की आती है, तो मैं अपनी और दूसरों की चाहना के प्रति विश्वास के साथ अपनी और दूसरों की योग्यता का आंकलन करता हूँ और इस योग्यता के आंकलन को ही आधार बनाकर दूसरे के साथ कोई कार्यक्रम बनाता हूँ।

> *उदाहरण के लिये, जब हम मानवीय मूल्यों की कार्यशाला का संचालन कर रहे होते हैं तो हममें प्रत्येक प्रतिभागी की चाहना के प्रति विश्वास बना रहता है। हमें यह स्पष्टता भी रहती है कि इस कार्यशाला में बैठा हर व्यक्ति सही समझना चाहता है और सही जीना भी चाहता है एवं प्रत्येक व्यक्ति में सही-समझने और सही-जीने की क्षमता भी है। अब इसी विश्वास को आधार में रखते हुये हम अपनी और प्रतिभागियों की योग्यता का मूल्यांकन करते हैं। इस मूल्यांकन के आधार पर हम उनके साथ कार्यशाला के संचालन का कार्यक्रम बनाते हैं। जैसे यदि हम यह पाते कि दोनों ही अंग्रेजी भाषा बोल व समझ सकते हैं, तो कार्यशाला का संचालन अंग्रेजी में करते हैं और यदि वे अंग्रेजी की जगह हिंदी जानते हैं तो हम इस कार्यशाला का संचालन हिंदी में करते हैं। अतः यह समझना आवश्यक है कि चाहना के प्रति स्पष्टता के बावजूद भी हमें अपनी और दूसरे की योग्यता का आंकलन करना ही होगा तभी हम कार्यक्रम को सफलता पूर्वक संचालित कर पायेंगे।*
>
> *ऐसे ही हम कार्यशाला में महत्वपूर्ण बिंदुओं को बार-बार दोहराते हैं कई बार तो यह प्रतिभागियों को उबाऊ भी लगने लगता है। किन्तु हम ऐसा प्रतिभागियों की योग्यता के मूल्यांकन के आधार पर ही कर रहे होते हैं। क्योंकि हम यह जानते हैं कि जब आप कक्षा के बैठे चर्चा सुन रहे होते हैं तो कई बार आपका ध्यान कहीं और चला जाता हैं। जैसे कई बार जब आपकी कक्षा में किसी बिंदु पर चर्चा हो रही होती है तो आप किसी और बिंदु पर सोच रहे होते हैं जैसे अपने घर के बारे में, अपने मित्र इत्यादि के बारे में और जब 10-15 मिनट बाद आपका ध्यान कक्षा में वापस आता है तो इस दौरान चर्चा हुये मुद्दों से स्वयं को अनभिज्ञ पाते हैं और आप ढूंढने लगते हैं कि कक्षा में क्या चल रहा था। इसलिये हम महत्वपूर्ण बिंदु को कई बार दोहराते हैं कि कम से कम एक बार तो आप सुन ही लें। ज्ञात करिये कि एक घंटे की क्लास में आपका ध्यान कितनी बार बाहर गया-20,50,100?*

जब हम विश्वास को समझने के बजाय सिर्फ मानते हैं तब हमें चाहना और योग्यता के बारे में अंतर स्पष्ट नहीं रहता है जिसके कारण कार्यक्रम बनाते समय हम योग्यता का आंकलन नहीं कर पाते हैं। यदि हम अपनी और दूसरों की योग्यता

का आंकलन किये बिना ही कार्यक्रम बनाते हैं, तो इस कार्यक्रम के असफल होने की संभावना अधिक हो जाती है। ऐसे में जब कार्यक्रम असफल होता है तो हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि किसी पर भी विश्वास करना ठीक नहीं है।
किन्तु जब हम विश्वास के भाव को समझ लेते हैं तो दूसरे के प्रति हमारे आंकलन में बहुत अंतर आ जाता है- हम दूसरों को वैसा ही स्वीकार पाते हैं, जैसे वे हैं, अर्थात् मेरे ही जैसे हैं। उनकी चाहना भी स्वयं सुखी होने और सुखी करने की ही है। चाहे उनकी योग्यता उनके चाहने के साथ मेल खाती हो या नहीं।
चाहना पर यह विश्वास, हमारे प्रयासों को सही दिशा देता है। जब हम कार्यक्रम बनाते हैं तो हम इसी को आधार के रूप में रखकर एक-दूसरे की योग्यता का आंकलन करते हैं। कार्यक्रम सफल या असफल हो सकता है, लेकिन हम इससे प्रभावित नहीं होते हैं। हम दूसरों को आश्वस्त करने का प्रयास करते हैं और भविष्य में कार्यक्रम बनाने के लिये एक-दूसरे की योग्यता का पुनः आंकलन कर पाते हैं। हम बिना झल्लाये, बिना क्रोधित हुये, दूसरों की योग्यता को बढ़ाने में सहयोग करने के लिये प्रतिबद्ध रहते हैं। साथ-साथ हम स्वयं की योग्यता को बढ़ाने हेतु समझने, सीखने को भी तत्पर रह पाते हैं।

दूसरों की योग्यता बढ़ाने में सहयोग करने से पूर्व दूसरे को संबंध में आश्वस्त करने का प्रयास करना महत्वपूर्ण है। दूसरे में हमारे प्रति स्वीकृति आवश्यक है, क्योंकि इसी आधार पर वह हमको सुनने के लिये तैयार हो पाता है। अतः उसकी योग्यता को बढ़ाने का प्रयत्न करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम उसे आश्वस्त करें।

एक उदाहरण लेते हैं, इस विषय-वस्तु को पढ़ने के बाद एक छात्र इसे अपने पिताजी के साथ साझा करने के लिये बहुत उत्साहित हुआ और इसे साझा करने का प्रयास भी किया। लेकिन उसके पिताजी ने उसकी बात सुनने में कोई भी रुचि नहीं दिखाई। इससे मायूस होकर छात्र ने अपने शिक्षक को इस समस्या के बारे में बताया। तब शिक्षक ने पूछा कि "आप किससे समझना चाहेंगे जो आपकी दृष्टि में आपसे अधिक समझदार हो या कम समझदार हो? और समझदारी की पहचान क्या होगी, जो अधिक समझदार होगा वह अधिक जिम्मेदार भी होगा या नहीं?"।

यह बात छात्र को समझ आई कि उसके माता-पिता ही घर में अधिकतर जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हैं और उसे तो घर में कोई भी सहयोग करने के लिये दूसरों को ही याद दिलाना पड़ता है कि उसको कोई कार्य करना है। अगले कुछ हफ्तों तक उस छात्र ने घर में कुछ जिम्मेदारियों का निर्वाह करने का प्रयास किया जैसे कि कॉलेज जाते समय अपनी किताबों, कपड़ों इत्यादि को उनके निश्चित स्थानों पर रख कर जाना, कहीं घूमने जाते समय बता कर जाना साथ ही यह पूछ कर जाना कि उस तरफ का कोई काम तो नहीं है इत्यादि। उसमें यह परिवर्तन देखकर उसके प्रति पिताजी में कुछ आश्वस्ति बढ़ी। छात्र को इस बात का एहसास तब हुआ जब पिता जी घर के निर्णयों में उसकी राय जानने का प्रयास करने लगे। कुछ समय पश्चात छात्र कार्यशाला से संबंधित अपनी उस बात को भी पिता से साझा कर पाया जिसे वह पहले करना चाहता था। अतः संबंधों में दूसरों को आश्वस्त करना महत्वपूर्ण है विशेषकर कोई महत्वपूर्ण बात कहने से पहले, यदि आप वास्तव में किसी बात पर सामने वाले व्यक्ति का ध्यान दिलाना चाहते हैं तो।

चाहना पर विश्वास दोनों के ही विकास का प्रारंभिक बिंदु है। यहीं से संबंध प्रारंभ होता है। हम इस बात को इस दृष्टि से कह रहे हैं कि चाहना पर विश्वास ही संबंध का आधार है।

विश्वास से संबंधित मुख्य बिंदु

(Salient Points regarding Trust)

- विश्वास का अर्थ है, आश्वस्त होना अर्थात् यह स्पष्टता होना कि दूसरे की चाहना (सहज स्वीकृति) मुझे सुखी और समृद्ध करने के अर्थ में है। जब मैं स्पष्ट रूप से यह देख पाता हूँ कि मेरी चाहना (सहज स्वीकृति) स्वयं को सुखी और समृद्ध करने के साथ-साथ दूसरों को भी सुखी और समृद्ध करने की है तब मैं यह निष्कर्ष निकाल पाता हूँ कि स्वयं के स्तर पर दूसरा भी मेरे जैसा ही है और उसकी चाहना (सहज स्वीकृति) भी मेरे जैसी ही है।
- मैं दूसरे को अपने जैसा स्वीकार पाता हूँ। दूसरा मेरे जैसा ही है - हमारी चाहना एक जैसी है, मेरी ही तरह उसकी योग्यता में भी कमी हो सकती है।
- चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों के साथ संबंध महसूस कर पाता हूँ और इसके आधार पर दोनों की वर्तमान योग्यता का आंकलन कर कार्यक्रम बना पाता हूँ। चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों को आश्वस्त करने का प्रयास भी कर पाता हूँ। चाहना पर विश्वास संबंधों में परस्पर-विकास का प्रारंभिक बिंदु भी है।

- संबंध का आधार विश्वास का भाव है। इस भाव के अभाव में हम एक दूसरे के साथ संबंध महसूस नहीं कर पाते जिससे संबंध हिलते-डुलते रहते हैं। संबंधों में सामान्यतः यह गलती होती रहती है कि हम अपना आंकलन अपने चाहना के आधार पर करते हैं और दूसरों का आंकलन उनकी योग्यता के आधार पर करते हैं। ऐसा करते हुये हम यह मान लेते हैं कि हम अच्छे व्यक्ति हैं और समस्यायें तो दूसरों में है।

अपनी समझ को जाँचें

(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. विश्वास की परिभाषा के रूप में क्या प्रस्ताव दिया गया है? विश्वास के भाव को अपने जीने से संबंधित उदाहरण की सहायता से समझाइये।
2. योग्यता और चाहना के बीच विभेद करें। जब हम इन दोनों को लेकर भ्रमित रहते हैं और दूसरों की चाहना पर शंका करते हैं तो इसके क्या परिणाम आते हैं? और जब हम इन दोनों के अंतर को समझ पाते हैं और दूसरों की चाहना पर विश्वास कर पाते हैं तो उसके क्या परिणाम होते हैं।
3. 'यदि मैं हर एक की चाहना पर विश्वास करूँगा तो लोग मेरा अनुचित लाभ उठा सकते हैं' यह वक्तव्य सही है या गलत? इसकी व्याख्या करें।
4. विश्वास, संबंधों का आधार मूल्य किस प्रकार से है?
5. विश्वास के भाव की स्पष्टता के साथ प्रतिक्रिया एवं अनुक्रिया (response) पूर्वक जीने के बीच विभेद करें। संबंधों में ऐसे जीने का एक-एक उदाहरण भी दीजिये।
6. इच्छा और चाहना में अंतर बताइये और कम से कम एक-एक उदाहरण भी दीजिये।

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इसे व्यक्तिगत स्तर पर या समूह में विशेषकर मित्रों और परिवार के सदस्यों के साथ इन अभ्यासों को अवश्य करें)।

1. विश्वास के आंकलन से संबंधित आठों प्रश्नों को लीजिये। अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिये इनका मूल्यांकन करिये और बाद में यह आंकलन अपने मित्रों के साथ भी कर सकते हैं। यह जाँच करिये कि आपमें कितने लोगों की चाहना के प्रति विश्वास का भाव है जो बिना शर्त के निरंतरता में बना रहता है? यह भी देखिये कि ऐसे कितने लोग हैं जिनके प्रति आपको कभी झल्लाहट, क्रोध या विरोध का भाव नहीं आता? और कितने ऐसे लोग हैं जिनके साथ हर स्थिति में आप परस्पर-पूरकता का निर्वाह करने का ही प्रयास करते हैं?
2. क्या आप यह चाहते हैं कि लोग आपको निम्नलिखित के आधार पर स्वीकार करें:
   a. मानव होने के रूप में आपमें निहित सभी संभावनाओं (आपकी सहज स्वीकृति) के साथ
   b. आपको आपकी अच्छाइयों और बुराइयों (आप की वर्तमान योग्यता) के साथ
   c. आप की कमियों को दूर करने में (आपकी योग्यता विकसित करने में) सहायता करने की स्वीकृति के साथ

   क्या परिवार में ऐसा कोई सदस्य है जिससे आप उपरोक्त अपेक्षा नहीं रखते हैं? क्या परिवार में ऐसा कोई व्यक्ति है जो आपसे उपरोक्त अपेक्षा नहीं रखता है? क्या आप अपने परिवार में दूसरों को हमेशा इसी रूप में स्वीकार कर पाते हैं?

3. उन घटनाओं को याद कीजिये जब आप में किसी के प्रति झल्लाहट या क्रोध आया हो। इसका क्या परिणाम रहा? उन घटनाओं में क्या आप यह याद कर सकते हैं कि आपको उन लोगों की चाहना पर शंका हुई थी? एक या एक से अधिक ऐसी घटनाओं को याद करके साझा करने का प्रयास कीजिये। इस अभ्यास से आपके क्या निष्कर्ष बने?
4. स्वयं में जाँचिये कि क्या आपके लिये संबंध को समझना आवश्यक है? विश्वास के भाव को समझना और आप में विश्वास के भाव का होना भी आपके लिये आवश्यक है क्या? विश्वास के भाव को समझने के लिये किन-किन सटीक प्रयासों की जरूरत है? और क्या आप वह प्रयास कर रहे हैं?
5. आनंद गांधी की लघु फिल्म "(Right Here, Right Now)" को देखिये। यह फिल्म इस लिंक से डाउनलोड की जा सकती है:

   भाग-१ https://www.youtube.com/watch?v=OVAokeqQuFM
   भाग-२ https://www.youtube.com/watch?v=glYJePEnvUY
   इस फ़िल्म के पात्रों के बीच होने वाली बातचीत का परीक्षण कीजिये। इनमें से 10 वार्तालापों के परीक्षण के उपरांत अपने निष्कर्षों को लिखिये कि यह प्रतिक्रिया है या अनुक्रिया (जिम्मेदारी पूर्वक दिया गया उत्तर) और क्यों? जिम्मेदारी पूर्वक किये गये व्यवहार और प्रतिक्रिया में किये गये व्यवहार को पहचानने हेतु संकेतों को लिखिये और इन्हें 'मैं' की क्रियाओं के साथ जोड़ने का प्रयत्न भी कीजिये।
6. पिछले एक सप्ताह में अपने परिवार के लोगों के साथ आपके द्वारा किये गये व्यवहार में से कम से कम दस या इससे अधिक व्यवहार की सूची बनाइये। इनमें से कितने प्रतिशत व्यवहार जिम्मेदारी पूर्वक किये गये थे अर्थात् आपकी अनुक्रिया थी। एक घटना प्रतिक्रिया की लीजिये एवं एक घटना अनुक्रिया की और इनका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये कि क्यों ये अनुक्रिया या प्रतिक्रिया हैं। इस पर भी वक्तव्य दीजिये कि आप इन दोनों घटनाओं के समय स्वयं में सहज थे या असहज थे।
   यदि आपके लिये अपने व्यवहार में अनुक्रिया अर्थात् जिम्मेदारी पूर्ण व्यवहार आवश्यक लगता है तो इसके लिये कौन-कौन से प्रयास करना आपके लिये आवश्यक हैं उन्हें लिखिये।

मानव मानव संबंधों मे मूल्य-सम्मान-
(Respect as Right Evaluation)

पुनरावृत्ति
(Recap)

अभी तक हमारी चर्चा का विषय संबंधों का आधार मूल्य विश्वास रहा।
विश्वास : चाहना (आश्वस्ति) इस बात की कि दूसरे की चाहना (सहज स्वीकृति) मेरे सुख समृद्धि के अर्थ में है। इसमें हमने देखा कि जब मैं स्पष्ट रूप से यह देख पाता हूँ कि मेरी चाहना (सहज स्वीकृति) स्वयं को सुखी और समृद्ध करने के साथ साथ दूसरों को भी सुखी और समृद्ध करने की है, तब मैं यह निष्कर्ष निकाल पाता हूँ कि स्वयं के स्तर पर दूसरा मेरे जैसा ही है और उसकी चाहना (सहज स्वीकृति) भी मेरे जैसी ही है। और चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों के साथ सम्बन्ध महसूस कर पाता हूँ और इसके आधार पर दोनों की वर्तमान योग्यता का आकलन कर कार्यक्रम बना पाता हूँ। चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों को आश्वस्त करने का प्रयास भी कर पाता हूँ। चाहना पर विश्वास संबंधों मैं विश्वास का प्रारम्भिक बिंदु भी है।
आइये देखें की हम स्वयं में सम्मान का भाव कब महसूस करते हैं और दूसरों का सम्मान किस प्रकार से करते हैं।

सम्मान- सही आँकलन
(Respect as Right Evaluation)

विश्वास के भाव की स्पष्टता के बाद, अब हम सम्मान के भाव का अध्ययन शुरू कर सकते हैं। आइये देखें कि हम स्वयं में सम्मान का भाव कब महसूस करते हैं और दूसरों का सम्मान किस प्रकार से करते हैं।

प्रस्ताव है: **सही आँकलन ही सम्मान है।**

सम्मान का अर्थ है; सही-सही आँकलन । जब हमारा सही-सही आँकलन होता है तो हम सम्मानित महसूस करते हैं। और जब हमारा आँकलन सही नहीं होता हैं तब हम अपमानित महसूस करते हैं।

आप यह देख सकते हैं कि सम्मान की यह परिभाषा, वर्तमान में प्रचलित सम्मान के अर्थ से भिन्न है; क्या ऐसा नहीं है? हाँ ऐसा ही है। हम सम्मान के नाम पर ध्यानाकर्षण पाने के लिये या दूसरों से भिन्न अथवा विशेष दिखने के लिये अनेक प्रकार की गतिविधियों में लगे रहते हैं जैसे कि समाचार पत्रों या मैगजीनों में अपने बारे में अच्छा छपवाना, पुरस्कार जीतने का प्रयास करना, रिकार्ड बुक में नाम दर्ज करवाने का प्रयास इत्यादि। इसके लिये बहुत से लोग पहाड़ चढ़ने, समुद्र की गहराइयों में गोते लगाने, हवाई-जहाज से कूदने, अलग-अलग प्रकार के वस्त्र पहनने, विशेष प्रकार के चश्मे पहनने, विशेष तरह के बाल कटवाने, अपने शरीर पर टैटू बनवाने इत्यादि जैसे कार्य करते हुये भी दिखाई देते हैं। इस तरह के कार्यों की यह सूची बहुत लम्बी है। यहाँ तक कि दैनिक जीवन में भी हम अनेक ऐसी गतिविधियां करते रहते हैं जिससे माता-पिता, अध्यापक, मित्र एवं सहपाठियों की नजर में हम अच्छे बने रहें। जब आप ऐसी गतिविधियां कर रहे होते हैं तब आप की स्थिति क्या होती है? क्या आप स्वयं में सहज होते हैं या असहज? आपको क्या लगता है इन सबसे आपको क्या मिल पाता है, कुछ सामयिक ध्यानाकर्षण या इससे कुछ अधिक? क्या यह सब दूसरे में आपके लिये स्वीकृति को सुनिश्चित कर पाता है? इसके बारे में जरा सोचिये। यहाँ पर आपको ध्यान दिलाना चाहते हैं कि सम्मान से हमारा आशय सही-आँकलन से है।

अपमान – अधिमूल्यन, अवमूल्यन और अमूल्यन
(Over Evaluation, Under Evaluation and Otherwise Evaluation Leading to Disrespect)

हम देखते हैं कि आज हम सम्मान के नाम पर क्या कर रहे हैं तो अधिकांशतः पाते हैं कि:

अधिमूल्यन - वास्तविकता जैसी है उससे अधिक आंकलन करना
अवमूल्यन – वास्तविकता जैसी है उससे कम आंकलन करना
अमूल्यन – वास्तविकता जैसी है उससे अन्यथा आंकलन करना

उदाहरण के लिये जब आप किसी बच्चे से प्रसन्न होते हैं तो आप यह कहना शुरु कर देते हैं कि वह तो बहुत ही समझदार बच्चा है, आगे चल कर कुछ भी कर सकता है। क्या यह उसका सही आँकलन है या अधिमूल्यन है? हाँ यह अधिमूल्यन ही है क्योंकि कोई भी बच्चा कुछ निश्चित चीजें ही कर सकता है न कि कुछ भी। और जब किसी कारण वश आप उसी बच्चे से नाराज हो जाते हैं तो कहते हैं कि यह तो बहुत ही बेकार बच्चा है; नालायक है पता नहीं आगे चल कर कुछ कर भी पायेगा या नहीं। क्या यह उसका सही-मूल्यांकन है या अवमूल्यन है? यह उसका अवमूल्यन ही तो है क्योंकि प्रत्येक बच्चा कुछ न कुछ तो कर ही पाता है; हाँ यह अवश्य हो सकता है कि जो आप चाहते हों वैसा न कर पाये। ऐसे ही जब आप उससे कुछ ज्यादा ही नाराज हो जाते हैं तो कहते हैं कि यह तो गधा है अर्थात् अब आप उसे मानव भी नहीं स्वीकार रहे हैं जबकि वह तो आदमी का ही बच्चा है परन्तु आप उसका आंकलन गधे के रूप में कर रहे हैं अर्थात् एक पशु के रूप में। यही उसका अमूल्यन है।

यदि जीने में अपने दैनिक व्यवहार को देखें तो हम तीनों तरह के गलत आंकलन अर्थात् अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन में से ही कोई न कोई आंकलन करते रहते हैं। यदि इन तीनों में से कोई भी गलत आंकलन किसी भी व्यक्ति का होता है तो वह असहज और अपमानित महसूस करता है। परस्परता में आप दूसरों के साथ जो

भी व्यवहार करते हैं, उसकी जाँच स्वयं में करके देखिये कि क्या यह सम्मान है या अपमान है, अर्थात् यह सही आँकलन है या तीनों तरह (अधिमूल्यन, अवमूल्यन, अमूल्यन) के गलत आंकलन में से कोई एक है।

इसे समझने के लिये मेरे साथ घटी एक घटना को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। एक बार मैं अपने एक मित्र के घर गया। मैंने पाया कि किसी कारण से उनकी पत्नी अपनी बेटी से बहुत दुखी थीं क्योंकि मेरे पहुंचाते ही उन्होंने यह कहना शुरू कर दिया कि देखिये इस लड़की ने तो मुझे बहुत परेशान कर रखा है, यह किसी कार्य में कोई सहयोग नहीं करती है। उन्होंने इस बात को कम से कम दो से तीन बार दोहराया। तब मैंने उन से कहा कि कुछ तो करती ही होगी; यह कैसे हो सकता है कि कोई व्यक्ति कुछ भी न करता हो? लेकिन वे अपनी इसी बात पर अड़ी रहीं कि उनकी बेटी कुछ भी नहीं करती। उनकी बेटी यह सब सुन कर प्रतिक्रिया में कहने लगी कि 'आप जब देखो तब यही कहती रहती हैं कि मैं कुछ भी नहीं करती जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है' मैं, सुबह कॉलेज जाने से पहले खाना बनाने में आपकी मदद करती हूँ; कॉलेज से आने के बाद भी शाम को भोजन बनाने में आपका सहयोग करती हूँ, इतना ही नहीं घर पर कोई आता है तो उनके लिये चाय नाश्ता भी बनाती हूँ, इसी प्रकार उसने कई और काम भी गिना दिये और पूछने लगी कि आप मुझसे और क्या चाहती हैं? उस समय वह बच्ची इंजीनियरिंग के तीसरे वर्ष में पढ़ रही थी। किन्तु उसकी माँ अब भी नाराज थी और यही कहे जा रही थीं कि तुम तो कुछ भी नहीं करतीं।

इस तरह की घटनायें सामान्यतः परिवारों में देखने को मिलती ही रहती हैं। यदि आप किसी से दुखी होते हैं, किसी से गुस्सा होते हैं, तो आप भी यही कहते हैं कि वह व्यक्ति किसी काम का नहीं, बेकार है, नालायक है इत्यादि। लेकिन वास्तव में क्या वह व्यक्ति किसी काम का नहीं होता। मेरा कहने का तात्पर्य है कि वास्तव में ऐसा नहीं है कि वह लड़की कुछ भी नहीं करती होगी कुछ कार्य तो करती ही होगी और कुछ कार्य नहीं भी करती होगी। लेकिन जब आप खुश होते हैं तो वह व्यक्ति जो कर रहा होता है, आपका ध्यान उस पर जाता है और आप कहते हैं कि यह लड़की तो बहुत अच्छी है, पूरा घर तो इसी ने संभाल रखा है और अपनी पढ़ाई भी करती है इत्यादि लेकिन जब आप दुखी होते हैं तो उसी व्यक्ति के लिये आप यह कहने लगते हैं कि अरे यह लड़की तो बहुत बेकार है, किसी काम की नहीं है, पूरे घर को परेशान कर रखा है।

वास्तव में यहाँ पर हो क्या रहा है, जब आप दुखी हैं तो आपका ध्यान सिर्फ इस पर जाता है कि दूसरा व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता, अर्थात् सिर्फ उसकी कमियों पर; जिसके आधार पर आप दूसरे का अवमूल्यन कर रहे होते हैं। इस तरह के अवमूल्यन से वह व्यक्ति डिप्रेशन में या प्रतिक्रिया में चला जाता है और जब आप खुश होते हैं तो दूसरे का अधिमूल्यन कर रहे होते हैं जिससे वही व्यक्ति अहंकार में चला जाता है और दोनों ही स्थितियों में परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित नहीं हो पाती; एक दूसरे के लिये विश्वास और सम्मान का भाव सुनिश्चित नहीं हो पाता।

हम अपने आस-पास इस तरह के बहुत से उदाहरण देख सकते हैं। क्या अधिकांशतः हम सही- आँकलन कर रहे होते हैं या तीनों तरह के गलत आंकलन में से कोई न कोई कर रहे होते हैं? कई बार जब वह आपका बच्चा होता है तो आप उसे एक तरीके से देखते हैं; और यदि किसी दूसरे का बच्चा होता है तो आप दूसरे तरीके से देखते हैं। सामान्यतः हम ऐसा करते रहते हैं और हमारा इस पर ध्यान भी नहीं रहता। लेकिन हम ऐसा करते क्यों हैं? ऐसा हम इसलिये कर रहे होते हैं क्योंकि मानव के बारे में हमारी मूलभूत समझ सही नहीं होती है।

चित्र. 8-4. का संदर्भ लीजिये। जब तक मानव के बारे में सही-समझ के आधार पर हम स्वयं का सही-सही मूल्यांकन नहीं करते तब तक हम दूसरे का भी सही आँकलन नहीं कर पाते हैं। जब हम किसी व्यक्ति का अधिमूल्यन करते हैं तो वह व्यक्ति में अहंकार में चला जाता है और जब अवमूल्यन या अमूल्यन करते हैं तो वही व्यक्ति अवसाद अथवा डिप्रेशन में चला जाता है। चाहें यह अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन हम स्वयं का करें अथवा किसी दूसरे का; यह गलत आंकलन दोनों ही स्थितियों में समस्या ही उत्पन्न करता है। जब आप स्वयं का अधिमूल्यन कर लेते हैं तो आप अहंकार में चले जाते हैं और आप अपने को दूसरों की अपेक्षा विशेष एवं दूसरों को बेकार सिद्ध करने के प्रयास में लग जाते है; यही अहंकार आपके व्यवहार में प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त होने लगता है जिससे उस व्यक्ति के साथ आपके व्यवहार में परस्पर-पूरकता की संभावना नहीं बन

पाती। इसी प्रकार से जब आप अपना अवमूल्यन या अमूल्यन करते हैं तो अवसाद (डिप्रेशन) में चले जाते है तब आपको लगता है, मैं बेकार हूँ, मेरे से कोई खुश नहीं रहता, मैं जिंदगी में कुछ कर भी पाऊँगा या नहीं इत्यादि और यही सोच-सोच कर आप स्वयं में दुखी होते हैं और दूसरों को भी दुखी करते रहते हैं।

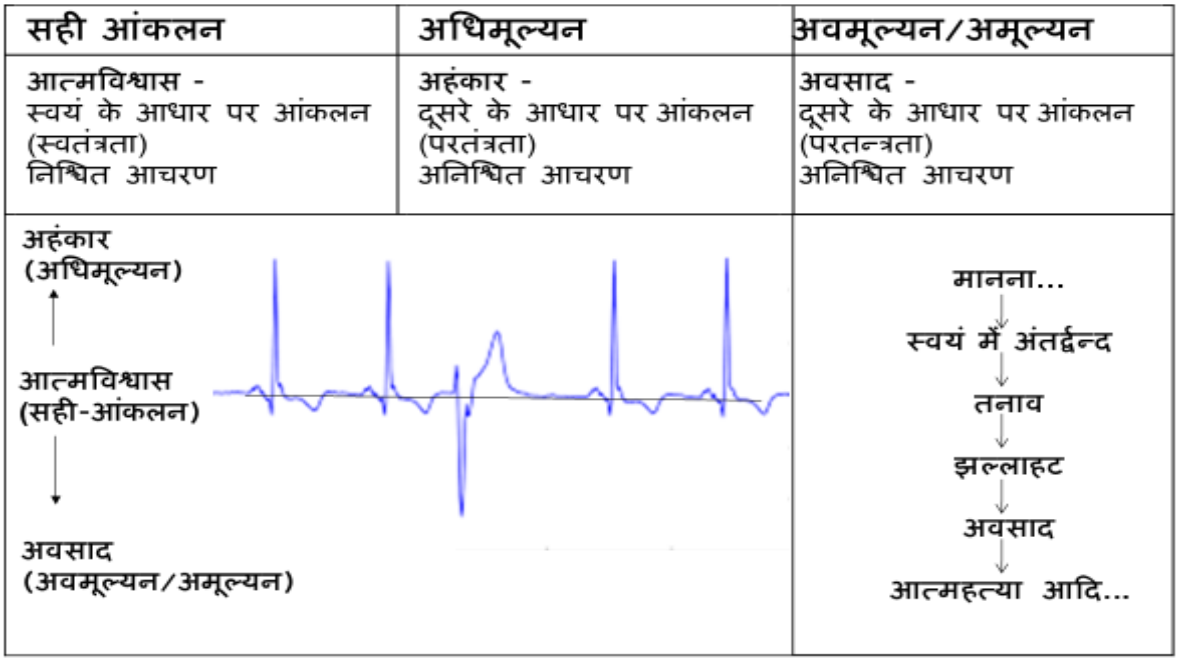

चित्र. 8-4. आत्मविश्वास, अहंकार और अवसाद

इस तरह के कई उदाहरण हम अपने आस-पास भी देख ही सकते हैं। हमारे एक पूर्व छात्र जो अभी एक इंजीनियरिंग कॉलेज में इस विषय को पढ़ाते हैं उन्होंने बताया कि इस विषय को वे जिस भी क्लास में पढ़ाते हैं उस क्लास के बच्चों के साथ उनकी आश्वस्ति काफी बढ़ जाती है जिससे बच्चे अपनी निजी जिन्दगी के बारे में या तो क्लास में ही अथवा व्यक्तिगत तौर पर खुल कर बात करने लगते हैं।

ऐसे ही एक बार जब वे इस विषय को MCA की क्लास में पढ़ा रहे थे तो उस क्लास की एक लड़की ने अपनी एक व्यक्तिगत समस्या के बारे में चर्चा के लिये कुछ समय माँगा। जब वे उसके साथ चर्चा के लिये बैठे तो तीन-चार मिनट तक वह लड़की कुछ नहीं बोली तब उन्होंने जोर दे कर कहा कि तुम संकोच मत करो जो भी कहना चाहती हो निःसंकोच कहो तब उसने कहा कि "मुझे लगता है कि मैं सुंदर नहीं हूँ" इस पर शिक्षक ने उस लड़की से पूछा कि तुमको ऐसा क्यों लगता है कि तुम सुंदर नहीं हो, उसने बताया कि चाहें लड़के हों या लड़कियाँ किसी के साथ भी उसकी मित्रता लम्बे समय तक नहीं चल पाती जल्दी ही टूट जाती है। तब उन्होंने पूछा कि तुम्हारे माता-पिता को तुम्हारे बारे में क्या लगता है? लड़की ने कहा कि मेरे माता-पिता को भी यही लगता है कि मैं सुंदर नहीं हूँ। जैसे ही लड़की ने अपने माता-पिता के बारे में यह बात रखी, शिक्षक को यह निश्चितता हो गयी कि उस लड़की की समस्या वास्तव में सुन्दरता को लेकर नहीं है, समस्या तो कुछ और है यह लड़की उस समस्या को अपनी सुन्दरता के साथ जोड़ कर देख रही है क्योंकि दुनिया में कोई भी माता-पिता ऐसे नहीं होंगे जिन्हें अपने बच्चे सुंदर न लगते हों।

क्योंकि वह लड़की स्नातक की पढ़ाई करने के उपरांत MCA करने आई थी अतः वह उस समय 20 से 22 वर्ष के आयु वर्ग की अवश्य रही होगी। हम समझ ही सकते हैं कि इस उम्र की लड़की के लिये यह कहना कितना कठिन रहा होगा कि वह सुंदर नहीं है। वह स्वयं में कितना घुटन महसूस करती होगी कि उसने साहस कर अपने शिक्षक से इस मुद्दे पर बात करने का निर्णय लिया होगा। ऐसा विचार कर उसके शिक्षक ने उसकी इस बात को गंभीरता से लेते हुये उसके साथ काफी देर तक बातचीत की। बातचीत में उन्होंने उस लड़की और उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में, उसके प्रति परिवार के सदस्यों एवं मित्रों के व्यवहार के बारे में; और किस प्रकार समय के साथ उन सभी के व्यवहार में उस

लड़की के प्रति कैसे बदलाव आया, इसके बारे में भी जानकारी ले पाये। इस चर्चा से जो पता चला वह हम सभी के ध्यान देने योग्य है।

MCA की उस छात्रा ने बताया कि उसके परिवार में उसके माता-पिता और वे कुल तीन भाई-बहन थे। उसकी बड़ी बहन M.A. करने के उपरांत घर पर ही थी और घर के कामों में सहयोग किया करती थी, दूसरे नंबर पर वह स्वयं ही थी जो उस समय MCA कर रही थी और तीसरे नंबर पर उसका छोटा भाई था जो कि दसवीं की पढ़ाई कर रहा था। उसका परिवार एक सामान्य आय वर्ग का परिवार था। उसने यह भी बताया कि उनके खानदान (कुनबा) के कई लड़के तो व्यावसायिक शिक्षा ले चुके थे किन्तु कोई भी लड़की व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश नहीं ले पायी थी। वह अपने कुनबे की पहली लड़की थी जिसने स्नातक परीक्षा में अच्छे अंक अर्जित कर व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश पाया था। इससे उसके पिता जी बहुत ही गौरवान्वित महसूस करते थे। अतः जब भी कोई मेहमान या संबंधी उनके घर आता था तो वे अपनी मंझली बेटी (MCA की छात्रा) को भी बुला लेते और उसका परिचय यह कहते हुये करवाते थे कि यह हमारे परिवार का ताज है, गौरव है ; इसने B.Sc. में बहुत अच्छे अंक अर्जित किये हैं और अब यह MCA की पढ़ाई कर रही है, यह हमारे पूरे कुनबे की पहली ऐसी लड़की है जो इतना अच्छा कर पायी है इत्यादि। दूसरी ओर वह अपनी बड़ी बेटी का परिचय करवाना तो दूर वे वहीं बैठे-बैठे उसे सभी के लिये चाय बना कर लाने का आदेश दे दिया करते थे, उन्हें इस बात का ध्यान भी नहीं रहता था कि वे अपनी बड़ी बेटी को किस प्रकार नजर अंदाज कर रहे थे। ऐसा ही वे अपने छोटे बेटे के साथ भी कर जाते थे जब वे बहुत नाराजगी में मेहमान के सामने ही उसे नालायक या गधा कहकर संबोधित करते और चिंता जाहिर करते कि वह दसवीं पास कर पायेगा या नहीं क्योंकि वह नौवीं की परीक्षा ही मुश्किल से पास कर पाया था। इस तरह का संवाद अक्सर उनके ड्राइंग रूम में किसी न किसी आने वाले मेहमान के समक्ष होता ही रहता था।

आपको क्या लगता है जिस प्रकार से इस परिवार के तीनों बच्चों का आंकलन किया जा रहा है वह सही- आँकलन है? और इस तरह के गलत आंकलन का उन बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता होगा?

जब भी वे अपनी MCA कर रही बेटी का इस प्रकार से बढ़ा-चढ़ा कर आंकलन करते थे तो क्या यह उसका सही- आँकलन था या अधिमूल्यन था? निश्चित तौर पर यह उसका अधिमूल्यन ही था जिससे वह बेटी अहंकार में चली जाती होगी। उनकी बड़ी बेटी जिसका कि वे परिचय भी नहीं करवाते थे उसको कैसा लगता होगा? वह सोचती होगी कि क्या मैं इस घर में नौकर हूँ? यह उसका सही मूल्यांकन था या अवमूल्यन था? निश्चित ही यह उसका अवमूल्यन था। ऐसे ही जब वे अपने छोटे बेटे को मेहमान के सामने ही नालायक और गधा कहते थे तो उसे कैसा लगता होगा? क्या यह उसका सही- आँकलन था या अमूल्यन था? यह उसका अमूल्यन ही था क्योंकि आदमी का बच्चा कभी गधा हो सकता है क्या?

इस तरह के होने वाले गलत आंकलन से बड़ी बहन और छोटा भाई दोनों ही अपमानित महसूस करते थे और इस अपमान का कारण वे MCA कर रही अपनी मंझली बहन को मानते थे जिसके कारण उनमें उसके प्रति स्नेह की जगह द्वेष होने लगा होगा। MCA करने वाली लड़की का जो अधिमूल्यन हो रहा था, उससे वह अहंकार में जा रही थी; अहंकार में होने के कारण उसका व्यवहार अपनी बड़ी बहन और छोटे भाई के साथ परस्पर-पूरक होने के बजाय शासन वाला होने लगा था। इससे उस MCA कर रही लड़की के प्रति उसके छोटे भाई और बड़ी बहन में द्वेष और बढ़ गया होगा जिससे उन दोनों की आपस में अच्छी दोस्ती हो गयी होगी क्योंकि दोनों के दुःख का कारण एक ही था; वैसे भी जब दो लोगों का दुश्मन एक ही हो तो उन दोनों की दोस्ती बहुत जल्द हो जाती है, चाहे यह स्थिति देशों के स्तर पर हो या घर के स्तर पर ही क्यों न हो परिणाम तो एक ही होता है। संभवतः उन्होंने इसकी शिकायत अपनी माँ से की होगी, बड़ी बहन ने कहा होगा कि जब से ये MCA करने लगी है इसे बिस्तर पर ही चाय चाहिये, खाना चाहिये, मैं इसकी बड़ी बहन हूँ या नौकर? इत्यादि; वहीं छोटे भाई ने कहा होगा कि जब से ये MCA करने लगी है, मुझे पढ़ाती नहीं है, मैं कुछ पूछता हूँ तो बताना तो दूर ठीक से बात भी नहीं करती है इत्यादि। जब बार-बार वे दोनों भाई बहन माँ से अपनी मंझली बहन की शिकायत करते

होंगे तो माँ ने भी अपनी मंझली बेटी के व्यवहार पर ध्यान देना शुरू किया होगा। आपको क्या लगता है अहंकार में गयी हुई बेटी का व्यवहार माँ को सही लगा होगा या गलत? निःसंदेह गलत ही लगा होगा। तब उन्होंने इसकी शिकायत पिता जी से की होगी कि देखिये इसको इस तरह सिर पर बैठाना ठीक नहीं है, इसने घर में कई तरह की समस्यायें शुरू कर दी हैं, यह लड़की है कल को कुछ उलटा सीधा कदम उठा लिया तो क्या करेंगे, आये दिन अख़बार में व्यावसायिक शिक्षा से जुड़े छात्रों के बारे में कोई न कोई खबर आती ही रहती है, किसी दिन हम लोगों को भी ऐसे ही इसके बारे में खबर न पढ़नी पड़ जाये। पिता जी भी चिंतित हुये होंगे और इस बच्ची को धमकाना शुरू कर दिया होगा कि सुधर जाओ नहीं तो पढ़ाई छुड़वा देंगे, घर में बैठा देंगे इत्यादि। अब इस तरह का आंकलन वास्तव में सही आंकलन तो नहीं है, यह तो अवमूल्यन ही है जिससे वह लड़की धीरे-धीरे डिप्रेशन में चली जाती रही होगी।

सामान्यतः परिवार के सदस्यों और मित्रों के बीच अक्सर ऐसा होता ही रहता है और ये लगता है कि इससे क्या फर्क पड़ता है; ऐसा तो जिन्दगी में चलता ही रहता है; परन्तु ये सामान्य दिखने वाली घटनायें बहुत से लोगों को इगो और डिप्रेशन जैसी गंभीर समस्या में धकेल रहीं हैं, और जो लोग एक बार इस इगो-डिप्रेशन के जाल में फँस जाते हैं उनको ऐसी स्थिति से बाहर निकालने में कितनी कठिनाई होती है, यह तो उन्हीं को बेहतर पता है जिनके अपने इस तरह के जाल में उलझ गये हैं।

वास्तव में उस लड़की के साथ हो यह रहा था कि उसके माता-पिता कभी अधिमूल्यन करके उसे अहंकार की स्थिति में पहुँचा देते थे और फिर कभी अवमूल्यन करके अवसाद की स्थिति में; जब वह बच्ची इगो में होती होगी तो उसे लगता होगा कि मैं विशेष हूँ, अपने सभी मित्रों से श्रेष्ठ हूँ और वहीं जब वह डिप्रेशन में होती होगी तो उसे लगता होगा कि मैं किसी से बात भी कर पाऊँगी या नहीं, कोई मुझे समझेगा भी या नहीं इत्यादि। वह अपने कॉलेज में भी इतने बच्चों के बीच अकेला महसूस करती होगी। और उस लड़की के अपने घर में क्या स्थिति होगी? जरा ऐसे परिवार की कल्पना कीजिये जिसमें परिवार के पाँच सदस्यों में से चार का अनजाने में ही एक ग्रुप बन गया हो और वह बच्ची अपने ही लोगों के बीच अलग-थलग पड़ गयी हो; उसे अपने ही घर में अनजानों जैसा रहते हुये कैसा लगता होगा; जरा सोचिये न उस लड़की की स्थिति क्या होगी जो कॉलेज में भी अलग-थलग हो और घर पर भी अकेला महसूस करती हो?

इस चर्चा के कुछ दिनों बाद जब वह लड़की फिर किसी काम से अपने उन्हीं शिक्षक से मिली तो उन्होंने उससे पूछा कि कैसी हो तुम? तब उसने काफी निराश और मायूस होकर लगभग रोते होये कहा, 'सर्, अब बर्दाश्त नहीं होता, मन करता है कि आत्महत्या कर लूं'

आप को क्या लगता है, इस लड़की को ऐसी स्थिति में पहुँचाने के लिये कौन जिम्मेदार है? उसके माता-पिता या कोई और? माता-पिता के द्वारा अनजाने में ही किया जा रहा बार-बार गलत आंकलन उनके अपने ही बच्चों को इगो-डिप्रेशन के जाल में उलझा देता है और उन्हें इसके बारे में पता भी नहीं चल पाता। वे तो डिप्रेशन के शिकार अपने बच्चों को ही इस स्थिति के लिये जिम्मेदार मानते हैं और इस स्थिति से निकालने के लिये बहुत सारी दवाइयां खिलाते रहते हैं। निःसंदेह दवाइयों की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है यदि समस्या शरीर से जुड़ी हुई हो; परन्तु समस्या यदि व्यवहार की हो, भाव की हो, गलत मूल्यांकन की हो, स्वयं में नासमझी की हो तो इनके हल के लिये सिर्फ दवा पर्याप्त नहीं होगी बल्कि 'स्वयं को', स्वयं में भाव को, सही-मूल्यांकन इत्यादि को समझना और इनके प्रति जागरूक रहना आवश्यक होगा।

अतः परस्परता में सही मूल्यांकन होना अति आवश्यक है, विशेषकर परिवार के सदस्यों एवं शिक्षकों के द्वारा क्योंकि इन दोनों ही जगहों पर बच्चों को अपना गलत मूल्यांकन सहन कर पाना या स्वीकार कर पाना काफी कठिन होता है। इसलिये सही-समझ और सजगता के साथ सही-मूल्यांकन निरंतरता में सुनिश्चित करना आवश्यक है।

सामान्यतः चारों ओर इसी तरह की स्थिति दिखाई देती है जहाँ लोग इगो डिप्रेशन की समस्या से ग्रसित रहते हैं, अतः समाधान क्या है? हममें से हर एक को स्वयं का सही-मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। स्वयं के सही-

मूल्यांकन से एक तो हम स्वयं के प्रति सजग रह पाते हैं, अपने मूल्यांकन के लिये दूसरों पर निर्भरता समाप्त होती है और हम अपना स्व-मूल्यांकन कर पाते हैं। अपन सही-मूल्यांकन कर पाने से 'स्वयं में विश्वास' (आत्मविश्वास) बढ़ता है जो कि दूसरों के द्वारा किये गये गलत मूल्यांकन से प्रभावित नहीं होता। अतः इस प्रकार का आत्मविश्वास निरपेक्ष होता है, जिसमें दूसरों की सापेक्षता में मूल्यांकन आवश्यक नहीं रहता अर्थात् जब दूसरे मेरा अधिक, कम या अन्यथा मूल्यांकन करते हैं, तो भी मैं इससे प्रभावित नहीं होता, बल्कि स्नेह पूर्वक दूसरों को अपना सही-मूल्यांकन करने में सहयोग कर पाता हूँ।

सम्मान का न्यूनतम भाग – दूसरा मेरे जैसा है

(Minimum Content of Respect – The Other is Similar to Me)

यदि हम सही मूल्यांकन अर्थात् सम्मान करना चाहते हैं तो कैसे करेंगे? आइये इसे समझें का प्रयास करते हैं।

जब भी हम सही मूल्यांकन करने का प्रयत्न करते हैं, तो इस संदर्भ में पहला प्रश्न यही होगा कि यह मूल्यांकन 'मैं' के आधार पर होगा या 'शरीर' के आधार पर? अभी तक मानव के बारे में जो भी चर्चा की गई है, उसके आधार पर 'शरीर' और 'मैं' के बीच अंतर एवं समानताओं को समझने का प्रयत्न करें।

किसी भी व्यक्ति का सही मूल्यांकन करने का आधार उसका 'मैं' ही होगा न कि उसका 'शरीर'। जब हम यह मान लेते हैं कि मानव सिर्फ 'शरीर' है और हमें उसके 'मैं' के बारे में स्पष्टता नहीं रहती, तो किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके 'मैं' के आधार पर कर पाने की संभावना भी नहीं बन पाती है, क्योंकि सही-मूल्यांकन करने का मूल आधार ही स्पष्ट नहीं रहता है। यदि हम 'मैं' को ही नहीं समझ पायें हैं तो सही मूल्यांकन कर पाने की संभावना भी नहीं बन पाती। वास्तव में यही मुख्य समस्या है।

अब यदि हमें इस बात की स्पष्टता हो गयी है कि मानव, 'शरीर' और 'मैं' का सह-अस्तित्व है तो हम किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके 'मैं' के आधार पर करने के बारे में सोच सकते हैं और उसके सही-मूल्यांकन को सुनिश्चित भी कर सकते हैं। 'मैं' के आधार पर सही मूल्यांकन के लिये निम्न लिखित तीन बातों को ध्यान देना आवश्यक है:

- **हमारा लक्ष्य एक जैसा है:** मेरी सहज स्वीकृति निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की है। यही मेरा लक्ष्य है। दूसरे की सहज स्वीकृति भी निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की ही है। यही दूसरे का लक्ष्य भी है। अतः सहज स्वीकृति के आधार पर हमारा लक्ष्य एक जैसा है।
- **हमारा कार्यक्रम एक जैसा है:** निरंतर सुख और समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिये मेरा कार्यक्रम है- अपने जीने के चार स्तरों की व्यवस्था को समझना और तदनुसार व्यवस्था में जीना। अपने लक्ष्य (सुख, समृद्धि और इसकी निरंतरता) को सुनिश्चित करने के लिये दूसरे का कार्यक्रम भी यही है - चार स्तरों में जो व्यवस्था है, उसे समझना और जीना। इस दृष्टि से हमारा कार्यक्रम एक जैसा है।
- **हमारी क्षमता एक जैसी है:** मैं सहज स्वीकृति संपन्न हूँ और मुझमें इच्छा, विचार और आशा इत्यादि की क्रियायें निरंतर चलती रहती हैं। यही मेरे सोचने, समझने और करने की मूल-भूत क्षमता है। दूसरे में भी सहज स्वीकृति बनी हुई है और उसमें भी इच्छा, विचार और आशा इत्यादि क्रियायें निरंतर चलती रहती है अतः हमारी क्षमता एक जैसी है।

जब हम मानव को 'मैं' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझ पाते हैं तब हम यह देख पाते हैं कि दूसरा भी मेरे ही जैसा है, क्योंकि हमारा लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता एक ही जैसी है। यह किसी भी मानव के सम्मान के लिये न्यूनतम आवश्यक विषय-वस्तु है।

क्या हम मानव में व्याप्त समानता के उपरोक्त बिन्दुओं को देख पा रहे हैं? यह जाँचने की कोशिश करते हैं कि परस्परता में सम्मान सुनिश्चित करते समय हमारा ध्यान किस बात पर केन्द्रित रहता है- दूसरा मेरे जैसा है या मैं दूसरे से अलग हूँ अथवा मैं विशेष हूँ? जब हम मानव को वह जैसा है वैसा ही नहीं देख पाते हैं तो अधिकांश समय हम स्वयं को विशेष मानकर दूसरों से अलग सिद्ध करने का ही प्रयत्न करते रहते हैं।

भेद से उत्पन्न अपमान

(Disrespect Arising out of Differentiation)

मानव में समानता और अंतर को साथ-साथ देखने के बजाय, सामान्यतः हमारा ध्यान भेद पर ही केंद्रित हो जाता है। जब भी हमारा ध्यान भेद केंद्रित होता है तो हम परस्परता में भेदभाव करने लगते हैं जिससे अपमान उत्पन्न होता है।

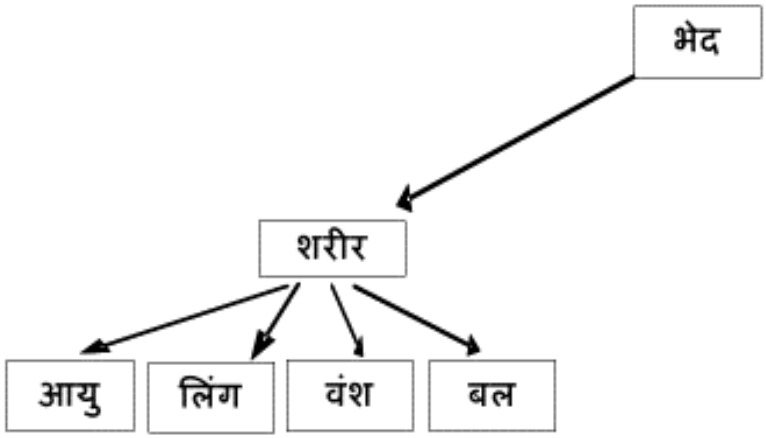

चित्र. 8-5. शरीर के आधार पर भेद

सामान्यतः सम्मान के नाम पर आज जो हम कर रहे हैं वह भेद है या ये कहें कि भेदभाव है।

इस तरह भेदभाव करने का एक मापदंड शरीर आधारित है (चित्र. 8-5.) जैसे आयु, लिंग, वंश एवं शारीरिक बल के आधार पर सम्मान तय करना। जैसे जब हम कहते हैं कि बड़ों का सम्मान करो तो छोटों का क्या करें? क्या छोटों को सम्मान की आवश्यकता नहीं है? आमतौर पर हम, मानव में 'मैं' पर आधारित समानता को नहीं देख पाते इसलिये यह भी नहीं देख पाते हैं कि बच्चों के 'स्वयं' को भी सम्मान की ठीक वैसे ही आवश्यकता है जैसे कि बड़े व्यक्तियों को। जिस प्रकार से हम आयु के आधार पर भेद करते हैं, उसी प्रकार से हम लिंग के आधार पर भी भेद करते रहते हैं और कहते है कि स्त्रियों का सम्मान करो तो प्रश्न यह उठता है कि पुरुषों का क्या करें? कई समुदायों में तो महिलाओं की तुलना में पुरुषों को वरीयता दी जाती रही है जबकि कुछ समुदायों में इसके विपरीत भी होता रहा है; इसी प्रकार वंश आधारित भेद भी होता है जैसे कि गोरा है तो सम्मान करेंगे तो फिर काले रंग वाले का क्या करेंगे? प्रश्न बनता है कि क्या उन्हें सम्मान की आवश्यक नहीं है? इसी प्रकार से जो व्यक्ति बलशाली है, उनका तो सम्मान किया जायेगा और निर्बल के साथ कैसे भी प्रस्तुत होंगे चाहे इससे उनका सम्मान हो या अपमान हो।

यदि आप सम्मान तय करने के लिये इन शरीर आधारित भेदों का निरीक्षण करें तो क्या वास्तव में इनसे सम्मान हो रहा होता है या अपमान? निःसंदेह इन भेदों से अपमान ही होता है जो कि वर्तमान समय में एक बड़ी समस्या है। यदि आप अपने आस-पास देखें तो सम्मान के नाम पर सामान्यतः भेद हो होता दिखाई देता है, जो कि अपमान है। इसी अपमान के कारण चारों ओर असंतोष, विरोध, विद्रोह एवं विभिन्न प्रकार के आंदोलन जैसे जनरेशन गैप के खिलाफ आंदोलन, लैंगिक असमानता के खिलाफ आंदोलन, महिला सशक्तिकरण आंदोलन, जाति विरोधी आंदोलन इत्यादि दिखाई देते हैं। इन सभी आंदोलनों के मूल में देखे तो भेद ही प्रमुख कारण के रूप में दिखाई देता है और आश्चर्य की बात तो यह है कि ये सभी भेदभाव सम्मान के नाम पर ही किये जा रहे हैं।

निःसंदेह इस भेद का मूलभूत कारण यह मान्यता ही है कि मानव 'शरीर' है, जबकि वास्तविकता यह है कि मानव 'स्वयं' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। यदि हम इस वास्तविकता को समझ पाते हैं तो मानव का मूल्यांकन 'स्वयं' के आधार पर कर पाते हैं, इससे हम एक दूसरे में व्याप्त समानता को भी देख पाते हैं और उसे स्वीकार भी पाते हैं।

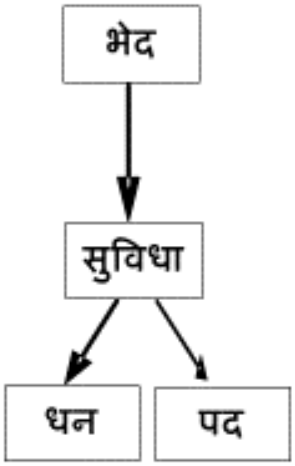

चित्र. 8-6. भौतिक सुविधा के आधार पर भेद

भेद का दूसरा मापदंड सुविधाओं पर आधारित है जैसे धन और पद के आधार पर भेद (चित्र. 8-6. का संदर्भ लीजिये)। जिसके पास अधिक धन संपदा है, उसका तो सम्मान! करेंगे लेकिन जिसके पास नहीं है उसका क्या करेंगे? क्या उसको सम्मान की आवश्यकता नहीं है? इसी प्रकार जो व्यक्ति उच्च पदों पर हैं, उनका तो सम्मान करेंगे और जो नहीं है, उनके लिये क्या करेंगे? क्या उनके लिये भी सम्मान आवश्यक नहीं है? इस आधार पर हो रहे भेदभावों के विरुद्ध भी अनेक आंदोलन चल रहे हैं। जैसे अमीर और गरीब के बीच होने वाला आंदोलन, उच्च और निम्न पद वालों के बीच होने वाला आंदोलन इत्यादि। इसके पीछे मूल मान्यता यह है कि भौतिक-सुविधायें ही सुख का आधार हैं। जबकि सुखी होने के लिये संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को समझना एवं जीना आवश्यक है।

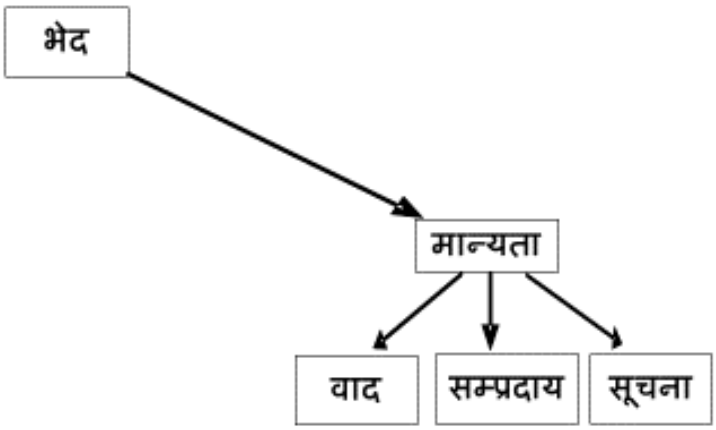

चित्र. 8-7. मान्यताओं के आधार पर भेद

भेद का तीसरा आधार हमारी मान्यतायें हैं (चित्र. 8-7.)। वर्तमान में अनेक वाद (जैसे समाजवाद, पूंजीवाद इत्यादि वैचारिक व्यवस्थायें), अनेक संप्रदाय एवं अनेक प्रकार की सूचनायें उपलब्ध हैं। आज-कल किसी व्यक्ति को सम्मान देना या न देना इस बात पर भी निर्भर करने लगा है कि वह किस मान्यता को स्वीकारे हुये है। उदाहरण के लिये यदि आप समाजवादी हैं, तो उन्हीं लोगों का सम्मान करते हैं जो समाजवाद को मानते है न कि पूंजीवादी को। इसी तरह यदि आप किसी एक संप्रदाय से संबंध रखते है तो आप उन्हीं का सम्मान करते हैं जो आपके संप्रदाय से संबंधित है न कि उनका जो किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित हैं इत्यादि। इसी तरह सूचनाओं के आधार पर भी भेद करते हैं जैसे यदि आप एक इंजीनियर हैं तो आपके पास इंजीनियरिंग से संबंधित एक तरह की सूचनायें रहती हैं जिसके आधार पर आप इंजीनियरों का सम्मान करते है डॉक्टर आदि

का नहीं। अतः अभी सम्मान करने का एक आधार मान्यतायेंसंप्रदाय , और सुचानायें हो गयी हैं, जिनसे हम जुड़े हुये हैं। लेकिन यह सब करके वास्तव में हम भेद ही करते हैं जो कि मूलतः अपमान ही है। भेद के इस तीसरे आधार के पीछे मूलभूत नासमझी यह है कि यदि दूसरे की मान्यतायें मेरी मान्यताओं से मेल खाती हैं तो दूसरा मेरे जैसा हैं अन्यथा नहीं जबकि वास्तविकता यह है ,कि 'मैं' के आधार पर सभी मानव एक ही जैसे हैं।
इन सब को मिलाकर देखें तो वर्तमान में हमारे सम्मान तय करने का आधार शरीर, सुविधा और मान्यतायें हैं (संदर्भ चित्र. 8-8.)। आप देख सकते हैं कि इन सब के आधार पर भेद होता है जिससे अपमान होता है, जो कि हमें सहज स्वीकार्य नहीं है। चूंकि यह हमें सहज स्वीकार्य नहीं है अतः यह हमारे आपसी विरोध का कारण बनता है, जो अंततः आंदोलन, विद्रोह और युद्ध का रूप ले लेता है। क्या आप यह सब देख पा रहे हैं? क्या हम यह देख पा रहे हैं कि दूसरा मेरे जैसा है जबकि हम उपरोक्त तीनों के आधार पर भेद करने का प्रयास करते रहते हैं, जिससे अपमान ही होता है जो कि हमें सहज स्वीकार्य नहीं है?

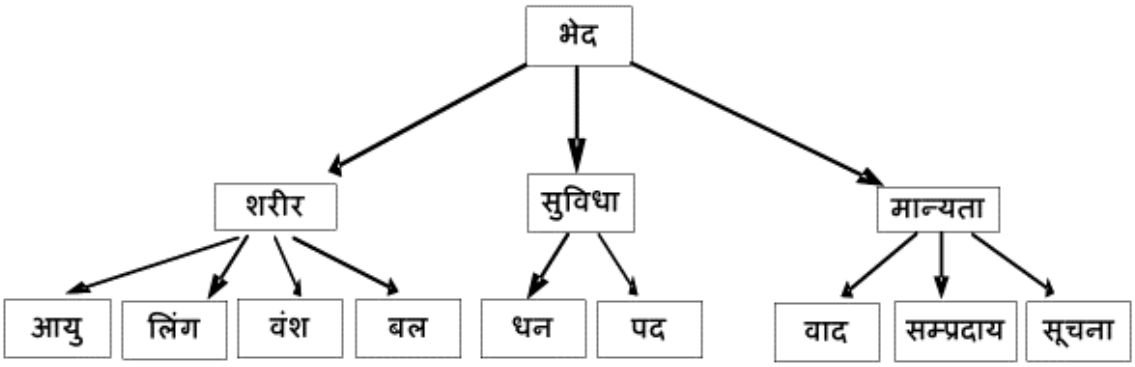

चित्र. 8-8. भेद = अपमान

वास्तव में, समाज में आज हमें जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, उनमें से अधिकांश का मुख्य कारण सम्मान के नाम पर हो रहा अपमान ही है। आज समाज में जितने भी आंदोलन, विद्रोह इत्यादि आप देखते हैं, उनमें से अधिकांशतः सम्मान के मुद्दे से ही जुड़े हुये हैं। सम्मान और अपमान का मुद्दा यदि स्पष्ट न हो, तो यह समाज में अनेकों समस्याओं का कारण बन सकता है, जैसे कि आज नस्ल के आधार पर हो रहा भेद, पूरी दुनिया के लिये बड़ी समस्या बना हुआ है। ऐसे ही यदि आप काले और गोरे में हो रहे भेद को देखें तो यह भी सम्मान और अपमान का ही एक बड़ा मुद्दा है, इस मापदंड के आधार पर गोरे लोग, काले लोगों का अपमान करते हैं, जो कि काले लोगों को स्वीकार नहीं होता है। अतः वे इसके बारे में शिकायत करते हैं, विरोध करते है और कुछ समय बाद यही विरोध एक आंदोलन का रूप ले लेता है और इस कारण एक संघर्ष छिड़ जाता है जो अंततः युद्ध का कारण बन जाता है। अतः समाज में अधिमूल्यन और अवमूल्यन जैसी साधारण दिखने वाली घटनायें कई आंदोलन, विरोध और संघर्ष का कारण बनती हैं जो कि कभी-कभी बड़े युद्ध का रूप भी ले लेती हैं।
यदि हम अपने दैनिक जीने को देखें तो सम्मान के नाम पर हो रहे भेद की सामान्य घटनायें ही अंततः अनेक झगड़ों, अनेक प्रकार की असहमतियों और इस प्रकार की अनेक समस्याओं का कारण बनती हुई दिखती हैं। यदि हम 'मैं' के आधार पर मूल्यांकन कर पाते और इसके आधार पर यह भी देख पाते कि दूसरा मेरे ही जैसा है, तो इस प्रकार की अनेक समस्यायें तो स्वतः ही सुलझ जाती।

सम्मान की संपूर्ण वस्तु - हमारी परस्पर-पूरकता
(Complete Content of Respect – We are Complementary to Each Other)

यदि हम 'मैं' में देखें तो लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता के साथ-साथ हममें योग्यता भी है। योग्यता का अर्थ है कि हमने अपनी क्षमता को कितना क्रियान्वित कर लिया है। ऐसा हो सकता है कि कोई एक व्यक्ति अपनी क्षमता को अधिक क्रियान्वित कर पाया हो, जबकि दूसरा व्यक्ति उसकी तुलना में कम कर पाया हो। अतः योग्यता के अर्थ में हम सभी एक समान ही हो यह आवश्यक नहीं है; योग्यता हम सब की अलग-अलग हो सकती है।

हमारा लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता एक जैसी है यह समझने के बाद हम अपनी योग्यताओं के इस अंतर का उपयोग एक दूसरे के विकास के अर्थ में कर सकते हैं। इस तरह से हम एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। इसलिये अब यह देख सकते हैं कि "दूसरा मेरे जैसा है और हम एक दूसरे के परस्पर-पूरक हैं" यही सम्मान की संपूर्ण विषय-वस्तु है।

हम एक दूसरे के विकास के लिये संयुक्त कार्यक्रम बना कर अपनी इस परस्परपूरकता को परिभाषित कर - सकते हैं और इसका निर्वाहभी कर सकते हैं, जैसे कि यदि मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है और किसी दूसरे व्यक्ति ने उसे समझ लिया है तो मैं वह समझने के लिये दूसरे की मदद ले सकता हूँ। इसी तरह से यदि मैंने कुछ समझ लिया है और दूसरा नहीं समझ पा रहा है तो मैं समझने में उसका सहयोग कर सकता हूँ। इस प्रकार योग्यता ,का यह अंतर आपस में भेद का कारण न बनकर हमारे लिये परस्पर पूरकता-का अवसर बन जाता है।

आइये इस परस्पर-पूरकता को विस्तार से समझते हैं:

- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार और जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो बिना किसी शर्त उसके व्यवहार से आहत हुये बिना, अपनी समझ के आधार पर उसके साथ जिम्मेदारी पूर्वक जीता हूँ और जब दूसरा मेरे जिम्मेदारी पूर्वक जीने से आश्वस्त हो जाता है और मुझसे समझने को तत्पर होता है तब मैं उसका समझने में सहयोग करता हूँ। जब तक दूसरा संबंध में मेरे जीने से आश्वस्त नहीं हो पाता मैं उसे समझाने का प्रयास नहीं करता।

यह देखना सहज है कि हम अपनी बात उन्हीं लोगों से साझा करने या चर्चा करने के इच्छुक होते हैं, जो हमारे प्रति संबंध में आश्वस्त हैं और हम भी उन्हीं लोगों से समझने के लिये तत्पर होते हैं जिन्हें हम अपने से अधिक समझदार और जिम्मेदार स्वीकारे रहते हैं।

यदि हम दूसरे से अधिक समझदार हैं तो हम दूसरे के व्यवहार में होने वाली गलतियों से विचलित हुये बिना ही उनके साथ समझदारी और जिम्मेदारी से जीते हैं। यदि दूसरे में सही-समझ नहीं है तो हमको यह स्पष्टता रहती है कि वह निरंतरता में सही-व्यवहार नहीं कर पायेगा। यदि मैंने दूसरे का सही-मूल्यांकन किया है तो मैं उनके किसी भी प्रकार के दुर्व्यवहार से विचलित नहीं होता बल्कि उनके साथ जिम्मेदारी से व्यवहार कर पाता हूँ। समय के साथ जब दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति आश्वस्त हो पायेगा और मेरे से संबंध महसूस कर पायेगा, तभी वह अपनी बातें साझा करने या उन पर चर्चा करने की लिये तैयार हो पायेगा, इसके बाद ही हम दूसरे का समझने में सहयोग कर सकते हैं।

यदि हमने, सम्मान को इस दृष्टि से समझ लिया है तो इसका आशय यह हुआ कि हमने स्वीकार लिया है कि लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता के आधार पर दूसरा मेरे जैसा ही है, साथ ही साथ हमने अपनी और दूसरे की योग्यता का मूल्यांकन कर परस्पर-पूरकता को भी परिभाषित कर लिया है। यदि वास्तव में हम ऐसा कर पाते हैं तो यही सम्मान है और यदि इनमें से किसी भी बात का उल्लंघन करते हैं तो यही अपमान है।

पर क्या आज कल हम ऐसा कर पाते हैं? या सम्मान के नाम पर हम शरीरगत, सुविधागत या मान्यतागत भेद करते हैं? जिससे अंततः अपमान ही होता है।

सम्मान की संपूर्ण विषय-वस्तु है:

- लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता के अर्थ में दूसरा मेरे जैसा है।
- योग्यता के आधार पर हम एक दूसरे के पूरक हैं।

इस पृष्ठभूमि के साथ आइये अब हम भेद और सम्मान (स्वयं के आधार पर) के बीच अंतर को और स्पष्टता से समझते हैं (चित्र. 8-9. का संदर्भ लीजिये)।

भेद	सम्मान – स्वयं(मैं) के आधार पर
मैं, शरीर, भौतिक सुविधा या मान्यता (पूर्वाग्रह) के आधार पर मूल्यांकन करता हूँ। मैं दूसरे से तुलना, प्रतिस्पर्धा, भेदभाव इत्यादि करता हूँ। ***मैं दूसरों से अलग हूँ।*** *हम प्रतिस्पर्धी हैं।* *मैं इस भेदभाव को बनाये रखने का प्रयास करता हूँ, इसके लिये हेरफेर करता हूँ, दूसरों का शोषण भी करता हूँ।* 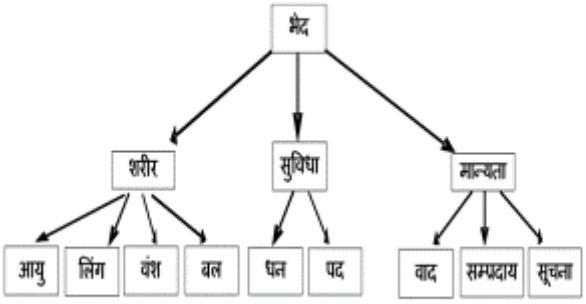 	*1. हमारा लक्ष्य (सहज स्वीकृति) एक जैसा है।* *2. हमारा कार्यक्रम एक जैसा है।* *3. हमारी क्षमता एक जैसी है।* ***दूसरा मेरे जैसा है।*** *हम एक दूसरे के पूरक हैं।* ***यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार है*** *- मैं दूसरे से समझने के लिये तैयार रहता हूँ* ***यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार हूँ*** *1. मैं दूसरे के साथ जिम्मेदारी से जीता हूँ* *2. मैं दूसरे को समझदार जिम्मेदार बनाने के लिये प्रतिबद्ध रहता हूँ (जब दूसरा मुझसे आश्वस्त हो जाता है तब मैं उसका सही समझने में सहयोग करता हूँ)*

चित्र. 8-9. भेद और सम्मान

जब हम सम्मान के नाम पर भेद कर रहे होते हैं अर्थात् शरीर, सुविधा या मान्यता के आधार पर आंकलन कर रहे होते हैं तो वास्तव में हम एक दूसरे से तुलना, प्रतिस्पर्धा या भेद-भाव ही कर रहे होते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे होते हैं कि मैं दूसरों से अलग हूँ, विशेष हूँ इत्यादि। यदि हम सम्मान को सही समझ पाते हैं, तो हमें यह स्पष्ट रहता है कि हमारा लक्ष्य (सहज स्वीकृति), कार्यक्रम और क्षमता एक जैसी है, अर्थात् दूसरा मेरे जैसा ही है। आज अधिकांशतः हम भेद ही कर रहे हैं। जब हम योग्यता में अंतर को उपरोक्त भेद के साथ देखते हैं तो हम एक दूसरे को अपना विरोधी मानने लगते हैं। किन्तु जब हम योग्यता के इस अंतर को 'मैं' के सही मूल्यांकन के आधार पर देखते हैं, तब हम एक दूसरे को परस्पर-पूरकता के अर्थ में स्वीकार पाते हैं।

अतः सामान्य तौर पर हम सम्मान के नाम पर भेद को बढ़ाने एवं दूसरों का शोषण करने का प्रयास ही कर रहे हैं। लेकिन, यदि हम स्वयं के आधार पर सही मूल्यांकन कर पाते हैं, तो दूसरे को समझने में सहयोग करने के रूप में अपनी परस्पर-पूरकता को परिभाषित कर पाते हैं और इस परस्पर-पूरकता के निर्वाह से हमारा परस्पर-विकास हो पाता है एवं हम परस्पर-सुखी भी हो पाते हैं।

चित्र. 8-9. का संदर्भ लीजिये और यह जाँचने का प्रयास कीजिये कि सामान्यतः हम क्या कर रहे हैं, भेद कर रहे हैं या स्वयं के आधार पर सम्मान सुनिश्चित कर रहे हैं?

आज यदि हम समाज में देखें तो पायेंगे कि वर्तमान में अधिकांश प्रयास तो भेद करने वाले या भेदभाव को बल देने वाले या मतभेदों को उभारने वाले ही हो रहे हैं। हम बड़ा आवास बनाने की योजना बनाते हैं, क्योंकि हमारी इच्छा अपने पड़ोसी से अलग दिखने की है। हम विशिष्ट प्रकार की कार खरीदने की इच्छा करते हैं क्योंकि हमें अपने मित्रों में विशेष दिखाना है और यह सब करते हुये हम सोचते तो यही हैं कि इससे हमें सम्मान मिलेगा। वास्तव में सम्मान के भाव को स्वयं में सुनिश्चित करने और परस्परता में साझा करने के बजाय हम भेद कर रहे हैं, जो कि अपमान, ईर्ष्या या विरोध के भाव को उत्पन्न करता है।

उदाहरण के लिये यदि हम विवाह समारोह को ही लें तो एक समय में लोग अपने घरों में ही विवाह उत्सव का आयोजन करके प्रसन्न हुआ करते थे किन्तु वर्तमान में विवाह समारोह के लिये लोग बड़े गेस्ट हाउस, बड़े-बड़े समुद्री जहाजों, हवाई जहाजों या इसी प्रकार के अन्य विशिष्ट स्थानों को चुनने लगे हैं यहाँ तक कि मात्र विवाह समारोह के लिये लोग विदेश भी जाने लगे हैं। ज्यादातर इस प्रकार के आयोजन तो हम भेद बढ़ाने के लिये ही कर रहे हैं। हम विवाह समारोह पर करोड़ों खर्च करते हैं; क्या वास्तव में इतने खर्च कि आवश्यकता है? वास्तव में तो इससे बहुत कम में ही ये समारोह हो सकते हैं, यदि मैं यह देख पाता हूँ कि 'स्वयं' के आधार पर हम सभी एक जैसे हैं और मैं कोई विशेष नहीं हूँ। प्रश्न यह है कि इस धूम-धाम और दिखावे के बाद भी क्या विवाहित जीवन में उभय सुख सुनिश्चित हो पाता है? ध्यान से देखें, तो विवाहित जीवन में उभय सुख के अर्थ में निर्वाह के लिये इस दिखावे की कोई आवश्यकता नहीं है; यह दिखावा तो मात्र अपने को विशेष एवं स्वयं को दूसरों से अलग सिद्ध करने के लिये ही है।

आइये इसके साथ, अब हम सम्मान के भाव के सार को देखते हैं। हमने यह कहा है कि सम्मान का आशय सही मूल्यांकन है। यह सही मूल्यांकन सिर्फ चाहना (सहज स्वीकृति) पर विश्वास होने के आधार पर ही हो पाना संभव है। यदि आप को दूसरे की चाहना (सहज स्वीकृति) पर विश्वास नहीं है तो आप दूसरे का सम्मान नहीं कर सकते, यहाँ तक कि इसके बारे में सोच भी नहीं सकते। अधिमूल्यन, अवमूल्यन और अमूल्यन तो अपमान है ही, भेद करना भी अपमान ही है। स्वयं के आधार पर सम्मान से आशय यह है कि दूसरा मेरे जैसा है क्योंकि मेरा और उसका लक्ष्य, कार्यक्रम एवं क्षमता एक ही जैसी है। जहाँ तक हमारी योग्यता में अंतर का प्रश्न है, वह परस्पर-पूरकता के अर्थ में है, अर्थात् एक दूसरे के विकास में सहयोग करने के लिये है न कि भेद के अर्थ में। अतः अंतर सिर्फ हमारी योग्यता का हैं और योग्यता का आशय है कि हमने व्यवस्था को कितना समझ लिया है, अर्थात् हमारी इच्छा, विचार और आशा का कितना भाग हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप है। हमने शुरुआत में ही चर्चा की थी कि यदि हमारी इच्छा, विचार और आशा हमारी सहज स्वीकृति के अनुरूप होते हैं तो हमारे 'स्वयं' में संगीत होता है और हम सुख की स्थिति में रहते हैं। इसलिये हमारे पास यह अवसर है, कि हम अपनी इच्छा, विचार एवं आशा को अपनी चाहना अर्थात् अपनी सहज स्वीकृति के अनुरूप करके अपनी योग्यता को विकसित कर सकें। योग्यता का मूलतः यही आशय है।

मेरी तरफ से संबंध में किया गया सही निर्वाह मेरे लिये भी स्वयं में व्यवस्था को सुनिश्चित करता है। यदि मैं संबंध को देख पाता हूँ, समझ पाता हूँ, स्वीकार कर पाता हूँ एवं इसका निर्वाह कर पाता हूँ तो इससे मैं सुखी होता हूँ क्योंकि मुझे संबंध पूर्वक जीना ही सहज स्वीकार्य है। इस प्रक्रिया में, यदि मैं यह देखता हूँ कि दूसरा मुझसे अधिक समझदार है क्योंकि वह मुझसे अधिक जिम्मेदार है तो मैं दूसरे से समझने के लिये तत्पर होता हूँ; यही परस्पर-पूरकता है। यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार हूँ, अर्थात् मैं अधिक जिम्मेदारी स्वीकार करने की योग्यता रखता हूँ, तो मैं दूसरे के व्यवहार में होने वाली गलतियों से विचलित नहीं होता और बिना किसी शर्त के ही अपनी तरफ से संबंध का निर्वाह कर पाता हूँ। जब दूसरा मुझसे संबंध में आश्वस्त हो जाता है तब ही मैं दूसरे की समझ को बढ़ाने के अर्थ में आवश्यक चर्चा शुरू करता हूँ।

स्नेह

(Affection)

दूसरे को संबंधी स्वीकार पाने का भाव 'स्नेह' है।

Affection is the feeling of being related to the other.

जब मैं यह देख पाता हूँ, कि दूसरे की सहज स्वीकृति भी मेरे सुख और समृद्धि के अर्थ में ही है तब मैं दूसरे के प्रति आश्वस्त हो पाता हूँ। इस आश्वस्ति के भाव (चाहना पर विश्वास) के साथ जब मैं अपनी और दूसरे की योग्यता का ठीक-ठीक आंकलन (सम्मान) कर पाता हूँ, तब मैं उसके साथ अपनी परस्पर-पूरकता को ठीक से परिभाषित कर पाता हूँ और इस प्रकार से मैं दूसरे को अपना संबंधी स्वीकार पाता हूँ।

दूसरे को संबंधी स्वीकारने का यही भाव स्नेह है। सामान्यतः माता-पिता में अपने बच्चों के लिये स्नेह का भाव होता ही है। माता-पिता अपने बच्चों के साथ बहुत ही सहज रूप से संबंध देख पाते हैं, उनके साथ संबद्धता महसूस कर पाते हैं। इसी प्रकार बच्चे भी अपने माता-पिता के साथ संबंध देख पाते हैं। इस स्नेह के भाव को

मित्रों, भाई-बहन, अध्यापक-छात्र, पति-पत्नी और दूसरे अन्य संबंधों में भी देखा जा सकता है। स्नेह का यह भाव हमें सहज स्वीकार्य है और प्रत्येक संबंध में अपेक्षित भी है। किसी भी संबंध के निर्वाह के लिये स्नेह का भाव आवश्यक है। विशेषकर बच्चों के विकास के लिये तो यह अनिवार्य है। जब बच्चा अपने माता-पिता में स्नेह का भाव देख पाता है तो स्वयं के विकास के शुरुआती दौर में वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करता है। वहीं माता-पिता भी अपनी व्यस्त दिनचर्या होने के बावजूद, अपने बच्चों की देखभाल करते हैं और इस प्रक्रिया में सुखी और तृप्ति महसूस करते हैं। यहाँ पर महत्वपूर्ण बात यह है कि स्नेह का यह भाव निरंतरता में तभी हो सकता है, जब इसके आधार में विश्वास और सम्मान का भाव सुनिश्चित हो गया हो। यदि ये प्रथम दो भाव स्वयं में न हों, तो स्नेह के भाव में निरंतरता नहीं हो सकती।

स्नेह के भाव के अभाव को विरोध या ईर्ष्या के रूप में देखा जा सकता है। यदि संबंध में स्नेह के भाव की कमी या अभाव होता है, तो इसी को हम विरोध के भाव के रूप में महसूस करते हैं जो दूसरे को ईर्ष्या के भाव के रूप के में दिखता है। इसे बहुत कम उम्र के भाई-बहनों के बीच भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि एक भाई में अपनी छोटी बहन के प्रति स्नेह के भाव का अभाव होता है, तो वह ये स्वीकार नहीं कर पाता कि उसके माता-पिता बहन पर अधिक ध्यान दें; जब भी माता पिता उसकी बहन पर अधिक ध्यान देने का प्रयास करते हैं, तो वह असहज हो जाता है और माता-पिता का पूरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के प्रयास करने में लग जाता है। इस प्रक्रिया में भाई को अपनी ही बहन के प्रति ईर्ष्या का भाव आ जाता है और वह हर बात में अपनी बहन को अपने प्रतिद्वंदी के रूप में देखने लगता है।

स्नेह के भाव के लिये, चाहना पर विश्वास और सही मूल्यांकन आधारित सम्मान के भाव की समझ होना आवश्यक है। यदि हम इन भावों को समझने के बजाय, सिर्फ मान लेते हैं तो कभी-कभी इन भावों का स्वयं में ही अभाव हो जाता है, जिससे संबंधों के निर्वाह में समस्या आने लगती है।

अतः, स्नेह का भाव, विश्वास और सम्मान के भाव का सहज परिणाम है। स्नेह का भाव होने से व्यक्ति में परस्पर-पूरकता के निर्वाह के लिये जिम्मेदारी एवं निष्ठा आती है। क्या आप यह देख पा रहे हैं?

संबंध की स्वीकृति, भावों की समझ पर आधारित है न कि दूसरे से होने वाली अपेक्षाओं पर आधारित है। अतः सही समझ के साथ ही माता-पिता में अपने बच्चों के लिये निरंतरता में स्नेह का भाव हो पाता है। इसी प्रकार से दो व्यक्तियों में जैसे पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माँ-बेटा, भाई-बहन, छात्र-अध्यापक इत्यादि के बीच भी बिना किसी शर्त स्नेह के भाव की निरंतरता हो पाती है। स्नेह का यह भाव दूसरे की योग्यता में होने वाली कमी से कभी भी प्रभावित नहीं होगा, यदि यह सही समझ पर आधारित है और सामान्यतः यही आशा भी की जाती है कि दूसरे से स्नेह का यह भाव सदैव मिलता रहे।

अब आप यह देख सकते हैं कि दूसरा भी ऐसा तभी कर पायेगा, जब उसमें भी स्नेह का भाव होगा अन्यथा नहीं। दूसरे के अंदर यह भाव तभी होगा जब उसमें भी इन भावों की सही-समझ होगी।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, आप देखेंगे कि हम मूलतः सहज स्वीकार्य भावों के बारे में ही बात कर रहे हैं और वे भाव जो हमें सहज स्वीकार्य नहीं हैं, उनके बारे में बहुत कम बात कर रहें हैं। ये नकारात्मक भाव वास्तव में सहज स्वीकार्य भावों का अभाव हैं न कि कोई नये भाव। जैसे विरोध एवं ईर्ष्या, स्नेह के भाव के अभाव का सूचक है। जब हम सहज स्वीकार्य भावों को समझ लेते हैं, तो हममें ये सही-भाव सुनिश्चित हो पाते हैं और इनके अभाव वाले नकारात्मक भाव स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं।

अतः, दूसरे को संबंधी स्वीकार पाने का यह भाव ही 'स्नेह' है। स्नेह के भाव के साथ आप सहज रूप में दूसरे के 'मैं' और 'शरीर' दोनों के परस्पर विकास की जिम्मेदारी स्वीकार पाते हैं।

सम्मान और स्नेह से संबंधित मुख्य बिंदु
(Salient Points regarding Respect and Affection)

- सम्मान का आशय, सही मूल्यांकन है (स्वयं के आधार पर लक्ष्य, कार्यक्रम, क्षमता एवं योग्यता का)। हम लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता में एक जैसे हैं एवं योग्यता के स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं। मैं अपनी इस परस्पर पूरकता को, निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर पाता हूँ:

- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार, जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ और अपनी तरफ से इसी अर्थ में प्रयास करता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो

- मैं दूसरे के साथ बिना किसी शर्त उसके व्यवहार में होने वाली गलतियों से विचलित हुये बिना ही, उसके साथ जिम्मेदारी से जीता हूँ। जिससे दूसरा मेरे साथ संबंध में सहज हो पाता है और समझने को तत्पर हो पाता है। कई बार इसमें लम्बा समय भी लग सकता है।

- मैं दूसरे को समझने में सहायता करने के लिये प्रतिबद्ध हूँ (जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो जाता है तभी समझाने में सहयोग करता हूँ न कि इससे पहले)। संवाद केवल तभी संभव है, जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो और मुझे सुनने के लिये तैयार हो।

- अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन अपमान है और शरीरगत (आयु, लिंग, वंश, शारीरिक बल), सुविधागत (धन, पद) और मान्यतागत (वाद, संप्रदाय, सूचना) भेद भी अपमान है। अपमान की छोटी-छोटी घटनाओं के परिणाम बहुत दीर्घकालिक हो सकते हैं, जैसे एक दूसरे से बात न करने से शुरू होकर विरोध, संघर्ष, संबंध-विच्छेद, तलाक, और यहाँ तक की युद्ध के कारण भी बन सकते हैं।

- जब मैं 'मैं' की केन्द्रीय भूमिका को देख पाता हूँ, तो अपने साथ-साथ दूसरे का भी मूल्यांकन 'स्वयं' के आधार पर ही करता हूँ, न कि शरीर, सुविधा या मान्यता के आधार पर।

- स्नेह, दूसरे के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव है। यदि किसी व्यक्ति में दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव है तो सहज रूप से ही उस व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव भी होता ही है। ईर्ष्या या विरोध का भाव मूलतः स्नेह के भाव का अभाव है। स्नेह का भाव संबंधों में परस्पर निर्वाह के अर्थ में जिम्मेदारी और निष्ठा के रूप में व्यक्त होता है।

आगे की कक्षा में:
इस अध्याय में हमने विश्वास, सम्मान और स्नेह, इन तीन भावों का अध्ययन किया। यह दिखा कि विश्वास का भाव हर सम्बन्ध का आधार है। विश्वास के भाव के साथ हम दूसरे का सही आंकलन कर पाते हैं तथा सम्बन्ध को स्वीकार पाते हैं। कक्षा १० में हम सम्बन्ध के अन्य मूल्यों का अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि प्रेम का भाव कैसे पूर्ण मूल्य है|

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न

(Questions for Self-Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'सम्मान का अर्थ, सही मूल्यांकन है (स्वयं के आधार पर)', सम्मान के भाव को लेकर कुछ प्रचलित मान्यताओं की सूची बनायें एवं इन मान्यताओं के साथ-साथ प्रस्तावित सम्मान की परिभाषा का परीक्षण भी करें।

2. सम्मान की न्यूनतम विषय-वस्तु, दूसरे व्यक्ति को अपने जैसा स्वीकार पाना है। दूसरा व्यक्ति किस आधार पर मेरे जैसा है? सम्मान की संपूर्ण-विषय वस्तु क्या है? इन्हें स्पष्ट कीजिये।
3. अधिमूल्यन, अवमूल्यन और अमूल्यन का एक-एक उदाहरण दें। ये आंकलन अपमान का कारण क्यों हैं? इन गलत आंकलनों के कारण हमें किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?
4. हम शरीर, सुविधा या मान्यता के आधार पर संबंधों में किस प्रकार से भेद करते हैं? इस भेद के कारण हमें किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है?
5. सम्मान को सुनिश्चित करने के लिये, 'मैं' को समझना क्यों आवश्यक है? इसकी व्याख्या करें।
6. सम्मान का भाव दूसरे के साथ परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करने में किस प्रकार से सहायक है, और सम्मान के भाव की अभिव्यक्ति क्या है?
7. स्नेह को परिभाषित कीजिये। स्नेह परिवार में व्यवस्था को कैसे सुनिश्चित करता है?

अनुभाग 2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self-exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत स्तर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. अपने पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रों के साथ पिछले एक सप्ताह में हुई बातचीत में से किन्हीं दस बातों की सूची बनायें। अब इस बातचीत का विश्लेषण कीजिये।
    a. क्या आपकी तरफ से दूसरे का अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन हुआ था या सही मूल्यांकन? प्रत्येक बातचीत में क्या आप स्वयं में सहज थे, असहज थे या अपनी स्थिति से ही अनभिज्ञ थे?
    b. क्या उन्होंने आपका अधिमूल्यन, अवमूल्यन, अमूल्यन किया या सही-मूल्यांकन किया? बातचीत में क्या आप स्वयं में सहज थे या असहज थे या अपनी स्थिति से ही अनभिज्ञ थे?
2. चित्र. 8-9. का अध्ययन कीजिये ('स्वयं' के आधार पर सम्मान और भेद से संबंधित चार्ट)। इसमें आपका अधिकतर प्रयास कहाँ पर लग रहा है? और अब आप अपने अधिकतर प्रयास कहाँ लगाना चाहते हैं? इसके लिये आप की तरफ से किन-किन प्रयासों की आवश्यकता है?

अध्याय 9: समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना

Harmony in the Society-Understanding Universal Human Order

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
☞ **समाज में व्यवस्था**	**अध्याय 9**
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

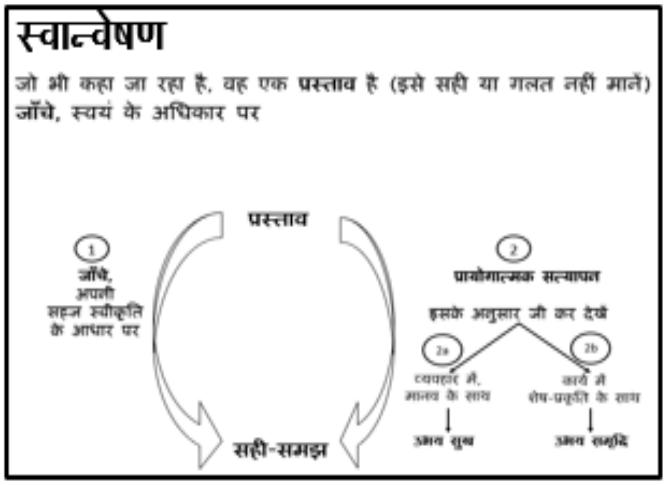

- समाज एक साथ जीने वाले परिवारों का समूह है, जिनके लक्ष्यएक समान (मानव लक्ष्य) होते हैं। व्यवस्थित समाज का आधार परिवार में व्यवस्था है जिसका आधार मानव में व्यवस्था है। ,
- समाज में रहने वाले मानव के लक्ष्य हैं:

1. प्रत्येक व्यक्ति सही भाव, सही समझ और सुख ।
2. प्रत्येक परिवार में समृद्धि ।
3. समाज में अभय (विश्वास)।
4. प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर पूरकता)।

जिससे इन लक्ष्यों की पूर्ति होती है , वह सही वरीयता क्रम 1 से 4 है। बिना सही समझ और सही भाव के सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव नहीं है, अत: समृद्धि से पूर्व सहीसमझ और- सही-भाव होना आवश्यक है। इसी प्रकार से संबंधों की स्वीकार्यता और प्रत्येक परिवार में समृद्धि के साथ ही अभय हो पाता है। चौथे लक्ष्य की पूर्ति तो इन पहले तीनों लक्ष्यों की पूर्ति के परिणाम स्वरूप एक सहज प्रतिफल के रूप में होती है।

- चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ये पाँच व्यवस्थायें या आयाम आवश्यक हैं*:*
    1. शिक्षा-संस्कार
    2. स्वास्थ्य-संयम
    3. उत्पादन-कार्य
    4. न्याय-सुरक्षा
    5. विनिमय-कोष

- यदि परिवार में इन लक्ष्यों के लिये प्रयास हो तो परिवार में व्यवस्था होती है। दूसरे शब्दों में यही परिवार व्यवस्था है। समाज परस्पर पूरकता के संबंध के आधार पर एक साथ रहने वाले कई परिवारों का समूह है। समाज में व्यवस्था का क्षेत्र परिवार व्यवस्था से प्रारंभ होता है और यह विश्व परिवार व्यवस्था तक निश्चित चरणों के माध्यम से पहुंचता है। जैसे कि परिवार व्यवस्था से परिवार समूह व्यवस्था और इसी तरह राष्ट्र परिवार व्यवस्था और अंततः विश्व परिवार व्यवस्था। व्यवस्था का यह प्रसार, परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक सार्वभौम ,मानवीय व्यवस्था कहलाता है।

आगे की कक्षा में

कक्षा 10 में हम विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगें कि मानव जीवन के चार लक्ष्य हैं। इन चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक पाँच व्यवस्थाओं या आयाम एवं सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के बारे में यहाँ चर्चा की गयी है। कक्षा 10 में हम मानव के लक्ष्य और इनकी पूर्ति के आयाम का विस्तार से अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि ये आयाम मानव लक्ष्यों को कैसे पूरा कर सकते हैं।

अध्याय 10-11: परिचय - प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था

प्रकृति में व्यवस्था – अंतर्संबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता को समझना

Harmony in Nature – Understanding the Interconnectedness, Self – Regulation and Mutual Fulfilment

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ **प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था**	**अध्याय 10-11**

समझने की प्रक्रिया

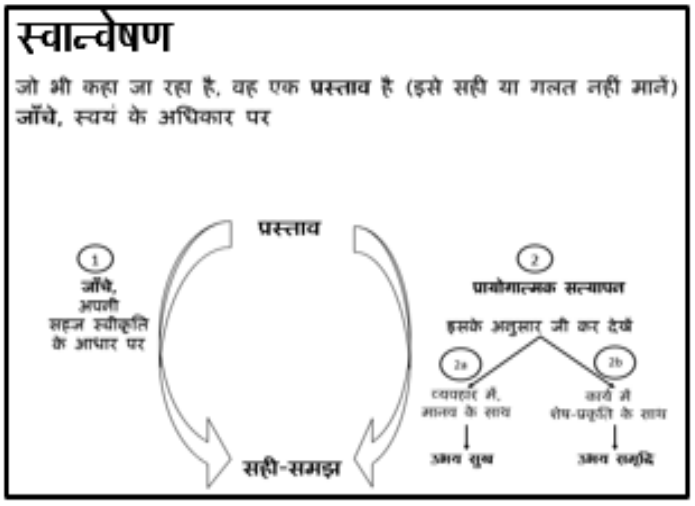

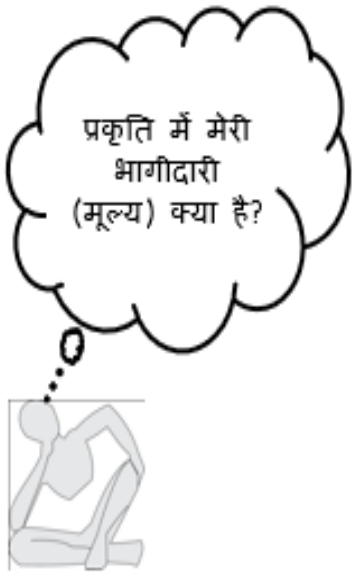

आगे की कक्षा में :

इससे पहले के अध्यायों में हम यह देख चुके हैं कि मानव की मूल चाहना- सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता है। हमने अपनी सहज स्वीकृति का अध्ययन किया और यह भी समझा कि सुख का अर्थ स्वयं में व्यवस्था है। इसलिये सुख की निरंतरता अर्थात् व्यवस्था की निरंतरता को सुनिश्चित करने के लिये हमें न केवल स्वयं में

व्यवस्था को समझना होगा, बल्कि अपने जीने के सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था को भी समझना होगा।
आगे की कक्षाओं में हम इसका विस्तार से अध्ययन करेंगे। प्रकृति की सभी अवस्थाओं के बीच अंर्तसम्बन्ध और परस्पर-पूरकता को समझने का प्रयास करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि प्रकृति में स्व-नियंत्रण है। व्यवस्था, प्रकृति की संरचना में ही अंतर्निहित है । मानव के अलावा प्रकृति में अन्य सभी अवस्थाओं का आचरण निश्चित है। मानव को शेष प्रकृति के साथ भागीदारी करते हुये; इनका सदुपयोग, संरक्षण एवं संवर्धन को सुनिश्चित करना है।

अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना
Harmony in Existence – Understanding Coexistence at Various Levels

आगे की कक्षा में:

प्रकृति में व्यवस्था' के बारे में चर्चा करते समय, हम यह पातें है कि प्रकृति में चार अवस्थायें हैं: पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था, जीव-अवस्था और ज्ञान-अवस्था। पहली तीन अवस्थायें व्यवस्था में हैं और एक दूसरे के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह कर रही हैं। मानव को अभी भी व्यवस्था और व्यवस्था में जीने को समझना है, तभी संपूर्ण प्रकृति व्यवस्था में हो पायेगी।
आगे की कक्षाओं में हम अस्तित्व में व्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे; और अस्तित्व में व्यवस्था (सह-अस्तित्व) को समझने के आधार पर विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को देखने का प्रयास करेंगे। हम यह भी अध्ययन करेंगे कि अस्तित्व शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में है। इकाइयाँ दो प्रकार की हैं - जड़ इकाइयाँ और चैतन्य इकाइयाँ। इकाइयाँ शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं । अस्तित्व में मानव की भागीदारी, सह-अस्तित्व को अनुभव करना और सह-अस्तित्व में जीना है। आगे की कक्षाओं में हम, विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझने का प्रयास करेंगे।

अनुच्छेद 6.1
चरण 1 की सामान्य समस्याएँ:

ध्यान का बाहर की ओर जाना

हम जिसे महत्वपूर्ण मानते हैं, हम उस पर ही ध्यान देते हैं।
जब तक बाहर की चीजों (सुविधा, शरीर, संवेदना) को हम ज्यादा महत्वपूर्ण माने रहते हैं, तब तक हम बाहर की तरफ ही ध्यान देते हैं।
इस क्षण आपका ध्यान जहाँ भी है, उसे देखते रहें
भले ही वो बाहर ही क्यों ना हो
यह निर्णय बनाए रखें कि मुझे अपनी कल्पनाशीलता को देखना है|
जब भी आपका ध्यान आपकी कल्पनाशीलता की ओर लौटे, उसे देखते रहें...
जब आप यह देख पाते हैं कि आप महत्वपूर्ण हैं, आपकी कल्पनाशीलता महत्वपूर्ण है, आपका भाव, विचार महत्वपूर्ण है, तब आपका ध्यान आपकी कल्पनाशीलता की ओर जाएगा, आपके भाव की तरफ जाएगा।

चरण 1 की सामान्य समस्याएँ: शरीर के माध्यम से देखना

मैं सीधे-सीधे मैं (चैतन्य) को देख रहा हूँ, मैं की कल्पनाशीलता को देख रहा हूँ (संवेदना के माध्यम से नहीं)
हम बाहर की चीजों को पाँचों संवेदना (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के माध्यम से देखने के अभ्यस्त हैं, इसीलिए हम मैं (चैतन्य) को भी इन संवेदनाओं के माध्यम से ही देखने का प्रयास करते हैं। हम मैं (चैतन्य) के आकार, रूप, रंग आदि को देखने की कोशिश करते हैं! (हम जिसे महत्वपूर्ण मानते हैं, हम उस पर ही ध्यान देते हैं)
(इसे भी देखते रहें – कि आप मैं (चैतन्य) के आकार, रूप, रंग आदि को देखने का प्रयास कर रहे हैं)
हमें सीधे-सीधे अपनी कल्पनाशीलता को देखना है, इसका निर्णय बनाए रखें।
जब भी आपका ध्यान आपकी कल्पनाशीलता की ओर लौटे, उसे देखते रहें...

चरण 1 की सामान्य समस्याएँ: भाव स्पष्ट नहीं हैं

अगर आप अपने भाव को देख नहीं पा रहे हैं,
परन्तु, आप अपने विचार को देख सकते हैं
तो, विचार को देखने का काम करें-
विचार के आधार पर आप अपने भाव का निष्कर्ष निकाल सकते हैं
जैसे कि प्रतिस्पर्धा का विचार →विरोध का भाव
पोषण का विचार → स्नेह का भाव, ममता का भाव
अंततः सीधा-सीधा भाव को देखने का काम करना है |

चरण 1 में निरीक्षण की प्रस्तुति और प्रश्न

- ऐसा लगता है कि मेरी कल्पनाशीलता केवल कभी कभी चलती है, हमेशा नहीं

इसे जांचते रहें कि आपकी कल्पनाशीलता केवल कभी कभी चलती है या ये चलती तो हमेशा है, लेकिन आप इसे केवल कभी कभी देख पाते हैं।

- जब मैं अपनी कल्पनाशीलता को देखने का प्रयास करता हूँ तो सिर में दर्द होने लगता है या नींद आने लगती है। ऐसा क्यों ?

अपनी कल्पनाशीलता को यदि आप दबाव पूर्वक देखने का प्रयास करते हैं, तो आपको भारीपन महसूस हो सकता है, क्योंकि मूलतः आप प्रतिक्रिया कर रहे हैं।
यदि आपके सिर में दर्द हो रहा है, तो इसका कारण यह हो सकता है कि आप अपने पुराने अभ्यासवश, आँखों से कल्पनाशीलता को देखने का प्रयास कर रहे हों और देखने के लिए अपनी आँखों को पर जोर लगा रहे हों कर रहे हों, इसी कारण आपके सिर में दर्द हो रहा हो।
दूसरी तरफ यदि आपको अपनी कल्पनाशीलता महत्त्वपूर्ण नहीं लग रही है, उसमें आपको सुख नहीं मिल रहा है, तो यह संभावना है कि आपका ध्यान हट जाए और आपको नींद आ जाए
आप क्या कर सकते हैं -

1. सजग रहते हुए अपनी कल्पनाशीलता को देखते रहने का निर्णय लें
2. बस देखते रहें, दबाव ना डालें, यदि ध्यान भटक भी जाए तब भी कोई प्रतिक्रिया ना करें
3. आँखों से कल्पनाशीलता को देखने का प्रयास ना करें

4. हर क्षण सजग रहें, और यदि आपकी सजगता खो भी जाती है, तो जैसे ही ध्यान लौटे, बिना किसी प्रतिक्रिया के दुबारा सजग हो जाएं और कल्पनाशीलता को देखते रहें

- जब आप कहते हैं कि कल्पनाशीलता कहीं और चली गयी है, तो ये कहाँ जाती है ? आपने कहा कि कल्पनाशीलता हमेशा चलती रहती है तो फिर इसके वापस आने का क्या अर्थ हुआ? कहाँ से वापस आई ?

आपके अन्दर दो अलग प्रकार की चीजें चल रही हैं

1. कल्पनाशीलता जो कि निरंतर चल रही है (ब्लॉक B2 में)
2. इस कल्पनाशीलता को देखने का काम (ब्लॉक B1 से)

जब आप अपनी कल्पनाशीलता को देखना (B1 से) बंद कर देते हैं, (आप अपनी सजगता खो देते हैं), उस समय आपको लगता है कि आपकी कल्पनाशीलता चल ही नहीं रही है|
उदाहरणार्थ, आपकी कल्पनाशीलता इच्छा, विचार की नदी के जैसी है।
जब आप इस कल्पनाशीलता को इस प्रकार देखते हैं मानो आप नदी के किनारे पर खड़े हों, तब आप इसे साफ़ साफ़ देख पाते हैं (B1 के द्वारा) लेकिन जब आप नदी में कूद जाते हैं (कल्पनाशीलता के साथ बहने लगते हैं) तब आप इसे ठीक ठीक नहीं देख पाते; कभी कभी तो बिलकुल ही नहीं देख पाते ।

- कई बार जब मैं अपनी कल्पनाशीलता को देखने का प्रयास करता हूँ तो, तब मैं इसे थोड़ी देर देख पाता हूँ, उसके बाद ऐसा लगता है कि कल्पनाशीलता में कुछ भी नहीं चल रहा|

जैसा कि पहले भी चर्चा हुई, कल्पनाशीलता ब्लॉक B2 में चलती है जबकि उसको देखने का काम ब्लॉक B1 से होता है। यदि ब्लॉक B1 पूरी तरह से क्रियाशील नहीं है और आप B1 में निरीक्षण के बिना ही विचार चला रहे हैं, तब ऐसा लग सकता है कि कल्पनाशीलता में कुछ चल ही नहीं रहा है। एक संभावना यह है।
दूसरी संभावना यह है कि जब आप अपनी कल्पनाशीलता को देख रहे हैं, और आपको कुछ ऐसा दिखता है जो कि आपके लिए काफी असहज करने वाला है तो आप बिना सजगता के ही उसे रोक देते हैं, और उस क्षण के लिए आप अस्पष्ट हो सकते हैं। अगले क्षण फिर कल्पनाशीलता का काम शुरू हो जायगा |
लेकिन अभी तो, आप बस अपनी कल्पनाशीलता को देखते रहिये... बिना किसी मूल्यांकन के, बिना उसे रोके या बदले, बिना किसी प्रतिक्रिया के...

शब्दकोष

शब्द (वास्तविकता की ओर संकेत)	**अर्थ** (वास्तविकता का संक्षिप्त विवरण)
क्रिया	समय के साथ किसी इकाई में होने वाला परिवर्तन। 1) इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और क्रियाशील हैं (अपने स्वभाव के अनुसार दूसरी इकाइयों के साथ संबंध का निर्वाह कर रही हैं)। 2) क्रियायें- भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और चैतन्य क्रिया के रूप में हो सकती हैं।
क्रियापूर्णता	'मैं' की वह स्थिति, जिसमें 'मैं' अपनी सारी क्रियाओं में जागृत होता है।
पशु-चेतना	वह व्यक्ति जो अपने आप को सिर्फ शरीर मानकर, अपनी सभी आवश्यकताओं को केवल सुविधाओं से ही पूरा करने का प्रयास करता है (वह स्वयं में सही समझ और संबंधों में सही भाव के लिये प्रयास नहीं करता)।
मानना	स्वयं और दूसरों के प्रति स्वीकृति। इसकी दो संभावनायें हैं: • जानना के आधार पर मानना- स्वीकृति निश्चित होती है। मैं मानव हूँ; दूसरा भी मेरे जैसा ही है; और मैं संबंध में परस्पर पूरकता के निर्वाह का भाव रखता हूँ। • जानना के बिना मानना – स्वीकृतियाँ, मान्यताओं और संवेदनाओं पर आधारित होती हैं, जिनमें अनिश्चितता रहती है; संबंधों में भाव शर्त

	आधारित होते हैं।
व्यवहार	एक मानव की दूसरे मानव के साथ परस्परता। यह परस्परता मुख्यतः भावों के आदान-प्रदान के रूप में होती है।
शरीर	'स्वयं' (चैतन्य-इकाई) के सह-अस्तित्व में एक जड़-इकाई।
चरित्र	मानव द्वारा किया गया व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी।
सह-अस्तित्व	शून्य के संपृक्तता में परस्पर जुड़ी हुई, अंतर्संबंधित इकाइयां।
आचरण	मानव का संपूर्ण जीना; मानव का अपनी समझ और विचार के साथ व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी।
आचरण-पूर्णता	मानव का ऐसा आचरण जिसमें 'मैं' अपनी सभी क्रियाओं (चिंतन बोध और अनुभव सहित) में जागृति पूर्वक व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी करता हो।
चैतन्यता	इकाइयाँ जिनमें जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह-करने की क्रियायें हैं। वर्तमान में मानव में मानने की क्रिया तो जागृत है किन्तु जानने की क्रिया जागृत हो भी सकती है और नहीं भी।
चेतना विकास	स्व-विकास ('स्वयं' का विकास); जानने के बिना सिर्फ मानने के आधार पर जीने के बजाय जानने और मानने के आधार पर जीने की उच्च क्षमता को जागृत करना। इसी को पशु-चेतना से मानव-चेतना में संक्रमण के रूप में भी देखा जाता है।
चक्रीय और परस्पर संवर्धन	एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमें भाग लेने वाली सभी इकाइयाँ एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होती रहती हैं; और इस प्रक्रिया में भाग लेने वाली सभी इकाइयों का संवर्धन भी होता रहता है।
निश्चित मानवीय आचरण	मानवीय-चेतना पर आधारित आचरण। ऐसे आचरण में मानव का व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ के आधार पर होती है; प्रत्येक मानव में इसके लिये सहज स्वीकृति भी है।
दासता	यह निम्न में से किसी भी प्रकार की हो सकती है: a. शारीरिक विवशता के रूप में b. स्वयं में ऐसी अपेक्षाओं के रूप में जो कि व्यवस्था के अर्थ में नहीं हैं c. विरोधाभासी विचारों के रूप में d. स्वयं में ऐसी इच्छाओं के रूप में जो कि सह-अस्तित्व के अनुरूप नहीं हैं
परतंत्रता	दूसरे के द्वारा निर्देशित होना अथवा अपनी अंतर्विरोधी आशा, विचार या इच्छा के द्वारा निर्देशित होना
नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति (व्यवहार, कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) के मूलभूत नियम/सिद्धांत ही नैतिकता है।
नैतिक	नैतिकता के अनुरूप (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक आचरण	नैतिकता के अनुरूप आचरण (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक मानवीय आचरण	सही समझ, सही भाव के साथ बड़ी व्यवस्था (बाहरी संसार) में मानव की भागीदारी - जो कि नैतिकता (ऊपर परिभाषित) के अनुरूप हो।
अस्तित्व	जो कुछ भी है / जो कुछ भी होना है।
प्रयोगात्मक-सत्यापन	जीने में सत्यापन - मानव के `साथ व्यवहार में और शेष प्रकृति के साथ कार्य में।
परिवार	एक दूसरे के लिये स्वीकृति का भाव रखने वाले व्यक्तियों का समूह, जो कि परस्पर पूरकता के अर्थ में जीते हों।
अभय	परस्परता में विश्वास और परस्पर पूरकता।

निर्वाह	जो इकाई की निश्चित आवश्यकता को पूरा कर रहा हो।
सुख	व्यवस्था में होना।
संगीत	व्यवस्था, सामंजस्य
स्वास्थ्य	(1) 'शरीर', 'मैं' के अनुसार कार्य करता है। (2) 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी हुई है।
मानव	'मैं' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व।
मानव चेतना	मानव, जो अपने आप को 'मैं' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझता हो; जो 'मैं' की आवश्यकताओं को सही समझ एवं सही भाव से तथा 'शरीर' की आवश्यकताओं को सुविधाओं से पूरा करता हो। जो धीरता पूर्वक संबंधों में न्याय, व्यवस्था और सह-अस्तित्व (परस्पर पूरकता) का निर्वाह करता हो।
मानव लक्ष्य	सही समझ और सही भाव (सुख), समृद्धि, अभय (विश्वास), और सह-अस्तित्व (परस्पर पूरकता)।
मानवीय मूल्य	अस्तित्व के सभी स्तरों पर मानव की स्वाभाविक भागीदारी- धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा।
मानवीय आचरण	मानव का अपने स्वभाव के अनुसार आचरण।
मानवीय समाज	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव-लक्ष्य की पूर्ति हो पाये।
मानवीय परंपरा	1. पीढ़ी दर पीढ़ी समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के साथ जीने वाले लोगों का समूह। 2. मानवीय आचरण, शिक्षा, संविधान और सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था, और इनकी निरंतरता।
प्रकृति सहज धारणा	इकाई के होने की प्रकृति सहज व्यवस्था जो कि इकाई से अविभाज्य है।
अंतर्संयोजनात्मकता	साथ-साथ होना और एक दूसरे से संबंधित होना।
परस्पर-निर्भरता	परस्परता में एक-दूसरे से जुड़े होना और एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
जानना	वास्तविकता जैसी है उसे सीधे-सीधे वैसा ही देखना, उसकी संपूर्णता में देखना।
ज्ञान	1. वास्तविकता की सही समझ। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा ही देखना, उसे संपूर्णता में देखना। 2. स्वयं का ज्ञान, अस्तित्व का ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का ज्ञान।
बड़ी व्यवस्था	इकाई जिस व्यवस्था का भाग है, वह व्यवस्था उस इकाई की बड़ी व्यवस्था है।
जड़	इकाइयाँ जिनमें सिर्फ पहचानना और निर्वाह-करना होता है (जिनमें जानने या मानने की क्रिया नहीं होती है)। जिनकी आवश्यकतायें और क्रियायें सामयिक हैं।
परस्पर	साथ-साथ, एक दूसरे के साथ।
परस्पर पूरकता	एक इकाई का दूसरी इकाई के साथ संबंध में रहते हुये, एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
सहज स्वीकृति	स्वीकृति का सहज भाव, जो कि संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में हो।
स्वभाव	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी।
प्रकृति	इकाइयों (जड़ और चैतन्य) का समूह।
भागीदारी	व्यवहार, कार्य या दूसरी इकाई के साथ किसी अन्य रूप में निर्वाह।
मान्यता	मानना जो कि अभी स्व-सत्यापित नहीं हुआ है। मानना सही भी हो सकता है

	और नहीं भी।
व्यवसाय	बड़ी व्यवस्था में भागीदारी जैसे उत्पादन, स्वास्थ्य, विनिमय इत्यादि व्यवस्थाओं में भागीदारी। मानवीय चेतना के अर्थ में सही समझ के साथ जो भी सीखा है और अभ्यास किया है, उसे स्वीकृति के साथ करना।
व्यावसायिक नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण के मूल सिद्धांतों की अभिव्यक्ति (व्यवहार कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी) विशेष रूप से व्यवसाय के संबंध में जो भी हम करते हैं।
समृद्धि	आवश्यकता से अधिक सुविधाओं के उपलब्ध होने का भाव या उत्पादन या कर पाने का भाव।
उद्देश्य	इकाई का स्वभाव।
वास्तविकता	जो भी है। वास्तविकतायें मूलतः तीन प्रकार की हैं – जड़, चैतन्य और शून्य
अनुभव	संपूर्ण वास्तविकता के सार को प्रत्यक्ष देखना। स्वयं में अस्तित्व को सह-अस्तित्व के रूप में देखना।
पहचानना	संबंध को देख पाना।
सही भाव	सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध का भाव। विश्वास का भाव (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम का भाव (पूर्ण मूल्य) तक [सभी नौ मूल्य]।
सही समझ	जीने के चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझना- स्वयं से लेकर संपूर्ण-अस्तित्व तक। ज्ञान संपन्नता।
सदुपयोग	1. मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के अर्थ में सुविधाओं का उपयोग। 2. मानवीय मूल्यों की पूर्ति के अर्थ में धन ('शरीर', 'मैं' और सुविधाओं) को अर्पित करने की क्रिया।
संस्कार	अभी तक की 'मैं' में संग्रहित सभी इच्छा, विचार और आशा से प्राप्त स्वीकृतियां।
लक्ष्य	गंतव्य। जैसा हम होना चाहते हैं और जिसकी निरंतरता चाहते हैं हम सुखी होना चाहते हैं और सुख की निरंतरता चाहते हैं
'स्वयं(मैं)'	चैतन्य इकाई।
स्व-अन्वेषण	स्वयं में अध्ययन। अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच के उपरांत अपने व्यवहार और कार्य में प्रायोगिक सत्यापन।
स्व-राज्य	स्वयं में व्यवस्था का बाहरी संसार तक फैलाव।
स्व-व्यवस्थित	अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार होना; अर्थात् स्व-व्यवस्था में होना, निश्चित क्रम में होना, अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करना।
स्व-व्यवस्थित संगठन	किसी इकाई की आतंरिक स्व-व्यवस्था या इकाई के होने का क्रम।
संयम	1. शरीर के संदर्भ में - शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी का भाव। 2. प्रकृति के संदर्भ में – चारों अवस्थाओं में नियमन।
स्व-सत्यापन	स्वयं के द्वारा, अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में सत्यापन के साथ-साथ संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के अर्थ में अपने जीने का प्रायोगिक सत्यापन करना।

संवेदना	शरीर के पाँचों संवेदी अंगों से मिलने वाली सूचना जिसे 'मैं' पढ़ता है – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।
कौशल	प्रक्रियाओं को सीखना (तरीका या तकनीक) a. शेष प्रकृति के साथ कार्य b. मानव के साथ व्यवहार में भावों को व्यक्त करना।
समाज	परिवारों का ऐसा समूह जो एक दूसरे के साथ परस्पर पूरकता के अर्थ में जीते हों।
शून्य	एक सर्वव्यापी वास्तविकता, जिसमें प्रत्येक जड़ और चैतन्य इकाई सम्पृक्त है, साम्य ऊर्जा है, पारदर्शी है।
सत्य	सार, जो नित्य वर्तमान है।
अखंड समाज	एक ऐसा समाज जिसके प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति हो।
दु:ख	अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना।
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव लक्ष्य की पूर्ति होती हो।
मूल्य	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में प्रकृति सहज भागीदारी।
विवेक	मानव लक्ष्य की स्पष्टता।
कार्य	मानव का शेष प्रकृति पर किया गया श्रम जिसमें सुविधा का उत्पादन होता है।

संदर्भ

1. A Foundation Course in Human Values and Professional Ethics, R R Gaur, R Asthana, G P Bagaria, 2nd Revised Edition, Excel Books, New Delhi, 2019. ISBN 978-93-87034-47-1
2. मानव मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकता, आर. आर. गौड़, आर. अस्थाना, जी. पी. बागड़िया, द्वितीय संशोधित संस्करण, २०२२, यू एच वी प्रकाशन, कानपूर, ISBN: 978-81-952861-9-5
3. Teachers' Manual for A Foundation Course in Human Values and Professional Ethics, R R Gaur, R Asthana, G P Bagaria, 2nd Revised Edition, Excel Books, New Delhi, 2019. ISBN 978-93-87034-53-2
4. ए नागराज, 1999, जीवन विद्या एक परिचय, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
5. ए नागराज, 1999, व्यवहारवादी समाजशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
6. ए नागराज, 2001, आवर्तनशील अर्थशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
7. ए नागराज, 2003, मानव व्यवहार दर्शन, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
8. ए नागराज, 2003, समाधानात्मक भौतिकवाद, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
9. एन त्रिपाठी, 2003, मानव-मूल्य, न्यू ऐज इंटरनेशनल प्रकाशक।
10. बी एल बाजपेई, 2004, इंडियन एथोस एंड मॉडर्न मैनेजमेंट, न्यू रॉयल क्लास नोट्स कं, लखनऊ। 2008 पुनर्मुद्रण।
11. बी पी बनर्जी, 2005, फाउंडेशन ऑफ़ एथिक्स एंड मैनेजमेंट, एक्सेल बुक्स।
12. डी एच मीडोज, डेनिस एल मीडोज, जोर्गेन रैंडर्स, विलियम डब्ल्यू बेहरेंस III, 1972, लिमिट्स टू ग्रोथ - क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट, यूनिवर्स बुक्स।
13. ई एफ शूमाकर, 1973, स्मॉल इज ब्यूटीफुल: ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक्स ऐज इफ पीपुल मैटरेड, ब्लॉन्ड एंड ब्रिग्स, ब्रिटेन।
14. ई जी सेबॉएर और रॉबर्ट एल बेरी, 2000, फंडामेंटल ऑफ एथिक्स फॉर साइंटिस्ट्स एंड इंजीनियर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. एफएओ, 2011, ग्लोबल फूड लॉसेस एंड फूड वेस्ट - एक्सटेंड, कॉज एंड प्रिवेंशन, आईएसबीएन 978-92-5-107205-9, रोम।
16. एम फुकुओका, 1984, द वन-स्ट्रॉ रिवोल्यूशन: एन इंट्रोडक्शन टू नेचुरल फार्मिंग, प्रकाशित (भारत में) फ्रेंड्स रूरल सेंटर, रसूलिया
17. इलिच, 1974, एनर्जी एंड इक्विटी, द ट्रिनिटी प्रेस, वॉर्सेस्टर, और हार्पर कॉलिन्स, यूएसए।
18. भूटान के राजा जिग्मे खेसर, 2010, कोलकाता विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह में रॉयल एड्रेस, कोलकाता (5 अक्टूबर, 2010)।
19. एम गोविंदराजन, एस नटराजन और वी। एस। सेंथिल कुमार, 2004, इंजीनियरिंग एथिक्स (मानव मूल्यों सहित), पूर्वी अर्थव्यवस्था संस्करण, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया लि।
17. एम के गांधी, 1939, हिंद स्वराज, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।
18. पी एल धर, आर गौड़, 1990, साइंस एंड हुमेनिज़्म, राष्ट्रमंडल प्रकाशक।
19. एस पालेकर, 2000, नेचुरल फार्मिंग का अभ्यास कैसे करें, प्रवीण (वैदिक) कृषि तंत्र शोध, अमरावती।
20. एस जॉर्ज, 1976, हाउ द अदर हाफ डाइस, पेंगुइन प्रेस। 1986, 1991 को पुनः प्रकाशित किया गया।

प्रासंगिक वेबसाइट, सीडी और वृत्तचित्र

1. यूनिवर्सल ह्यूमन वैल्यूज वेबसाइट, http://www.uhv.org.in/
3. स्टोरी ऑफ़ स्टफ, http://www.storyofstuff.com/
4. अल गोर, एन इनकनवीनिएंट ट्रुथ, 2006, पैरामाउंट क्लासिक्स, यूएसए
5. चार्ली चैपलिन, मॉडर्न टाइम्स, यूनाइटेड आर्टिस्ट्स, यूएसए
6. आईआईटी दिल्ली, मॉडर्न टेक्नोलॉजी - द अनटोल्ड स्टोरी
7. आनंद गांधी, राइट हियर राइट नाउ, 2003, साइकिलवाला प्रोडक्शन

(नोट: इस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिये एक शिक्षक-मैनुअल भी उपलब्ध है)

विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिए जिससे वे संसार के महान धर्मों को आदर के साथ सीख सकें।

-महात्मा गांधी

राष्ट्र-गीत

वन्दे मातरम्

श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय : आनन्दमठ

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्।।
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।

भारत का संविधान

अध्याय IV A

मूल कर्तव्य

Article 51A

मूल कर्तव्य--भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह--

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्र्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।